सस्ती-ग्रन्थमालाका सातवाँ पुष्प

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित

# मोक्षमार्ग-प्रकाशक



प्रकाशक—

सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,
नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली।

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम बार ४००० | वीर नि० सं० २४८६ | लागत मात्र |
| द्वि० बार १००० | | मूल्य |
| तृ० बार २३०० | वि० स० २०१७ | तीन रुपया |

# दो शब्द

पाठकों के करकमलों में सस्ती ग्रन्थमाला के सातवें पुष्प मोक्षमार्ग प्रकाशक की यह तीसरी आवृत्ति पहुँच रही है। पिछली आवृत्तियों में कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं जिनको इस संस्करण में दूर करने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यदि फिर भी कोई अशुद्धि रह गई हो तो ज्ञानी जन स्वयं सुधार कर लें और उसकी सूचना ग्रंथमाला को भेजने की कृपा करें ताकि आगामी संस्करण में उसकी पूर्ति की जा सके। इस संस्करण में ग्रंथकार पं० टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठी भी प्रकाशित की गई है जो बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। पाठकगण इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करके स्वपर स्वरूपका भेद विज्ञान प्रगट करें जिससे भूल भ्रान्तियाँ एवं सर्व मिथ्या कल्पनाओं से रहित होकर शुद्धात्मा की प्राप्ति हो।

श्री शीतलप्रसाद जी ( सोनीपत ) ने अपना बहुमूल्य समय देकर इस ग्रन्थ का संशोधन किया है। अतएव सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी उनकी अत्यन्त आभारी है।

सुमेरचन्द जैन अराइज नवीस

मन्त्री—

सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी, देहली।

# प्रस्तावना

## ग्रन्थ और ग्रन्थकार

भारतीय वाङ्मयमे हिन्दी जन साहित्य अपनी खास विशेपता रखता है। इतना ही नही, किन्तु हिन्दी भाषाको जन्म देनेका श्रेय भी प्राय. जैन विद्वानोको प्राप्त है, क्योकि हिन्दी भाषाका उद्गम अपभ्रंश भाषासे हुआ है जिसमे जैनियोका सातवी शताब्दीसे १७वी शताब्दी तकका विपुल साहित्य,महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित्र, पुराण, कथा और स्तुति आदि विभिन्न विषयो पर लिखा गया है। यद्यपि उसका अधिकांश साहित्य अभी अप्रकाशित ही है। तो भी हिन्दी भाषा मे जैन साहित्य गद्य और पद्य दोनो मे देखा जाता है। हिन्दी का गद्य साहित्य १७ वी शताब्दी से पूर्व का मेरे देखनेमे नही आया, हो सकता है कि यह इससे भी पूर्व लिखा गया हो परन्तु पद्य साहित्य उससे भी पूर्व का देखनेमे अवश्य आता है।

हिन्दी गद्य साहित्यमे स्वतन्त्र कृतियोकी अपेक्षा टीका ग्रन्थोकी अधिकता पाई जाती है परन्तु स्वतन्त्र रूपमे लिखी-गई कृतियोमे सबसे महत्वपूर्ण कृति 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही है। यद्यपि यह ग्रन्थ विक्रमकी १९वी शताब्दी के प्रथम पादकी रचना है तथापि उससे पूर्ववर्ती और पश्चात्यवर्ती लिखे गए ग्रन्थ इसकी प्रतिष्ठा एव महत्ताको नही पा सके। उसका खास कारण पं० टोडरमलजीके क्षयोपशमकी विशेषता है। उस प्रकारके ग्रन्थ प्रणयनकी उनमे अपूर्व

क्षमता थी, जो उन्हे स्वत: प्राप्त थी। उनकी विचारशक्ति आत्मानुभव और पदार्थ विवेचन की अनुपम क्षमता और उनकी आन्तरिक भद्रता ही उसका प्रधान कारण जान पड़ता है। यद्यपि सांगानेर (जयपुर) वासी प० दीपचन्दजी शाहने स० १७७९ में चिद्विलास नाम के ग्रन्थ की और अनुभवप्रकाशकी रचना की है और पद्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जो मनन करने योग्य है परन्तु उनकी भाषा प० टोडरमल जीकी भाषा के समान परिमार्जित नही है और न मोक्षमार्ग-प्रकाशक जैसी सरल एव सरस गम्भीर पदार्थ विवेचनका रहस्य ही देखनेको मिलता है, फिर भी वे ग्रन्थ अपने विषयके अनूठे है।

## ग्रन्थ नाम और विवेचन पद्धति

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' है जिसे ग्रन्थ कर्त्ताने स्वयं ही सूचित किया है। यद्यपि पिछले चार पांच प्रकाशनोमे ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग प्रकाश' ही सूचित किया गया है, मोक्षमार्ग-प्रकाशक नही परन्तु ग्रन्थकर्ताने अपने ग्रन्थका नाम स्वय ही 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है और उनकी स्वहस्त लिखित 'खरडा' प्रति मे प्रत्येक अधिकार की समाप्ति सूचक अन्तिम पुष्पिका मे 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही लिखा हुआ है और ग्रन्थ के प्रारम्भमे भी उन्होने 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है। इस कारण ग्रन्थका नाम मोक्षमार्ग-प्रकाशक रक्खा गया है मोक्षमार्ग प्रकाश नही। ग्रन्थ का यह नाम अपने अर्थ को स्वयमेव सूचित कर रहा है। उसमे मोक्षमार्ग के स्वरूप अथवा मोक्षोपयोगी जीवादि पदार्थोका विवेचन सरल एव सुबोध हिन्दी भाषा मे किया गया है। साथ ही शका समाधानके साथ विषयका स्पष्टीकरण भी किया गया है जिससे पाठक पदार्थकी वस्तु-स्थितिको सहजहीमे समझ सकते हैं। ग्रन्थकी महत्ता परिचित पाठकोसे छिपी हुई नही है। उसका अध्ययन

स्वाध्याय प्रेमियोके लिये ही आवश्यक नही किन्तु विद्वानोके लिये भी अत्यावश्यक है । उससे विद्वानो को विविध प्रकारकी चर्चाओ का— खासकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग । इन चार अनुयोगोका कथन,प्रयोजन,उनकी सापेक्ष विवेचन शैलीका— जो स्पष्टीकरण पाया जाता है,वह अन्यत्र नही है । और इसलिये यह ग्रन्थ सभी स्त्री-पुरुषोके अध्ययन, मनन एव चिन्तवन करनेकी वस्तु है । उसके अध्ययनसे अनुयोग पद्धतिमे विरुद्ध जचनेवाली कथनशैली-के विरोधका निरसन सहज ही हो जाता है और बुद्धि उनके विषय विवक्षा और दृष्टिभेदको शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है । साथ ही जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन अपनी खास महत्ताका द्योतक है । उससे जहाँ निश्चय व्यवहार रूप नयोकी कथनशैली, दृष्टि, सापेक्ष, निरपेक्ष रूप नय विवक्षाके विवेचनके रहस्यका पता चलता है, वहाँ सर्वथा एकान्त रूप मिथ्या अभिनिवेशका कदाग्रह भी दूर हो जाता है और शुद्ध स्वरूप का अध्ययन एव चिंतवन करने वाला जैन श्रावक उक्त प्रकरण का अध्ययन कर अपनी दृष्टिको सुधारनेमे समर्थ हो जाता है और अपनी आन्तरिक मिथ्यादृष्टिको छोडकर यथार्थ वस्तु स्थितिके मार्ग पर आजाता है और फिर वहाँ आत्म कल्याण करनेमे सर्व प्रकारसे समर्थ हो जाता है ।

इस तरह ग्रन्थ गत सभी प्रकरणोकी विवेचना वड़ी ही मार्मिक, सरल, सुगम और सहज सुवोधशैलीसे की गई है परन्तु अभाग्यवश ग्रन्थ अधूरा ही रह गया है । मल्लजी अपने सकेतोके अनुसार इसे महाग्रन्थ का रूप देना चाहते थे और उसी दृष्टिसे उन्होने अधिकार विभाग के साथ विषयका प्रतिपादन किया है । काश ! यदि यह ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अपनी शानी नही रखता । फिर भी जितना लिखा जा सका है वह अपने आपमे परिपूर्ण और मौलिक कृतिके रूपमे जगतका कल्याण करनेमे सहायक होगा । इस ग्रन्थके अध्ययन

एव अध्यापनसे कितनोका क्या कुछ भला हुआ और कितनोकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ हुई, इसे बतलानेकी आवश्यकता नही। पाठक और स्वाध्याय प्रेमीजन इसकी महत्तासे स्वयं परिचित हैं।

## ग्रन्थकी भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी है। चूंकि जयपुर स्टेट राजपूतानेमे है और जयपुर के आस-पासका देश ढूंढाहड देश कहलाता है, इसी से उक्त प्रदेशकी बोल-चालकी भाषा ढूंढारी कहलाती है। यद्यपि साहित्य सृजन मे ढूंढारी भाषाका स्वतन्त्र कोई स्थान नही है, उसे राजस्थानी और व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूता भी नही कहा जा सकता और यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस पर व्रजभाषाकी तरह राजस्थानी भाषा का भी असर रहा हो। व्रजभाषाके प्रभावके बीज तो उसमें निहित ही हैं; क्योंकि उत्तर प्रदेश की भाषा व्रज थी और राजस्थानके समीपवर्ती स्थानोमें उसका प्रचार होना स्वाभाविक ही है। अतएव यह सम्भावना नही की जा सकती है कि ढूंढारी भाषा व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूती रही हो किन्तु उसमे व्रज-भाषाके शब्दोंका आदान प्रदान हुआ है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी होते हुए भी उसमें व्रजभाषाकी पुट अंकित है।

ग्रन्थकी भाषा सरल, मृदु और सुबोध तो है ही और उसमे मधुरता भी कम नही पाई जाती है। पढते समय चित्त में स्फुर्तिको उत्पन्न करती है और बडी ही रसीली और आकर्षक जान पड़ती है। साथ ही १९वी शताब्दीके प्रारम्भिक जयपुरीय विद्वानोंमे जिस ढूंढारी भाषाका प्रचार था, पं० टोडरमलजीकी भाषा उससे कही अधिक परिमार्जितहै। वह आजकलकी भाषाके बहुत निकटवर्ती है और आसानीसे समझमें आसकती है। ढूंढारी भाषा मे 'और' 'इसलिये' 'फिर' आदि शब्दोके स्थान पर 'बहुरि' शब्दका प्रयोग किया गया है

और 'क्योकि' 'इसलिये' 'इस प्रकार' आदि शब्दोके स्थान पर 'जाते' 'ताते' 'या भाति' जैसे शब्दोका प्रयोग हुआ है और षष्ठी विभक्तिमे जो रूप देखनेमे आते है उनमे बहुवचनमे 'सिद्धोके' स्थान पर सिद्धनिका' जैसे शब्दोका प्रयोग पाया जाता है इसी तरहके और भी प्रयोग है पर उनके समझनेमे कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती। हाँ, ग्रन्थमे कतिपय ऐसे शब्दोका प्रयोग भी हुआ है जो सहसा पाठकोकी समझमे नही आता जैसे 'आखता' शब्दका प्रयोग जिसका अर्थ उतावला होता है और इसी तरह एक स्थान पर 'हापटा मारै है' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलक समयमे जब कि हिन्दी भाषा बहुत कुछ विकाश एव प्रसार पा चुकी है और वह स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमे उस भाषाको समझनेमे कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती।

## विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ नौ अधिकारोमे विभक्त है। उन मे अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमे परिपूर्ण है। इनमे से प्रथम अधिकारमे मगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रगट करनेके अनन्तर ग्रन्थकी प्रमाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् बाचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता श्रोताके स्वरूपका सप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई है।

दूसरे अधिकारमे सांसारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए कर्म बन्धन निदान, नूतन बध विचार, कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिक आत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध, उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद, योग और कषायसे होनेवाले यथायोग्य कर्म बन्धोका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओ

का यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्था में होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया गया है। साथ ही कर्मो के फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और भावकर्म द्रव्यकर्म का रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमे भी ससार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दु.खोके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है और मोहोत्पन्न विषयोकी अभिलाषाजनक दु·ख तथा मोही जीवके दु ख निवृत्तिके उपायको निस्सार बतलाते हुए दु·ख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदयसे होनेवाले दुःख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया है। एकेन्द्रियादिक जीवोके दुःखोका उल्लेख करते हुए नरकादि चारो गतियोके घोर कष्टो और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारमें ससार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थो का वर्णन और उनसे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पाचवे अधिकारमे आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मत के प्राचीन ग्रन्थोके उदाहरणों द्वारा जैन धर्म की प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओ एव मान्यताओंकी समीक्षा की गई है और अछेरों (निन्हवों) का निराकरण करते हुए केवली के आहार नीहारका प्रतिषेध तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोके रखनेका निषेध किया है। साथ ही ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा-

धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध और मूर्तिपूजाके प्रतिषेध का निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमे गृहीत मिथ्यात्व के कारण कुगुरु, कुदेव और कुधम का स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनक युक्तियो द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवे अधिकार मे जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है जिसे पढते ही जैन दृष्टि का वह सत्य स्वरूप सामने आजाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टि को न समझनेके कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोके अभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बडा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोकी सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशुद्ध, देशना, प्रायोग्य और करण इन पचलब्धियोका निर्देश करते हुए उक्त अधिकार को पूरा किया गया है।

आठवे अधिकारमें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोके प्रयोजन, स्वरूप विवेचन शैली और उनमे होने वाली दोप कल्पनाओका प्रतिषेध करते हुए अनुयोगोकी सापेक्ष कथनशैली का समुल्लेख किया गया है। साथ ही, आगमाभ्यास की प्रेरणा भी की गई है।

नवमें अधिकारमे मोक्षमार्गके स्वरूप का निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनो मे से मोक्षमार्ग के प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शनका भी पूरा विवेचन नही

लिखा जा सका है। खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एवं ग्रन्थको पूरा करनेमे समर्थ नही हो सके है, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकार मे जो भी कथन दिया हुआ है,वह वडाही सरल और सुगम है। उसे हृदयगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोका सहजही समन्वय हो जाता है और उसके भेदोके स्वरूप का भी सामान्य परिचय मिल जाता है। इस तरह इस ग्रन्थमे चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय ग्रन्थकर्ताके विशाल अध्ययन,अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके सद्योतक है।

इस ग्रन्थ की सवसे वडी विशेषता यह है कि गम्भीर एव दुरुह चर्चाको सरलसे सरल शब्दोंमे अनेक दृष्टान्त और युक्तियोके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिससे अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नही वनना पड़ता।

## जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोमे पंडित टोडरमल-जीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य लेखक विद्वानोमे प्रथमकोटिके विद्वान् है। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहंकार तो आपको छूकर भी नही गया था। आन्तरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन वहुतही सादा था। अध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ट सम्वन्ध था। श्री कुन्दकुन्दादि महान् आचार्योके अध्यात्मिक ग्रन्योके अध्ययन,

मनन एव परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्‌गद् हो जाते थे। सस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओके आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान् थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था और वस्तु तत्वके विश्लेषणमे आप बहुत दक्ष थे। आपका आचार एवं व्यवहार विवेक युक्त और मृदु था।

यद्यपि पडितजीने अपना और अपने माता पिता एव कुटुम्बी-जनो का कोई परिचय नही दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्री परसे उनके लौकिक और अध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार है :—

*"मै हूं जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरयो, लग्यो है अनादितै कलंक कर्ममलको। ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो है शरीरको मिलाप जैसै खलको। रागादिक भावनिको पायके निमित्त पुनि होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको। ऐसैं ही भ्रमत भयो मानुप शरीर जोग बनै तो बनैं यहाँ उपाव निज थलको ॥ ३६ ॥*

*दोहा—रम्भापति स्तुत गुन जनक, जाको जोगीदास।*
*सोई मेरो प्रान है, धारैं प्रगट प्रकाश ॥३७॥*
*मैं आतम अरु पुद्‌गल खंध, मिलकैं भयो परस्पर बंध।*
*सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥३८॥*
*मात गर्भमे सो पर्याय, करकैं पूरण अङ्ग सुभाय।*
*बाहर निकसि प्रगट जब भयो, तब कुटुम्बको भेलो भयो ॥३९॥*
*नाम धरचो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहै सब कोय।*
*ऐसो यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ॥४०॥*
*देश ढुंढाहड़ मांहि महान्, नगर सवाई जयपुर थान।*

*तामैं ताको रहनो घनो, थोरो रहनो औढै वनो ॥४१॥*
*तिस पर्याय विषैं जो कोय, देखन जाननहारो सोय ।*
*मै हूं जीव द्रव्य गुन भूप, एक अनादि अनन्त अरूप ॥४२॥*
*कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय ।*
*ते मेरे औपाधिकभाव, इनिकों विनशैं मै शिवराव ॥ ४३ ॥*
*वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया ।*
*ये सब हैं पुद्गल का खेल, इनिमें नाहि हमारो मेल ॥४४॥*

इन पद्यो परसे जहाँ पडितजीके अध्यात्मिक जीवनकी झाकीका दिग्दर्शन होता है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था । पिताका नाम जोगीदास था और माताका नाम रम्भा देवी था । दूसरे स्रोतोसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदीका' था, जो भोसा और वडजात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पडता है । तथा आपके वंशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र साधन था—और घर भी सम्पन्न था । इसीसे कोई आर्थिक कठिनाई नही थी ।

आपके गुरुका नाम वन्शीधर❀ था, इन्हीसे प० जी ने प्रारम्भिक

---

❀ यह प० वन्शीधर वही जान पडते हैं जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी रायमल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामें तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग किया है जब वे उदयपुरसे प० दौलतरामजीके पाससे जयपुर प० टोडरमलजीसे मिलने आए थे और वे वहाँ नहीं मिले थे, प० वन्शीधर जी मिले थे यथा—

"पीछे केताइक दिन रहि प० टोडरमल जयपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासू मिलनेके अर्थि जयपुर नगरी आये । सो एक वन्शीधर किंचित् सयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोंका पाठी, सौ पचास लड़का पुरुष वाया जामैं व्याकरण, छन्द, अलकार, काव्य, चरचा पढ़ै, तासू मिले ।" वीरवाणी वर्ष अक २ ।

शिक्षा प्राप्त की थी; आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थका शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे। फलत. कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोडेही समयमे जैन सिद्धान्तके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, कोष आदि विविध विषयोमे दक्षता प्राप्त कर ली थी।

यहाँ यह वात भी ध्यान में रखने लायक है कि पडितजीके पूर्वज बीसपथ आम्नायके माननेवाले थे परन्तु पंडितजीने वस्तु स्वरूप और भट्टारकीय प्रवृत्तियोका अवलोकन कर तेरह पन्थका अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करनेका भी प्रयत्न किया। परन्तु जब उनमे सुधार होता न देखा किन्तु उलटा विकृत परिणमन एव कषाय की तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोको समकरि तेरा पन्थकी शुद्ध प्रवृत्तियोको प्रोत्साहन देते हुए जनतामे सच्ची धार्मिक भावना एव स्वाध्यायके प्रचारको वढाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझने मे समर्थ हुई और फलत: अनेक सज्जन और स्त्रियां अध्यात्मिक चर्चा के साथ गोम्मटसारादि ग्रन्थोके जानकार बन गये। यह सब उनके और रायमलजीके प्रयत्नका ही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे, जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्राय. अपने पिताके समान ही प्रतिभा सम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्व चर्चादि कार्योमे यथायोग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता* थे और श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट

---

* "तथा तिनके पीछे टोडरमलजीके वडे पुत्र हरिश्चन्द्रजी तिनतै छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान् वक्ताके लक्षणकूं धारैं तिनके पास कितनक रहस्य सुनिकर कुछ जानपना भया।"—सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति।

रहते थे। इन्होने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष वाद लगभग स० १८३७ मे 'गुमान पथ' की स्थापना की थी ❀। गुमान-पन्थकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एवं प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोमें पवित्रता पूर्वक ८४ आसादनाओको वचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ वनाना था। उस समय चूंकि भट्टारकोंका साम्राज्य था और जनता भोली-भाली थी इसीसे उनमे जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्ग की प्रवृत्तिके लिये उन्हे 'गुमान पन्थ'की स्थापनाका कार्य करना आवश्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमें आजभी मौजूद है और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें वहुत कुछ सहायता मिली है। **जयपुरमें दीवान वधीचन्दके मन्दिरमें गुमान पंथकी स्थापना** का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमे उनकी स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतियाँ मोक्षमार्ग-प्रकाशक और गोम्मटसारादिकी मिली हैं। अस्तु—

## क्षयोपशमकी विशेषता और काव्य-शक्ति

पण्डित टोडरमलजीके क्षयोपशमकी निर्मलताके सम्बन्धमे ब्रह्मचारी रायमलजीने सं०१८२१ की चिट्ठीमे जो पंक्तियां लिखी है वे खासतौरसे ध्यान देने योग्य है और वे इस प्रकार हैः—

"सारा ही विषै भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका वनाई

---

❀ श्वेताम्बरी मुनि शान्तिविजयजी अपनी मानव धर्म संहिता ( शान्त सुधानिधि ) नामक पुस्तक के पृष्ठ १६७ में लिखते हैं कि—"वीस पन्थ में से फूटकर सम्वत् १७२६ में ये अलग हुए। जयपुरके तेरापन्थियोंमें से प० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सम्वत् १८३७ में गुमान पंथ निकाला।"

और पांच सात ग्रन्थोकी टीका बनायवेका उपाय है । सो आयु की अधिकता हुए वनेगी। अर धवल महाधवलादि ग्रन्थोके खोलवाका उपाय किया वा उहाँ दक्षिण देससूं पाँच सात और ग्रन्थ ताडपत्रांविषै कर्णाटी लिपि मैं लिख्या इहाँ पधारे है। याकूं मल्लजी बाचै है, वाका यथार्थ व्याख्यान करै है वा कर्णाटी लिपि मैं लिखि ले है। इत्यादि न्याय व्याकरण गणित छन्द अलंकारका याकै ज्ञान पाइए है। ऐसे पुरुष महत बुद्धिका धारक ईं कालविषै होना दुर्लभ है तातैं वासूं मिले सर्व सन्देह दूरि होइ हैं।"

इससे पडितजी की प्रतिभा और विद्वत्ताका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कर्नाटकी लिपिमे लिखना,अर्थ करना उस भाषा के परिज्ञानके विना नही हो सकता।

आप केवल हिन्दी गद्य भाषाके ही लेखक नही थे, किन्तु आपमें पद्य रचना करनेकी क्षमता थी और हिन्दी भाषाके साथ सस्कृत भाषामे भी पद्य रचना अच्छी तरहसे कर सकते थे । गोम्मटसार ग्रन्थकी पूजा उन्होने संस्कृतके पद्योमे ही लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है और देहलीके धर्मपुराके नये मन्दिरके शास्त्रभडारमे मौजूद है। इसके सिवाय सदृष्टि अधिकारका आदि अन्त मंगल भी सस्कृत श्लोकोम दिया हुआ है और वह इस प्रकार है—

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुपः
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमिन्दोर्माधवप्रभोः ॥

यह पद्य द्वयर्थक है। प्रथम अर्थमे क्षपणासारके साथ लब्धिसार की संदृष्टिको प्रकाश करने वाले माधवचन्द्रके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकके चरणोकी स्तुतिकी गई है और दूसरे अर्थमे करण लब्धि के परिणामरूप कर्मोकी क्षपणाको प्राप्त और समीचीन दृष्टिके प्रकाशक नारायणके गुरु नेमिनाथ भगवान्के चरणोकी स्तुतिका उपक्रम किया

गया है।

इसी तरह अन्तिम पद्य भी तीन अर्थोंको लिये हुये है और उनमें शुद्धात्मा (अरहन्त), अनेकान्तवाणी और उत्तम साधुओको संदृष्टिकी निर्विघ्न रचनाके लिये नमस्कार किया गया है—वह पद्य इस प्रकार है:—

शुद्धात्मनमनेकान्तं सानुमुत्तममंगलम् ।
वंदे संदृष्टिसिद्ध्यर्थं संदृष्ट्यर्थप्रकाशकम् ॥

हिन्दी भाषाके पद्योंमे भी आपकी कवित्वशक्तिका अच्छा परिचय मिलता है। पाठकोकी जानकारीके लिये गोम्मटसारके मंगलाचरण का एक पद्य नीचे दिया जाता है जो चित्रालंकारके रहस्यको अच्छी तरहसे व्यक्त करता है। उस पद्यके प्रत्येक पदपर विशेष ध्यान देनेसे चित्रालकारके साथ यमक, अनुप्रास और रूपक आदि अलंकारोंके निर्देश भी निहित प्रतीत होते है। वह पद्य इस प्रकार है:—

मैं नमों नगन जैन जन ज्ञान ध्यान धन लीन ।
मैंनमान विन दानघन, एनहीन तन छीन ॥

इस पद्यमें बतलाया गया है कि मैं ज्ञान और ध्यानरूपी धनमे लीन रहनेवाले, काम और मान (घमड) से रहित मेघके समान धर्मोपदेशकी वृष्टि करनेवाले, पापरहित और क्षीण शरीर वाले उन नग्न जैन साधुओको नमस्कार करता हूँ। यह पद्य गोमूत्रिका बंधका उदाहरण है। इसमे ऊपरसे नीचेकी ओर क्रमश. एक-एक अक्षर छोडनेसे पद्यकी ऊपरकी लाइन बन जाती है और इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर एक-एक अक्षर छोडनेसे नीचेकी लाइन भी बन जाती है। पर इस तरहसे चित्रबंध कविता दुरूह होनेके कारण पाठकोकी उसमे शीघ्र गति नहीं होती किन्तु खूब सोचने विचारनेके बाद उन्हें कविताके रहस्यका पता चल पाता है।

## ग्रन्थाभ्यास और शास्त्र प्रवचन

आपने अपने ग्रन्थाभ्यासके सम्बन्धमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पृष्ठ १६-१७ मे जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है.—

"बहुरि हम इस कालविषै यहाँ अब मनुष्य पर्याय पाया सो इस विषै हमारै पूर्व सस्कारतै वा भला होनहारतै जैनशास्त्रनिविषै अभ्यास करनेका उद्यम होता भया, । तातै व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीका सहित समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्वार्थ सूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठु कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र है तिनविषै हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है ।"

ऊपरके इस उल्लेख और मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमे उद्धृत अनेक ग्रन्थोके उदाहरणोसे पडितजीके विशाल अध्ययनका पद-पद पर अनुभव होता है।

पडितजी गृहस्थ थे—घर में रहते थे परन्तु वे सांसारिक विषय-भोगोमे आसक्त न होकर कमल-पत्रके समान अलिप्त थे और सवेग निर्वेद आदि गुणोसे अलकृत थे । अध्यात्म-ग्रन्थोसे आत्मानुभवरूप सुधारसका पान करते हुए तृप्त नही होते थे । उनकी मधुर वाणी श्रोताजनोको आकृष्ट करती थी और वे उनकी सरल वाणीको सुन परम सन्तोषका अनुभव करते थे । पडित टोडरमलजीके घर पर विद्याभिलाषियोका खासा जमघट सा लगा रहता था । विद्याभ्यास के लिये घर पर जो भी व्यक्ति आता था उसे आप बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे । इसके सिवाय तत्वचर्चाका तो वह केन्द्र ही

बन रहा था वहाँ तत्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हे आपके साथ विविध विषयो पर तत्वचर्चा करके तथा अपनी शकाओका समाधान सुनकर बड़ा ही सन्तोष होता था और इस तरह वे पंडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नही रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमें जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे। उनमे दीवान रतनचन्दजी*

* दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुरके साधर्मियोमें प्रमुख थे। वे बडे ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता बधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० स० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिंहजीके समयमें दीवान पद पर आसीन हुए थे और वि० सं० १८२६ मे जयपुरके राजा पृथ्वीसिंहके समयमे थे और उसके बाद भी कुछ समय रहे हैं। प० दौलतरामजी ने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० स० १८२७ में पं० टोडरमलजीकी पुरुपार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्योमे प्रगट है :—

सार्धमिनमे मुख्य है रतनचन्द दीवान ।
पृथ्वीसिह नरेशको श्रद्धावान सुजान ॥६॥
तिनके अति रुचि धर्मसौ सार्धमिनसो प्रीत ।
देव-शास्त्र-गुरुकी सदा उरमे महा प्रतीत ॥७॥
आनन्द सुत तिनको सखा नाम जु दौलतराम ।
भृत्य भूपको कुल वणिक जाके बसवे धाम ॥८॥
कछु इक गुरु-प्रतापते कीनो ग्रन्थ अभ्यास ।
लगन लगी जिन धर्मसौ जिन दासनको दास ॥९॥
तासूं रतन दीवानने कही प्रीति धर येह ।
करिये टीका पूरणा उर धर धर्म-सनेह ॥१०॥
तब टीका पूरी करी भाषारूप निधान ।
कुशल होय चहुँ संगको लहै जीव निज ज्ञान ॥११॥

अजबरायजी, त्रिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी*, त्रिलोकचन्दजी सोगानी, श्रीचन्दजी सोगानी और नेमचन्दजी पाटणीके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। बसवा निवासी श्री पं० देवीदासजी गोधाको भी आपके पास कुछ समय तक तत्वचर्चा सुननेका अवसर प्राप्त हुआ था॥। उनका प्रवचन बड़ा ही मार्मिक और सरल होता था और उसमे श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी।

## समकालीन धार्मिक स्थिति और विद्वद्गोष्ठी

जयपुर राजस्थानमें प्रसिद्ध शहर है उसे आमेरके राजा सवाई जयसिंहने स० १७८४ मे वसाया था। टाड साहबने लिखा है कि उसके बसानेमे विद्याधर नामके एक जैन विद्वान्ने पूरा सहयोग दिया था। उस समय जयपुरकी जो स्थिति थी उसका उल्लेख बाल ब्रह्मचारी रायमलजीने सम्वत् १८२१ की चिट्ठीमे दिया है। उससे स्पष्ट है कि उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरीके रूपमें हो रही थी. वहाँ जैनियोके सात आठ हजार घर थे, जैनियोकी इतनी अधिक गृहसख्या उस समय सम्भवत· अन्यत्र कही भी नही थी। इसीसे ब्रह्मचारी रायमलजीने उसे धर्मपुरी बतलाया है। वहाँ के अधिकांश जैन राज्यके उच्च पदोपर आसीन थे और वे राज्यमे सर्वत्र शाति एवं व्यवस्थामे अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। दीवान रतनचन्दजी

---

अट्ठारहसैं ऊपरै संवत सत्ताबीस।
मगशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीस॥१२॥

* महारामजी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे। वड़े ही बुद्धिमान थे और प० टोडरमलजीके साथ चर्चा करनेमें विशेष रस लेते थे।

॥ "सो दिल्ली सूं पढकर वसुवा आय पीछे जयपुरमें थोडे दिन टोडरमल जी महाबुद्धिमानके पास सुननेका निमित्त मिल्या, फिर वसुवा गये।"
—सिद्धान्तसारटीका प्रशस्ति

वालचन्दजी उनमे प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथमका राज्य चल रहा था। वे बड़े प्रजावत्सल थे। राज्यमे सर्वत्र जीवहिंसाकी मनाई थी और वहां कलाल, कसाई और वेश्याएँ नही थी। जनता प्राय. सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिन पूजन, शास्त्र स्वाध्याय, तत्वचर्चा, सामायिक और शास्त्रप्रवचनादि क्रियाओं मे श्रद्धा-भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गोम्मटसारादि सिद्धांतग्रथोकी तत्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक क्रियाओके सद् अनुष्ठानमे यथेष्ट भाग लेने लगी थी। पं० टोडरमलजीके शास्त्र प्रवचनमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और उनकी संख्या सातसौ आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमें कई विद्वान् थे और पठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्य रीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमे जैनियोकी संख्या कई सहस्र है और उनमें कितने ही राज्यके पदो पर प्रतिष्ठित हैं।

## साम्प्रदायिक उपद्रव

जयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरमें जैनियोंके बढते हुए प्रभुत्व एव वैभव को सम्प्रदाय-व्यामोहीजन असहिष्णुताकी दृष्टिसे देखते थे, उससे ईर्षा तथा द्वेष रखते थे और उसे नीचा दिखाने अथवा प्रभुत्वको कम करनेकी चिन्तामे संलग्न रहते थे और उसके लिये तरह तरहके उपाय काममे लानेकी गुप्त योजनाए भी बनाई जाती थी। उनकी उस असहिष्णुताका कारण यह जान पडता है कि जैनियोके प्रसिद्ध विद्वान् पंडित टोडरमलजीसे शास्त्रार्थमें विजय पाना सम्भव नही था, क्योंकि उनकी मार्मिक सरल एवं युक्तिपूर्ण विवेचन शैलीका सब पर ही प्रभाव पड़े विना नहीं रहता था और जैनी उस समय धन, वैभव,

प्रतिष्ठा आदि सत्कार्योमें सबसे आगे बढे हुए थे, राज्यमे भी उनका कम गौरव नही था और राज्य कार्यमें उनकी बहुमूल्य सेवाओका मूल्य बराबर आँका जाता था। इन्ही सब बातोसे उनकी असहिष्णुता अपनी सीमाका उल्लघन कर चुकी थी।

सम्वत् १८१७ मे श्याम नामका एक तिवारी ब्राह्मण तत्कालीन राजा माधवसिहजी प्रथम पर अपना प्रभाव प्रदर्शित कर किसी तरह राजगुरुके पदपर आसीन हो गया और उसने अपनी वाचालतासे राजाको अपने वशमे कर लिया तथा अवसर देख सहसा ऐसी अंधेरगर्दी मचाई कि जिसकी स्वप्नमे भी कभी कल्पना नही की जा सकती थी। राज्यमे पाये जानेवाले लाखो रुपयेकी लागतके विशाल अनेक जिन मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उनमे शिवकी मूर्ति रखदी गई और जिनमूर्तियोको खडितकर यत्र-तत्र फिकवा दिया गया। यह सब उपद्रव रायमलजीके लिखे अनुसार डेढ वर्ष तक रहा। राजाको जब श्याम तिवारीकी अधेरगर्दीका पता चला तब उन्होने उसका गुरुपद खोसि (छीन) लिया और उसे देश निकाला दे दिया। उसने अपने अधम कृत्यका फल कुछ समय वाद ही पा लिया*।

---

* सम्वत् अट्ठारहसै जब गए, ऊपर जवै अट्ठारह भये।
तब इक भयो तिवारी श्याम, डिभी अति पाखंडको धाम ॥
तुच्छ अधिक द्विज सबतें घाटि, दौरत हो साहनकी हाटि।
करि प्रयोग राजा वसि कियो, माधवेश नृप गुरु-पद दियो ॥
दिन कितेक बीते हैं जबै, महा उपद्रव कीन्हो तबै।
हुक्म भूपको लेके वाह, निसि गिराय देवल दिय ढाह ॥
अमल राजाको जैनी जहाँ, नाव न ले जिनमतको तहाँ।
कोऊ आधो कोऊ सारो, बच्यो जहाँ छत्री रखवारो ॥
काहू मै शिव-मूरति धरदी, ऐसें मची 'श्याम' की गरदी।

चुनाचे सम्वत् १८१९ मे मगसिर वदी दोइज के दिन जयपुर राज्य के ३३ परगनोके नाम एक आम हुक्म जारी किया गया जिसमें जैन-धर्मको प्राचीन और ज्योका त्यों स्थापित करनेकी आज्ञा दी गई और तेरापथ बीसपंथके मन्दिर बनवाने, उनकी पूजामे किसी प्रकार की रोकटोक न करनेका आदेश दिया गया और उनकी जायदाद वगैरह जो लूट पाटकर लेली गई थी उसे पुनः वापिस दिलानेकी भी आज्ञा दी गई। उस हुक्म नामेका जो सारा अंश 'वीरवाणी' के टोडरमल अंकमें प्रकाशित हुआ था, नीचे दिया जाता है:—

"सनद करार मिती मगसिर वदी २ सं० १८१९ अप्रच हद सरकारीमे सरावगी वगैरह जैनधर्म साधवा वाला सूं धर्ममें चालवा को तकरार छो सो याको प्राचीन जान ज्यों को त्यो स्थापन करवो फरमायो छै सो माफिक हुक्म श्रीहजूरकै लिखा छै—बीस पंथ तेरा पथ परगनामे देहरा बनाओ व देवगुरुशास्त्र आगै पूजैं छा जी भांति पूजो—धर्ममे कोई तरह की अटकाव न राखो अर माल मालियत वगैरह देवराको जो ले गया होय सो ताकीद कर दिवाय दीज्यो—केसर वगैरहको आगे जहांसे पावे छा तिठा सूं भी दिवावो कीज्यो। मिति सदर"—वीर वाणी वर्ष १, अंक १९ से २१।

उसके बाद जयपुर आदि स्थानोमे पुनः उत्साहसहित जिनमदिर और मूर्तियोंका निर्माण किया गया और अनेक प्रतिष्ठादि महोत्सव भी किये गये। इस तरह वहाँ पुनः जिनधर्मका उद्योत हुआ।

---

अकस्मात् कोप्यो नृप भारो, दियो दुपहरा देश निकारो।
दुपटा धोति धरें द्विज निकस्यो,तिय जुत पायन लखि जग विगस्यो।
सोरठा—किये पापके काम, खोसिलियो गुरु पद नृपति।
यथा नाम गुण श्याम, जीवत ही पाई कुगति॥

—बुद्धिविलास, आरा प्रति

## इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव

सम्वत् १८२१ मे जयपुरमे बडी धूमधामसे इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी बाल ब्रह्मचारी रायमलजीकी लिखी हुई पत्रिकासे* ज्ञात होता है कि उसमे चौसठ गजका लम्बा चौडा एक चबूतरा बनाया गया था और उसपर एक डेरा लगाया गया था जिसके चार दरवाजे चारो तरफ बनाये गये। उसकी रचनामे बीस तीस मन कागजकी रद्दी, भोडल आदि पदार्थोका उपयोग किया था। सब रचना त्रिलोकसारके अनुसार बनाई गई थी और इन्द्रध्वज पूजाका विधान संस्कृत भाषा पाठके अनुसार किया गया था। उस चिट्ठीमे अनेक ऐतिहासिक बातोका उल्लेख किया गयाहै और यह चिट्ठी दिल्ली, आगरा, भिंड, कोरडा जहानाबाद, सिरोज, बासौदा, इन्दौर, औरंगाबाद, उदयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, मुलतान आदि भारतके विभिन्न स्थानोको भेजी गई थी। इससे उसकी महत्ता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। राज्यकी ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी। दरबारसे यह हुक्म आया था कि "पूजा जीके अर्थ जो वस्तु चाहिए सो ही दरबारसे ले जावो।" इस तरह की सुविधा वि० की १५वी १६वी शताब्दीमें ग्वालियरमे राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्य-कालमे जैनियोंको प्राप्त थी और उनके राज्यमें होनेवाले प्रतिष्ठा-महोत्सवोमे राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

## रचनाएं और रचनाकाल

प० टोडरमलजीकी कुल दश रचनाए है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ रहस्यपूर्ण चिट्ठी, २ गोम्मटसार जीवकांड टीका, ३ गोम्मटसार कर्मकाण्ड टीका, ४ लब्धिसार क्षपणासार टीका, ५ त्रिलोक-

* देखो, वीरवाणी वर्ष १ अंक ३

सार टीका, ६ आत्मानुशासन टीका, ७ पुरुषार्थसिद्धयुपायटीका, ८ अर्थसंदृष्टि अधिकार, ९ मोक्षमार्ग प्रकाशक और १० गोम्मटसारपूजा।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्वत् १८११ की फाल्गुणवदि पचमीको मुलतानके अध्यात्मरसके रोचक खानचन्दजी, गगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी आदि अन्य साधर्मी भाइयोको उनके प्रश्नोके उत्तररूपमे लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवसे ओत-प्रोत है। इसमे अध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर कितने सरल एव स्पष्ट शब्दोमे विनयके साथ दिया गया है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पडितजीकी आन्तरिक भद्रता तथा वात्सल्यताका खासतौरसे द्योतक है—

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि चाहिये।"

## गोम्मटसारादिकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकाड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल ग्रन्थोंके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती है। जो वीरनन्दि इन्द्रनन्दिके वत्स तथा अभयनन्दिके शिष्य थे। और जिनका समय विक्रमकी ११ वी शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रन्थपर अनेक टीकाएं रची गई है किन्तु वर्तमानमें उपलब्ध टीकाओमे मंदप्रवोधिका सबसे प्राचीन टीका है जिसके कर्ता अभयचन्द्र सैद्धान्तिक* है। इस टीकाके आधारसे ही केशववर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामें 'जीवतत्व-

* अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है और जीवकाण्डकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है। इसमें ८३ नं०की गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पंजिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोमें किया गया है। "अथवा सम्मूर्छनगर्भोपपातानाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपजिकाकारादीनामभिप्रायः।"

प्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेशसे शक स० १२८१ (वि०स० १४१६) मे बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मन्दप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनडी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमिचन्द्रने अपनी सस्कृत टीका बनाई और उसका नाम भी कनडी टीकाकी तरह 'जीवतत्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचन्द्र मूल सघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे। भट्टारक ज्ञानभूषण का समय विक्रमकी १६वी शताब्दी है; क्योकि इन्होने वि० स० १५६० मे 'तत्वज्ञानतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की है। अतः टीकाकार नेमिचन्द्रका भी समय वि० की १६वी शताब्दी है। इनकी 'जीव तत्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुवमल्लिराय नामक राजाके समयमे लिखी गई है और जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण निश्चित किया है*। इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण व विक्रमकी १६वी शताब्दीका उत्तरार्ध सिद्ध है।

आचार्य नेमिचन्द्रकी इस संस्कृत टीकाके आधारसे ही प० टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका बनाई है। उन्होने इस सस्कृत टीकाको केशववर्णीकी टीका समझ लिया है जैसा कि जीवकाण्डटीका प्रशस्ति के निम्न पद्यसे प्रगट है—

*केशववर्णी भव्य विचार, कर्णाटक टीका अनुसार।*
*संस्कृतटीका कीनी एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु॥*

पडितजीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' है जो उक्त सस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद

* देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

विवेचन करती है । पडित टोडरमलजीने गोम्मटसार—जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड, लब्धिसार—क्षपणासार, त्रिलोकसार इन चारो ग्रन्थोकी टीकाए यद्यपि भिन्न-भिन्न रूपसे की है किन्तु उनमे परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चारो ग्रन्थोकी टीकाओको एक करके उसका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' रक्खा है जैसा कि पडितजीकी लब्धिसार भाषा टीका प्रशस्तिके निम्नपद्यसे स्पष्ट है·—

*"या विधि गोम्मटसार लब्धिसार ग्रन्थनि की,*
*भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकै ।*
*इनिकै परस्पर सहायकपनौ देख्यौ ।*
*तातै एक करि दई हम तिनिको मिलायकैं ॥*
*सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका धरचो है याका नाम ।*
*सो ही होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकै ॥*
*कलिकाल रजनीमें अर्थको प्रकाश करै ।*
*यातै निज काज कीने इष्ट भावभायकै ॥३०॥*

इस टीकामे उन्होंने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है और अपनी ओरसे कषायवश कुछ भी नही लिखा, यथा:—

*आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या मांहि ।*
*धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनों नांहि ॥३३॥*

## टीकाप्रेरक श्रीरायमलजी और उनकी पत्रिका—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे*। रायमलजीने अपना कुछ जीवन परिचय एक पत्रिकामें स्वयं लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होने २२ वर्षकी अवस्थामे

* रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक ।
सो नाना विध प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो ।

साहिपुराके नीलापति साहूकारके सहयोगसे जो देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धालु और अध्यात्म ग्रन्थोका पाठी था, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, गुणस्थान, मार्गणा, बंध, उदय और सत्ता आदिकी तत्वचर्चाका मर्मज्ञ था, जिसके तीन पुत्र थे जो जैनधर्मके श्रद्धालु थे, उससे वस्तुके स्वरूपको जानकर उन्होने तीन चीजोका त्याग जीवन पर्यन्तके लिये कर दिया—सर्व हरितकायका, रात्रिभोजनका और जीवन पर्यन्तके लिये विवाह करनेका। इसके बाद विशेष जिज्ञासु बनकर वस्तु तत्व का समीक्षण बराबर करते रहे। रायमलजी बाल ब्रह्मचारी थे और एक देश सयमके धारक थे। जैन धर्मके महान श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमे सलग्न रहते थे, साथ ही बडे ही उदार और सरल थे। उनके आचारमे विवेक और विनयकी पुट थी। वे अध्यात्म शास्त्रोके विशेष प्रेमी थे और विद्वानोसे तत्वचर्चा करनेमे बडा रस लेते थे। प० टोडरमलजीकी तत्व-चर्चासे बहुत ही प्रभावित थे। इनकी इस समय दो कृतियाँ उपलब्ध है—एक कृति ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकाचार दूसरी कृति चर्चासंग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओको लिए हुए है। इनके सिवाय दो पत्रिकाये भी प्राप्त हुई है जो 'वीर वाणी' में प्रकाशित हो चुकी है*। उनमेसे प्रथम पत्रिकामे अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओका समुल्लेख करते हुए पडित टोडरमलजीसे गोम्मटसारकी टीका बनानेकी प्रेरणा की गई है और वह सिघाणा नगरमे कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया है। पत्रिकाका वह अश इस प्रकार है —

"पीछै सेखावटी विषै सिघाणा नग्र तहाँ टोडरमलजी एक दिली (दिल्ली) का बडा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म (कार्य) के अर्थि वहाँ रहै, तहाँ हम गए और टोडरमलजी मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये। ताका उत्तर एक गोम्मटसार नाम ग्रन्थकी साखिसू देते गए।

* देखो वीरवाणी वर्ष १ अङ्क २, ३।

सो ग्रन्थकी महिमा हम पूर्वें सुनी थी तासूँ विशेष देखी अर टोडरमल जीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्भुत देखी, पीछै उनसूं हम कही— तुम्हारे या ग्रन्थका परचै (परिचय) निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषा टीका होय तो घणां जीवोका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अब हो (इस) कालके दोषकरि जीवोकी बुद्धि तुच्छ रही है तो आगे यातै भी अल्प रहेगी। तातै ऐसा महान् ग्रन्थ प्राकृत ताकी मूलगाथा पन्द्रहसै १५००* ताकी संस्कृत टीका अठारह हजार १८००० ताविषै अलौकिक चरचाका समूह सदृष्टि वा गणित शास्त्रोंकी आम्नाय संयुक्त लिख्या है ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञानकी प्रवर्ति पूर्वै दीर्घकाल पर्यन्त लगाय अब ताई नाही तौ आगै भी याकी प्रवर्त्ती कैसै रहेगी ? तातै तुम या ग्रन्थकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करो,आयुका भरोसा है नाही। पीछै ऐसै हमारे प्रेरकपणाको निमित्त करि इनके टीका करनेका अनुराग भया। पूर्वै भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही,पीछै हमारे कहनेकरि विशेष मनोरथ भया, तब शुभ दिन मुहूर्तविषै टीका करनेका प्रारम्भ सिघाणा नग्रविषै भया। सो वे तो टीका बनावते गए हम बांचते गये। बरस तीनमें गोम्मटसारग्रन्थकी अड़तीस हजार ३८०००, लब्धिसार—क्षपणासार ग्रन्थकी तेरहहजार १३०००,त्रिलोकसार ग्रन्थकी चौदहहजार १४००० सब मिलि च्यारि ग्रन्थोकी पैंसठ हजार टीका भई। पीछै सवाई जयपुर आये तहाँ गोम्मटसारादि च्यारों ग्रन्थोकूं सोधि याकी बहुत प्रति उतरवाई। जहाँ शैली थी तहाँ सुधाइ-सुधाइ पधराई। ऐसे इन ग्रन्थोंका अवतार भया।"

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञान-

---

* रायमलजीने गोम्मटसार की मूल गाथा सख्या पन्द्रहसौ १५०० बतलाई है जब कि उसकी सख्या सत्तरहसौ पांच १७०५ है, गोम्मटसार कर्म काण्डकी ९७२ और जीवकाण्डकी ७३३ गाथासख्या मुद्रित प्रतियो में पाई जाती हैं।

चन्द्रिकाटीका तीन वर्षमे बनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक संख्या पैसठ हजार के करीब है और सशोधनादि तथा अन्य प्रतियोके उतरवानेमे प्रायः उतना ही समय लगा होगा । इसीसे यह टीका सं० १८१८ मे समाप्त हुई है । इस टीकाके पूर्ण होने पर पण्डितजी बहुत आल्हादित हुए और उन्होने अपनेको कृतकृत्य समझा । साथ साथ ही अन्तिम मङ्गलके रूपमे पचपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की । यथा—

*आरम्भो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद ।*
*अब भये हम कृतकृत्य उर पायो अति आह्लाद ॥*
*अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,*
*अर्थके प्रकाशी माङ्गलीक उपकारी हैं ।*
*तिनको स्वरूप जानि रागतै भई जो भक्ति,*
*कायकौ नमाय स्तुतिकौं उचारी है ॥*
*धन्य धन्य तुमही से काज सब आज भयो,*
*कर जोरि बारम्बार वन्दना हमारी है ।*
*मगल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत है,*
*होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है ॥*

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमे गद्यरूप मे प्रगट किया है*।

लब्धिसार की यह टीका वि० स० १८१८ माघशुक्ला पंचमी के दिन पूर्ण हुई है, जैसा कि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है—

*संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त ।*
*माघशुक्लापचमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत ॥*

---

* "प्रारब्ध कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये । वाके प्रसादतै सर्व आकुलता दूरि होइ हमारै शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ ।"

—लब्धिसारटीका प्रशस्ति

लब्धिसार—क्षपणासारकी इस टीकाके अतमे अर्थसदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमे दिया हुआ है,जिसमे उक्त ग्रन्थमे आनेवाली अकसदृष्टियों और उनकी संज्ञाओ तथा अलौकिक गणितके करणसूत्रों का विवेचन किया गया है। यह सदृष्टि अधिकारसे भिन्न है। जिसमें गोम्मटसार—जीवकाण्ड, कर्मकाण्डकी सस्कृतटीकागत अलौकिक गणितके उदाहरणों, करणसूत्रों, सख्यात, असंख्यात और अनन्तकी संज्ञाओं और अंकसंदृष्टियोका विवेचन स्वतत्र ग्रन्थके रूपमे किया गया है और जो 'अर्थसदृष्टि' के सार्थक नामसे प्रसिद्ध है । यद्यपि टीका ग्रन्थोके आदिमे पाई जाने वाली पीठिकामे ग्रथगत संज्ञाओं एव विशेपताका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठक जन उस ग्रन्थ के विषयसे परिचित हो सकें । फिर भी उनका स्पष्टीकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोकी रचना की गई है। इसका पर्यालोचन करनेसे सदृष्टि-विषयक सभी बातोंका बोध हो जाता है। हिन्दी भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी इससे बराबर लाभ उठाते रहे हैं। आपकी इन टीकाओसे ही दिगम्बर समाजमे कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्मसिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं । इस सबका श्रेय प० टोडरमलजीको ही प्राप्त है।

### त्रिलोकसार टीका—

त्रिलोकसार टीका यद्यपि सं० १८२१ से पूर्व बन चुकी थी परन्तु उसका सशोधनादि कार्य बादको हुआ है और पीठबध वगैरह बादको लिखे गये है । मल्लजीने इस टीकाका दूसरा कोई नाम नही दिया। इससे यह मालूम होता है कि उसे भी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाके अन्तर्गत समझा जाय।

### मोक्षमार्ग प्रकाशक—

इस ग्रन्थका परिचय पहले दिया जा चुका है और इसकी रचना

का प्रारम्भ समय भी सम्वत् १८२१ के पूर्वका है । भले ही बाद मे उसका सशोधन परिवर्धन हुआ हो ।

## पुरुषार्थसिद्ध्युपाय टीका—

यह उनकी अन्तिम कृति जान पड़ती है । यही कारण है कि यह अपूर्ण रह गई । यदि आयुवश वे जीवित रहते तो वे उसे अवश्य पूरी करते । बादको यह टीका श्री रतनचन्दजी दीवानकी प्रेरणासे पडित दौलतरामजीने स० १८२७ मे पूरी की है परन्तु उनसे उसका वैसा निर्वाह नही हो सका है । फिर भी उसका अधूरापन तो दूर हो ही गया है ।

उक्त कृतियोका रचनाकाल सं०१८११ से १८१८ तक तो निश्चित ही है । फिर इसके बाद और कितने समय तक चला, यद्यपि यह अनिश्चित है, परन्तु फिर भी स० १८२४ के पूर्व तक उसकी सीमा जरूर है । प० टोडरमलजीकी ये सब रचनाए जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमके राज्यकालमें रची गई है । जयपुर नरेश माधवसिहजी प्रथमका राज्य वि० स० १८११ से १८२४ तक निश्चित माना जाता है* । प० दौलतरामजीने जब स० १८२७ मे पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमे राजा पृथ्वीसिहका राज्य था । अतएव सम्वत् १८२७ से पहले ही माधवसिहका राज्य करना सुनिश्चित है ।

## गोम्मटसार पूजा—

यह सस्कृत भाषामे पद्यबद्ध रची हुई छोटी सी पूजाकी पुस्तक है । जिसमे गोम्मटसारके गुणोकी महत्ता व्यक्त करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति एव श्रद्धा व्यक्त की गई है ।

---

* देखो 'भारतके प्राचीन राजवंश' भाग ३ पृ०२३६,२४० ।

## मृत्युकी दुखद घटना—

पडितजीकी मृत्यु कब और कैसे हुई ? यह विषय असेंसे एक पहेली सा बना हुआ है । जैन समाजमे इस सम्बन्धमे कई प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं; परन्तु उनमें हाथीके पैर तले दबवाकर मरवानेकी घटना का बहुत प्रचार है । यह घटना कोरी कल्पना ही नहीं है, किन्तु उसमे उनकी मृत्युका रहस्य निहित है । पहले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकार अकल्पित घटना पं० टोडरमलजी जैसे महान् विद्वान्के साथ नही घट सकती । परन्तु बहुत कुछ अन्वेपरण तथा उसपर काफी विचार करनेके वाद मेरी धारणा अब दृढ हो गई है कि उपरोक्त किम्वदन्ती असत्य नही है किन्तु वह किसी तथ्यको लिए हुए अवश्य है । जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पंडितजीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिकी ओर ध्यान देते है; जो कभी स्वप्नमे भी पीड़ा देनेका भाव नही रखते थे,तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्व के साथ घोर ईर्षा रखने वाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एव अशक्य अपराधके द्वारा अन्ध श्रद्धावश विना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड़ पड़ा हो और राजाने पंडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकार से मृत्युदण्ड का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नही; क्योकि जब हम उस समय की भारतीय रियासती परिस्थितियो पर ध्यान देते है तो उस समयके भारतीय नरेशो द्वारा अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय-अत्याचारोका अवलोकन होता है तब उससे हमे आश्चर्यको कोई स्थान नही रहता। यही कारण है कि उस समय के विद्वानोने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमें स्पष्ट कुछ भी नही लिखा और उस समय जो कुछ लिखा हुआ प्राप्त हो सका उसे नीचे दिया जाता है । क्योकि उस समय सर्वत्र रियासतों

मे खासतौरसे मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रो घटनाएँ घटती रहती थी और उनसे प्रजामे घोर आतंक बना रहता था। हाँ आज परिस्थितिया बदल चुकी है और अब प्रायः इस प्रकारकी घटनाएँ कही सुनने मे नही आती।

पडित टोडरमलजीकी मृत्युके सम्बन्धमे एक दुखद घटनाका उल्लेख पं० बखतराम शाहके 'बुद्धि विलास' मे पाया जाता है और वह इस प्रकार है :—

*"तब ब्राह्मणनु मतौ यह कियो, शिव उठानको टौना दियो।*
*तामै सबै श्रावगी कैद, करिके दंड किये नृप फैद ॥*
*गुरु तेरह-पथिनुको भ्रमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।*
*ताहि भूप मारचो पल माहि, गाडचो मद्धि गंदगी ताहि ॥*

—आरा भवन प्रति

इसमें स्पष्ट रूपसे यह बतलाया गया है कि स० १८१८ के बाद जब जयपुरमे जैनधर्मका पुनः विशेष उद्योत होने लगा, तब यह सब कार्य सम्प्रदाय विद्वेषी ब्राह्मणोको सह्य नही हुआ और उन्होने मिल कर एक गुप्त 'षडयन्त्र' रचा—जिसमे ऐसी कोई असह्य घटना घटा कर जैनियोपर उसका आरोप किया जा सके और इच्छित कार्यकी पूर्ति हो सके। तब सबने एक स्वरसे शिवपिंडीको उखडवानेकी बात स्वीकार की और उसका अपराध जैनियो पर बिना किसी जाँचके लगाये जानेका निश्चय किया गया। अनन्तर तदनुसार घटना घटवा और राजाको जैनियोकी ओरसे विद्वेषकी तरह तरहकी बाते सुनाकर राजाको भड़काया और क्रोध उपजाया गया। इधर जनियोने किसी धर्मके सम्बन्धमें कभी ऐसे विद्वेषकी घटनाको जन्म नही दिया और न उसमे भाग ही लिया; हाँ अपने पर घटाई जानेवाली असह्य घटनाओं को विषके घूंट समान चुपचाप सहा। इतिहास इसका साक्षी है। चुनाचे राजाने घटना सुनते ही विना किसी जांच पडतालके क्रोधवश

सब जैनियोंको रात्रिमें ही कैद करने और उनके प्रसिद्ध विद्वान पंडित टोडरमलजी को पकडकर मरवा डालनेका हुक्म दे दिया। हुक्म होते ही उन्हे हाथीके पग तले दाब कर मरवा दिया और उनके शव को शहरकी गन्दगीमे गडवाया गया।

सुना जाता है कि जब पडितजीको हाथीके पग तले डाला गया और हाथीको अकुश ताड़नाके साथ उनके शरीरपर चढ़ने के लिये प्रेरित किया गया तब हाथी एकदम चिघाड़ के साथ उन्हे देखकर सहम गया और अकुश के दो वार भी सह चुका पर अपने प्रहारको करनेमे अक्षम रहा और तीसरा अकुश पड़ना ही चाहता था कि पडित जीने हाथीकी दशा देखकर कहा कि हे गजेन्द्र! तेरा कोई अपराध नही; जब प्रजाके रक्षकने ही अपराधी निरपराधीकी जाच नही की और मरवानेका हुक्म दे दिया तब तू क्यों व्यर्थ अकुशका वार सह रहा है, संकोच छोड़ और अपना कार्य कर। इन वाक्योको सुनकर हाथीने अपना कार्य किया।

चुनाचे किसी ऐस असह्य घटनाके आरोपका सकेत केशरीसिह पाटणी सागाकोके एक पुराने गुटकेमे भी पाया जाता है—

"मिती कार्तिक सुदी ५ ने (को) महादेवकी पिडि सहैरमाही कछु अमारगी उपाड़ि नाखि तीह परि राजा दोष करि सुरावग धरम्या परि दंड नाख्यौं।" —वीर वाणी वर्ष १ पृष्ठ २८५।

इन सब उल्लेखोंसे सम्प्रदाय व्यामोही जनोंकी विद्वेषपूर्ण परिस्थितिका अवलोकन करते हुए उक्त घटनाको किसी भी तरह असम्भव नही कहा जा सकता। इस घटनासे जैनियोके हृदयमें जो पीड़ा हुई उसका दिग्दर्शन कराकर मै पाठकोको दु:खी नही करना चाहता पर यह निसंकोच रूपसे कहा जा सकता है कि मल्लजीके इस विद्वेषवश होने वाले बलिदानको कोई भी जैन अपने जीवनमें नहीं भुला सकता। अस्तु—

राजा माधवसिंहजी प्रथमको जब इस षडयंत्रके रहस्यका ठीक पता चला तब वे बहुत दुःखी हुए और अपने कृत्यपर बहुत पछताये। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिडिया चुग गई खेत' इसी नीतिके अनुसार अकल्पित कार्य होनेपर फिर केवल पछतावा ही रह जाता है। बादमें जैनियोके साथ वही पूर्ववत् व्यवहार हो गया।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी? यद्यपि इस सम्बन्धमे इतना ही कहा जा सकता है कि स० १८२१ और १८२४ के मध्यमें माधवसिंहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है परन्तु उसकी अधिकांश सम्भावना स० १८२४ मे जान पड़ती है। चूं कि पं० देवीदासजी जयपुरसे बसवा गए और उससे वापिस लौटने पर पुनः प० टोडरमलजी नही मिले, तब उन्होने उनके लघुपुत्र पडित गुमानीरामजीके पास ही तत्वचर्चा सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त किया। यह उल्लेख सं० १८२४ के बादका है और उसके अनन्तर देवीदासजी जयपुरमे स० १८३८ तक रहे है।

परमानन्द जैन शास्त्री

# विषय-सूची

## प्रथम अधिकार



## दूसरा अधिकार

## तीसरा अधिकार



## चौथा अधिकार

## पांचवाँ अधिकार

## छठा अधिकार

## सातवाँ अधिकार

## आठवाँ अधिकार



## नवमा अधिकार

# शुद्धि पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १ | १५ | लाए | लोए |
| १४ | १८ | श्रत | श्रुत |
| १६ | ७ | चाल | चालै |
| २३ | ८ | कसा | कैसा |
| ५१ | १० | नका | इनका |
| ५४ | १४ | क्षमोपशम | क्षयोपशम |
| ७४ | १८ | दशन | दर्शन |
| ७४ | २२ | कर | करै |
| ७६ | १८ | वेहुरि | बहुरि |
| ९५ | ६ | लोहा | लोह |
| १२४ | — | २४ | १२४ |
| १७० | १७ | सुखो | सुखी |
| २२७ | १४ | धम | धर्म |
| २३५ | १६ | प्रतिज्ञा | प्रतिमा |
| २७६ | १५वी लाइनके नीचे शीर्षक | | कुधर्म सेवाका प्रतिषेध |
| २८३ | १८ | अपक्षा ता | अपेक्षा तो |
| २८५ | १० | एस | ऐसै |
| २८८ | १२ | बताव | बतावै |
| ३०१ | ६ | शुभोपयोग | शुद्धोपयोग |
| ३०१ | १० | बध कारण | बन्ध कारण |
| ३०२ | १२ | शुभोपयोग | शुद्धोपयोग |
| ३०३ | ८ | है, | है, सो |
| ३०८ | ७ | बध | बन्ध |
| ३१५ | १३ | निश्च | निश्चय |
| ३८६ | १७ | 'अनत' | अनन्त |

॥ श्री सर्वज्ञजिनवाणी नमस्तस्यै ॥

# शास्त्र-स्वाध्यायका प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐनमःसिद्धेभ्यः,ॐजय जय जय, नमोस्तु ! नमोस्तु !! नमोस्तु !!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवेनमः ।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री ( ग्रन्थ का नाम ) नामधेयं, तस्य मूलग्रंथकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री ( आचार्य का नाम ) आचार्येण विरचितं ।

श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥

श्रीमान् पं० प्रवर टोडरमलजी
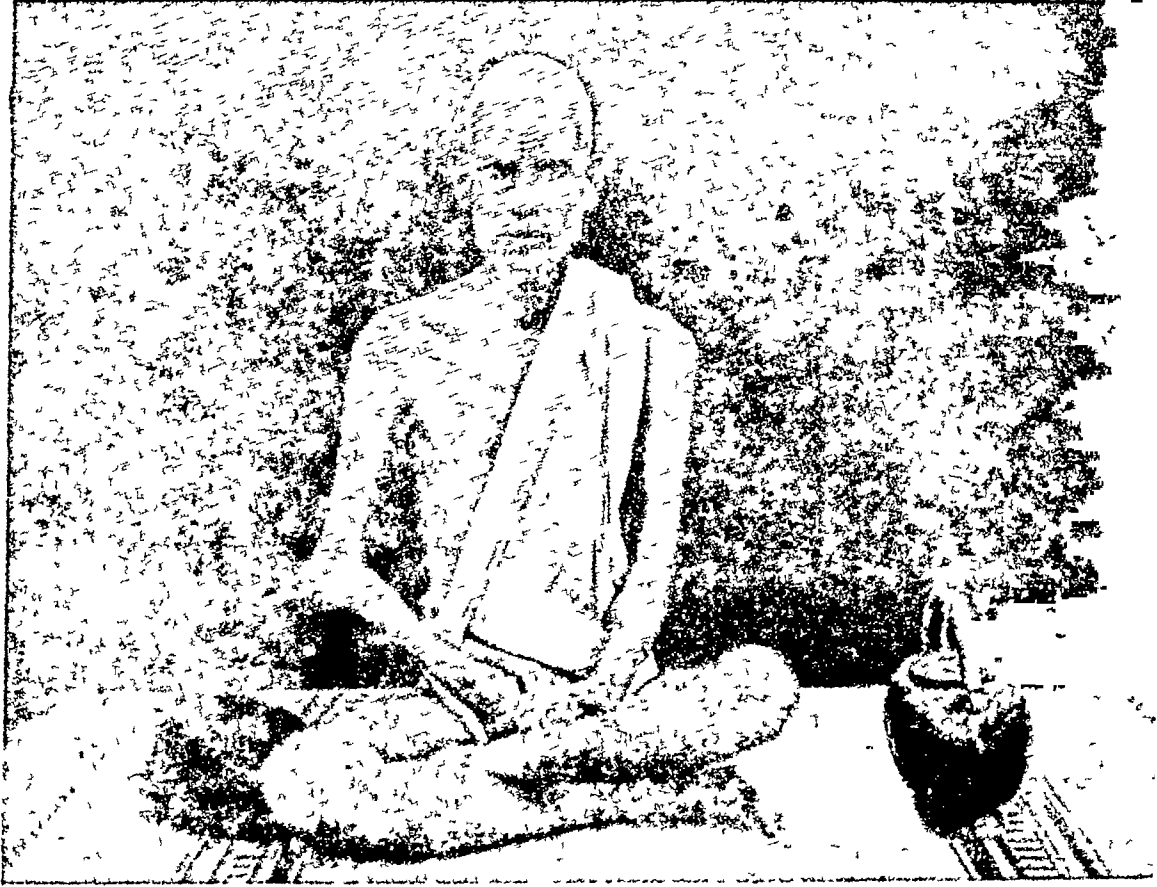
श्री १०५ क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत

# मोक्षमार्ग-प्रकाशक

## पहला अधिकार

---

### मंगलाचरण

दोहा

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान् ॥१॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज ।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज ॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है । तहाँ मंगल करिये है—

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ।

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है । बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है ।

**नमोऽर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः । नमः उपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्वसाधुभ्यः** । बहुरि याका अर्थ ऐसा है—नमस्कार अरहतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके अर्थि,

नमस्कार आचार्यनिके अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिके अर्थि, नमस्कार लोकविषै सर्वसाधुनिके अर्थि, ऐसै या विषै नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है। अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है। (जातें स्वरूप जानैं बिना यहु जान्या नाहीं जाय जो मैं कौनको नमस्कार करूँ तब उत्तमफल की प्राप्ति कैसे होय। *)

## अरहंतोंका स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहंतनिका स्वरूप विचारिये है—जे गृहस्थपनो त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिया कर्मनिकों खिपाय अनंत चतुष्टय विराजमान भये। तहाँ अनंतज्ञानकरि तौ अपने अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिको युगपत् विशेषपनैंकरि प्रत्यक्ष जानैं है। अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपनैं अवलोकैं है। अनंतवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यको धारैं है। अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदको अनुभवैं है। बहुरि जे सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शांतरस रूप परिणए है। बहुरि क्षुधा-तृषा आदि समस्तदोषनितैं मुक्त होय देवाधिदेवपनाको प्राप्त भये है। बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिन्ह तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है। बहुरि जिनके वचननितैं लोक विषै धर्मतीर्थ प्रवर्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है। बहुरि जिनके लौकिक

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है, संशोधित लिखित प्रतियों में है इसीसे इसे मूल में दिया गया है।

जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नानाप्रकार विभव तिनका सयुक्तपना पाइये है । बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इद्रादिक उत्तम जीव सेवैं है । ऐसैं सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहतदेव है, तिनको हमारा नमस्कार होहु ।

## सिद्धोंका स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये है –जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनि धर्मसाधनतैं च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनतचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछे च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतैं परमऔदारिक शरीरको भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं लोकका अग्रभागविषै जाय विराजमान भये । तहाँ जिनकैं समस्तपरद्रव्यनिका सम्बन्ध छूटनैंतैं मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई, बहुरि जिनकैं चरमशरीरतैं किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकैं प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातैं समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावको प्राप्त भये है, बहुरि जिनकैं नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातैं समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रगट भये है। बहुरि जिनकैं भावकर्मका अभाव भया तातैं निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है। बहुरि जिनकैं ध्यानकरि भव्यजीवनिकैं स्वद्रव्य परद्रव्यका अर औपाधिक भाव स्वभावभावनिका विज्ञान हो है, ताकरितिनि सिद्धनिकैं समान आप होनैंका साधन हो है। तातैं साधनैंयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेको प्रतिबिब समान है। बहुरि जे कृतकृत्य भये है तातैं ऐसैं ही अनत कालपर्यंत रहै है ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान् तिनको

हमारा नमस्कार होहु ।

अब आचार्य उपाध्याय साधुनिका स्वरूप अवलोकिये है —

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहको त्यागि शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करि अंतरंगविषै तौ तिस शुद्धोपयोगकरि आपकों आप अनुभवै है परद्रव्यविषै अहंबुद्धि नाही धारै है। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहीको अपने मानै है। परभावनिविषै ममत्व न करै है। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषै प्रतिभासै है तिनको जानै तो हैं परन्तु इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष नाही करै है। शरीरकी अनेक अवस्था हो है, बाह्य नाना निमित्त बनै है परन्तु तहाँ किछू भी सुखदु.ख मानते नाही। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनै है तैसे बनै है, खैंचिकरि तिनिको करते नाही। बहुरि अपने उपयोगको बहुत नाही भ्रमावै है। उदासीन होय निश्चल वृत्ति को धारै है। बहुरि कदाचित् मंदरागके उदयतै शुभोपयोग भी हो है तिसकरि जे शुद्धोपयोगके बाह्य साधन है तिनिविषै अनुराग करै है। परन्तु तिस रागभावको हेय जानिकरि दूरि किया चाहै है, बहुरि तीव्र कषायके उदयका अभावतै हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तो अस्तित्व ही रह्या नाही। बहुरि ऐसी अतरग अवस्था होतै बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये है। शरीरका सवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये है। वनखडादिविषै बसै है। अठाईस मूलगुणनिको अखडित पालै है। बाईस परीसहनिको सहै है। बारह प्रकार तपनिको आदरै है। कदाचित् ध्यानमुद्राधारि प्रतिमावत् निश्चल हो है। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानिविषै प्रवर्तै हैं। कदाचित् मुनिधर्मका सहकारी

शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रियानिविषै साव-धान हो हैं। ऐसे जैन मुनि है तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

## आचार्यका स्वरूप

तिनिविषै जे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदको पाय सङ्घविषै नायक भये है। बहुरि जे मुख्यपनै तौ निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषै ही मग्न है अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिको देखि रागअंशके उदयतै करुणाबुद्धि होय तो तिनिको धर्मोपदेश देते है। जे दीक्षाग्राहक है तिनिको दीक्षा देते है, जे अपने दोष प्रगट करै है तिनिको प्रायश्चित विधिकरि शुद्ध करैहै। ऐसे आचरन अचरावनवाले आचार्य तिनको हमारा नमस्कार होहु।

## उपाध्यायका स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय संघविषै पठन-पाठनके अधिकारी भये है, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपको ध्यावै है। अर जो कदाचित् कषाय अश उदयतै तहाँ उपयोग नाही थभै है तौ तिन शास्त्रनिको आप पढै है वा अन्य धर्मबुद्धीनिको पढावै है। ऐसै समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिको हमारा नमस्कार होहु।

## साधु का स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवीधारक विना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक है बहुरि जे आतमस्वभावको साधै है। जैसै अपना उपयोग परद्रव्यनिविषै इष्ट अनिष्टपनौ मानि फसै नाही वा भागै नाही तैसै

उपयोगको सधावै है। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषै प्रवर्तै है वा कदाचित् भक्ति वन्दनादि कार्यनिविषै प्रवर्तै हैं। ऐसे आत्मस्वभावके साधकसाधु है तिनको हमारा नमस्कार होहु।

## पूज्यत्वका कारण

ऐसें इन अरहतादिकनिका स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय है। तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये है जातैं जीवतत्वकरि तौ सर्व ही जीव समान है परन्तु रागादिकविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो है। बहुरि रागादिककी हीनताकरि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो है। सो अरहत सिद्धनिकै तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होनें करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव सभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकै एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भावं सभवै है। तातैं ते अरहतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहतादि पद हैं तिन विषै ऐसा जानना जो मुख्यपनै तौ तीर्थकरका अर गौणपनै सर्वकेवलीका ग्रहण है यहु पदका प्राकृत-भाषाविषै अरहत अर सस्कृतविषै अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदहवाँ गुणस्थानकै अनतर समयतैं लगाय सिद्ध नाम जानना। बहुरि जिनको आचार्यपद भया होय ते सघविषै रहौ वा एकाकी, आत्मध्यान करौ वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषै भी प्रधानताको पाय गणधरपदवीके धारक होहु, तिन सवनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तौ अन्यमुनि भी करैं है,परन्तु जिनकै आचार्यनिकरि

दिया उपाध्याय पद भया होय ते आत्मध्यानादिक कार्य करतें भी उपाध्याय ही नाम पावें है। बहुरि जे पदवीधारक नाही ते सर्वमुनि साधुसज्ञाके धारक जानने। इहाँ ऐसा नियम नाही है जो पचाचारनि-करि आचार्यपद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातैं ए तौ क्रिया सर्वमुनिनकैं साधारण है परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसैं करिये है। समभिरूढनय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसैं शब्द नय-करि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै है परन्तु समभिरूढ नयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसैं ही यहाँ समझना।

इहा सिद्धनिकैं पहिलैं अरहतनिको नमस्कार किया सौ कौन कारण? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान—

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये है, सो अरहतनितैं उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातैं पहिले नमस्कार किया है। या प्रकार अरहतादिकनिका स्वरूप चितवन किया। जातैं स्वरूप चितवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहतादिकनिको पचपरमेष्ठी कहिये है। जातैं जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ट है। पच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समु-दाय ताका नाम पचपरमेष्ठी जानना। बहुरि रिषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चद्रप्रभ, पुष्पदत, शीतल, श्रेयान, वासुपूज्य, विमल, अनत, धर्म, शाति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौवीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषैं वर्त्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप

ज्ञान निर्वाण कल्याणकनिविषै इन्द्रादिकनिकरि विशेप पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै है तिनको हमारा नमस्कार होहु। वहुरि सीमंधर, युगमधर, वाहु, सुवाहु, सजातक, स्वयप्रभ, वृषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चंद्रवाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक वीसतीर्थकर पचमेरु सम्वन्धी विदेहक्षेत्रनिविषे अवार केवनज्ञानसहित विराजमान है तिनको हमारा नस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पदविषै इनका गर्भितपना है तथा विद्यमान कालविषै इनको विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

वहुरि त्रिलोकविषै जे अकृत्रिम जिनविम्व विराजै है, मध्यलोकविषै विधिपूर्वक कृत्रिम जिनविव विराजै है जिनिके दर्शनादिकतै स्वपरभेद विज्ञान होय है, कषाय मद होय शान्तभाव हो है वा एक धर्मोपदेश विना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसे तीर्थकर केवलीके दर्शनादिकतै होय तैसे ही हो है, तिन जिनविवनिको हमारा नमस्कार होहु। वहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधरकरि रचित अंगप्रकीर्णक तिनकै अनुसरि अन्य आचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक है ऐसै ये सर्व जिनवचन है, स्याद्वादचिन्हकरि पहचानने योग्य है, न्यायमार्गते अविरुद्ध है तातै प्रमाणीक है, जीवनिकौ तत्वज्ञान के कारण है तातै उपकारी है तिनको हमारा नमस्कार होहु।

वहुरि चैत्यालय, आर्यका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य, अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र, अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य है तिनको नमस्कार करौ

हौ। अर जे किंचित् विनय करने योग्य है तिनका यथा योग्य विनय करौ हौ। ऐसैं अपने इष्टनिका सन्मानकरि मगल किया है। अब ए अरहतादिक इष्ट कैसैं है सो विचार करिए है—

जाकरि सुख उपजै वा दु खविनशे तिस कार्य का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारैं इस अवसरविषै वीतरागविशेप ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है जातैं याकरि निराकुल साचे सुख की प्राप्ति हो है। अर सर्व आकुलतारूप दु खका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहतादिकनिकरि हो है। कैसैं सो विचारिए है—

## अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि

आत्माके परिणाम तीन प्रकार है, सक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध, तहाँ तीव्र कषायरूप सक्लेश है, मदकषायरूप विशुद्ध है, कषाय रहित शुद्ध है। तहाँ वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जो है ज्ञाना-वरणादि घातियाकर्म, तिनिका सक्लेश परिणाम करि तौ तीव्रबन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मदबध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तौ पूर्वैं जो तीव्रबध भया था ताको भी मद करैं है। अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है। केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहतादिविषै स्तवनादि रूप भाव हो है सो कपायनिकी मन्दता लिये हो है तातैं विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कपायभाव मिटावनैंका साधन है, तातैं शुद्ध परिणाम का कारण है सो ऐसे परि-णाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतैं सहज ही वीतराग विशेपज्ञान प्रगट हो है। जितने अशनिकरि वह हीन होय

तितने अशनिकरि यह प्रगट होइ है । ऐसै अरहतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है । अथवा अरहतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना वा तिनकै अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादिकनिको हीन करै है । जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानको उपजावै है तातै ऐसे भी अरहतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है ।

इहाँ कोऊ कहै कि इनकरि ऐसे प्रयोजनकी तौ सिद्धि ऐसैं हो है परन्तु जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै दु ख विनशै ऐसे भी प्रयोजनकी सिद्धि इनि करि हो है कि नाही । ताका समाधान—

जो अरहतादि विषै स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बध हो है । बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तौ पूर्वै असाताआदि पापप्रकृति बधी थी तिनको भी मद करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है । बहुरि तिस पुण्यका उदय होतै स्वयमेव इन्द्रियसुखको कारणभूत सामग्री मिलै है । अर पापका उदय दूर होतै स्वयमेव दु ख कों कारणभूत सामग्री दूर हो है । ऐसै इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनिकरि हो है । अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक है ते तिस भक्तपुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखको कारणभूत सामग्रीनिका सयोग करावै है । दु खको कारणभूत सामग्रीनिको दूरि करै है । ऐसै भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिनि अरहतादिकनि करि हो है । परन्तु इस प्रयोजनतै किछू अपना भी हित होता नाही तातै यह आत्मा

कषायभावनितै बाह्य सामग्रीविषै इष्ट-अनिष्टपनौं मानि आप ही सुखदु खकी कल्पना करै है । विना कषाय बाह्य सामग्री किछू सुख-दु खकी दाता नाही । बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातै-इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दु खतै डरना सो यह भ्रम है । बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहतादिककी भक्ति किए भी तीव्रकषाय होनिकरि पापबन्ध ही हो है तातै आपको इस प्रयोजनका अर्थी होना योग्य नाही । जातै अरहतादिककी भक्ति करतै ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै है ।

ऐसे अरहतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं । बहुरि ए अरहता-दिक ही परममगल है । इन विषै भक्तिभाव भये परममगल हो है । जातै 'मग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'म' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धि हो है । तातै तिनकै परममगल-पना सम्भवै है ।

## मंगलाचरण करने का कारण

इहाँ कोऊ पू छै कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषै ही मगल किया सो कौन कारण ? ताका उत्तर—

जो सुखस्यौ ग्रन्थकी समाप्ति होइ पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या कारणतै यहाँ प्रथम मगल किया है ।

इहाँ तर्क--जो अन्यमती ऐसे मगल नाही करै है तिनकै भी ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होना देखिये है तहाँ कहा हेतु है ? ताका समाधान—

जो अन्यमती ग्रन्थ करै है तिसविषै मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व

कषाय भावनिकौ पौषते विपरीत अर्थनिकों धरै है तातै ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसै मंगल किये बिना ही होइ। जो ऐसे मगलनिकरि मोह मद हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसे बनै ? बहुरि हम यहु ग्रन्थ करै है तिस विषै मोहकी मदता करि वीतराग तत्वज्ञानको पौषते अर्थनिको धरैगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसै मगल कियै ही होय। जो ऐसै मगल न करै तौ मोहका तीव्रपना रहै, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनै ? बहुरि वह कहै जो ऐसै तौ मानैगे, परन्तु कोऊ ऐसा मगल न करै ताकै भी सुख देखिए है पापका उदय न देखिये है। अर कोऊ ऐसा मगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है पापका उदय देखिये है तातै पूर्वोक्त मगलपना कैसै बनै ? ताकों कहिये है—

जो जीवनिकै सक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके है तिनि-करि अनेक कालनिविषै पूर्वं बधे कर्म एक कालविषै उदय आवै है। तातै जैसै जाकै पूर्वं बहुत धनका सचय होय ताकै बिना कुमाए भी धन देखिए अर देणा न देखिये है। अर जाके पूर्व ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावतै भी देणा देखिये है धन न देखिए है परन्तु विचार किए तै कुमावना धन होनैहीका कारण है ऋणका कारण नाही। तैसे ही जाकै पूर्वै बहुत पुण्य बध्या होइ ताकै इहा ऐसा मगल विना किए भी सुख देखिए है। पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकै पूर्वै बहुत पाप बध्या होय ताकै इहाँ ऐसा मगल किये भी सुख न देखिए है पापका उदय देखिए है। परन्तु विचार किएतै ऐसा मगल तौ सुखका ही कारण है पाप उदयका कारण नाही। ऐसै पूर्वोक्त

मगलका मगलपना वनै है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासनके भक्त देवादिक है तिनिने तिस मगल करनेवालेकी सहायता न करी अर मगल न करनेवालेको दड न दिया सो कौन कारण ? ताका समाधान—

जो जीवनिकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीकै अनुसारि बाह्य निमित्त बनै है तातै जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायताका निमित्त न बनै है। अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दडका निमित्त न बनै है । यहु निमित्त कैसै न बनै है सो कहिये है—

जे देवादिक है ते क्षयोपशम ज्ञानतै सर्वको युगपत् जानि सकते नाही, तातै मगल करनेवाले, न करनेवाले का जानपना किसी देवादिककै काहू कालविषै हो है तातै जो तिनिका जानपना न होइ तौ कैसै सहाय करै वा दड दे। अर जानपना होय तब आपकै जो अति मदकषाय होइ तौ सहाय करनेके वा दड देनेके परिणाम ही न होइ। अर तीव्रकषाय होइ तौ धर्मानुराग होइ सकै नाही । बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाही तौ कहा करै ऐसै सहाय करने वा दड देनैका निमित नाही बनै है,जो अपनी शक्ति होय अर आपकै धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतै तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माकी सहाय करै वा किसी अधर्मीको दंड दे है । ऐसै कार्य होनैका किछू नियम तौ है नाही,

ऐसैं समाधान कीया। इहाँ इतना जानना कि सुख होनेकी, दुख न होने की, सहाय करावनेकी, दुख द्यावनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषै वा आगामी काल विषै दुखदायक है। तातै ऐसी इच्छा कूं छोरि हम तौ एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंता-दिकको नमस्कारादिरूप मगल किया है। ऐसैं मगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्गप्रकाशकनाम ग्रन्थका उद्योत करै है। तहाँ यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरू-पिए है—

## ग्रन्थकी प्रामाणिकता और आगम-परम्परा

अकारादि अक्षर है ते अनादिनिधन है, काहूके किए नाही इनिका आकार लिखना तौ अपनी इच्छाके अनुसारि अनेक प्रकार है परन्तु बोलनेमे आवै है ते अक्षर तौ सर्वत्र सर्वदा ऐसैही प्रवर्तै है सोई कह्या है— **'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'**। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयसिद्ध है। बहुरि तिनि अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थके प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है। जैसे 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जना-वनहारा है। ऐसैं अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसै मोती तौ स्वयसिद्ध है तिन विषैं कोऊ थोरे मोतीनिको, कोऊ घने मोतीनिको, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै है। तैसै पद तौ स्वयसिद्ध है, तिन विषै कोऊ थोरे पदनिको, कोऊ घने पदनिको, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै है यहाँ मैं भी तिनि सत्यार्थ पद-

निको मेरी बुद्धि अनुसारि गूंथि*ग्रन्थ बनावूँ हूँ सो मैं मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थके सूचक पद या विषै नाही गूंथूं हौं। तातैं यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहाँ प्रश्न—जो तिनि पदनिकी परम्पराय इस ग्रन्थ पर्यंत कैसैं प्रवर्तै है? ताका समाधान—

अनादितैं तीर्थंकर केवली होते आये है तिनिकैं सर्वका ज्ञान हो है तातैं तिनि पदनिका वा तिनिके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिनि तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकैं पदनिका अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गणधरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूंथैं है। बहुरि तिनकैं अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिककी रचना करै है। तिनिको केई अभ्यासै है केई कहै है केई सुनै है ऐसैं परम्पराय मार्ग चल्या आवै है।

सो अब इस भरतक्षेत्र विषै वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिसविषै चौवीस तीर्थंकर भए, तिनि विषै श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थंकर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिको दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिको भी जानि धर्मानुरागके वशतैं अंगप्रकीर्णकनि की रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त गए, तहाँ पीछैं इस पंचम कालविषैं तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बूस्वामी ३, तहाँ पीछे कालदोषतैं केवलज्ञानी होनेका तौ अभाव भया।

---

* जोडकर या लिखकरि।

बहुरि केतेक काल ताईं द्वादशांग के पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछैं तिनिका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालताईं थोरे अगनिके पाठी रहे ( तिनने यह जानकर जो भविष्यत् कालमे हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेगे, तातैं ग्रन्थ रचना आरम्भ करी और द्वादशागानुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे। ॐ) पीछैं तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषै भी काल दोषतैं दुष्टनिकरि कितेक ग्रन्थनिकी व्युच्छित्ति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेतैं व्युच्छित्ति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए है तिनिका बुद्धिकी मदतातै अभ्यास होता नाही। जैसैं दक्षिणमै गोमट्टस्वामीके निकट मूलबद्री नगरविषै धवल महाधवल जयधवल पाइए है परन्तु दर्शन-मात्र ही है। बहुरि कितेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए है। तिनि विषै भी कितेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसैं इस निकृष्ट काल विषैं उत्कृष्ट जैनमतका घटना तौ भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रविषै सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

## ग्रन्थकारका आगमाभ्यास और ग्रन्थ रचना

बहुरि हम इस काल विषै यहा अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषैं हमारं पूर्व सस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषै

ॐ यह पक्तियाँ खरडा प्रति में नही हैं अन्य सब प्रतियो में हैं। इसीसे आवश्यक जानि यहा दे दी गई हैं।

अभ्यास करनेका उद्यम होता भया । तातै व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुस्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र है तिनि विषै हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है । तिस करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है । वहुरि इस निकृष्ट समय विषै हम सारिखे मद बुद्धीनितै भी हीन वुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए है । तिनिकौ तिनि पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतै देशभाषामय ग्रन्थ करनेकी हमारै इच्छा भई । ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावै है सो इस विषै भी अर्थसहित तिनिही पदनिका प्रकाशन हो है । इतना तौ विशेष है जैसैं प्राकृत सस्कृत शास्त्रनिविषैं प्राकृत सस्कृत पद लिखिए है तैसैं इहाँ अपभ्र श लिए वा यथार्थपनाको लिए देशभाषारूप पद लिखिए है परन्तु अर्थविषैं व्यभिचार किछू नाही है । ऐसैं इस ग्रथपर्यन्त तिनि सत्यार्थ पदनिकी परम्परा प्रवर्तै है ।

इहा कोऊ पूछै कि परम्परा तौ हम ऐसैं जानी परन्तु इस परम्पराविषैं सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमको कैसै होय । ताका समाधान—

## असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए विना बनै नाही

जातै जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपकौ ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषै गमन करना होइ सो ऐसा महाविपरीत कार्य तौ क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषै तौ ऐसा कषायवान् होता नाही। प्रथम मूल उपदेशदाता तौ तीर्थंकर केवली भये सो तौ सर्वथा मोहके नाशतै सर्व कषायनि करि रहित ही है। बहुरि ग्रन्थकर्त्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकों त्यागि महा मंदकषायी भए है, तिनिकै तिस मदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्रकषायी नाही है जो वाकै तीव्रकषाय होय तौ सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसै होइ अथवा जो मोहके उदयतै अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै है तौ पोषौ परन्तु जिनआज्ञा भगकरि अपनी कषाय पोषै तौ जैनीपना रहता नाही, ऐसै जिनधर्म्मविषै ऐसा तीव्रकषायी कोऊ होता नाही जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय पर्यायविषै बुरा करै।

इहाँ प्रश्न—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिको जैन शास्त्रनिविषै मिलावै, पीछे ताकी परम्परा चली जाय तौ कहा करिये ?

ताका समाधान—जैसै कोऊ सांचे मोतिनिके गहनेविषै झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिलै नाही तातै परीक्षाकरि पारखी ठिगावता भी नाही, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परम्परा भी चलै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ झूठे मोतिनिका निषेध

करै हैं। तैसें कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषै असत्यार्थ पद मिलावै, परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषै तौ कषाय मिटावनेका वा लौकिककार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीनै जे असत्यार्थ पद मिलाए है तिनि विषै कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है ऐसैं प्रयोजन मिलता नाही, तातै परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाही, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि, ठिगावै है बहुरि ताकी परपरा भी चाल नाहीं, शीघ्र ही कोऊ तिनि असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहाँ इस निकृष्ट कालविषै हो है,उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत है तिस विषै तौ ऐसे होते नाही। तातै जैन शास्त्रनि विषै असत्यार्थ पदनिकी परंपरा चालै नाही, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परतु ग्रथ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातै कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तौ परपरा चलै?

ताका समाधान—

मूल ग्रथकर्त्ता तौ गणधरदेव है ते आप च्यारिज्ञानके धारक है अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनै है ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसारि ग्रन्थ बनावै है। सो उन ग्रन्थनिविषै तौ असत्यार्थ पद कैसैं गूथे जाय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावै है ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञान के धारक है। बहुरि ते तिनि मूलग्रन्थनिका परपराकरि ग्रन्थ बनावै है। बहुरि जिन पदनिका आपकौ ज्ञान न होइ तिनकी तौ आप रचना करै नाही अर जिन पद-

निका ज्ञान होइ तिनिको सम्यग्ज्ञान प्रमाणतै ठीक करि गूथै है सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषै असत्यार्थ पद गूथे जाय नाही, अर कदाचित् आपकौ पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामे भी तैसै ही आय जाय तौ याका किछू सारा * नाही। परन्तु ऐसै कोईकौ भासै सबहीकौ तौ न भासै। तातै जिनकौ सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परंपरा चलने देते नाहीं। बहुरि इतना जानना,जिनकौ अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्त्वनिकौ तौ श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानै ही नाही इनिका तौ जैनशास्त्रनिविषै प्रसिद्ध कथन है अर जिनिकौ भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतै जीवका बुरा न होइ ऐसै कोई सूक्ष्म अर्थ है तिनि विषै किसीकौ कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामैं ल्यावै तौ भी ताका विशेष दोष नाही सो गोमट्टसारविषै कह्या है—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

याका अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनकौ श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोगतै असत्यकौ भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाही है अर जिनआज्ञा भग करनेका बहुत भय है परन्तु इसही विचारके बलतै ग्रन्थ करनेका साहस करते है सो इस ग्रथ विषै जैसै पूर्व ग्रन्थनिमे वर्णन है तैसै ही वर्णन करैगे। अथवा कही पूर्व ग्रन्थनिविषै सामान्य गूढ़

* वश नही।

वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करेंगे। सो ऐसै वर्णन करनेविषै मैं तौ बहुत सावधानी राखोगा, अर सावधानी करते भी कही सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तौ विशेष बुद्धिमान होइ सो सवारिकरि शुद्ध करियौ, यह मेरी प्रार्थना है। ऐसै शास्त्र करनेका निश्चय किया है। अब इहाँ कैसे शास्त्र वाँचने सुनने योग्य है अर तिनि शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्णन करिए है।

## वांचने सुनने योग्य शास्त्र

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करै तेई शास्त्र वाचने सुनने योग्य है। जातै जीव ससारविषै नाना दु:खनिकरि पीड़ित है, सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गको पावै तौ उस मार्गविषै आप गमनकरि उन दु खनितै मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है, तातै जिन शास्त्रनिविषै काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीत-रागभावका प्रयोजन प्रगट किया होय तिनिही शास्त्रनिका वाचना सुनना उचित है। बहुरि जिन शास्त्रनिविषै शृङ्गार भोग कोतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्व श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाही शस्त्र है। जातै जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितै दुखी भया तिनकी वासना जीवकै बिना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनिकरि तिनहीका पोषण किया, भले होनेकी कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभाव घात ही किया तातै ऐसे शास्त्रनिका वाचना सुनना उचित नाही है। इहाँ वाचना सुनना जैसै कह्या तैसै ही जोडना सीखना सिखावना लिखना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान

लेनें। ऐसें साक्षात् वा परम्पराकरि वीतरागभावको पोषै ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करने योग्य है।

## वक्ताका स्वरूप

अब इनिके वक्ताका स्वरूप कहिये है। प्रथमतौ वक्ता कैसा होना चाहिए जो जैन श्रद्धानविषै दृढ़ होय जातै जो आप अश्रद्धानी होय तौ औरको श्रद्धानी कैसै करै? श्रोता तौ आपहीतै हीनबुद्धिके धारक हैं तिनको कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसे करै? अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै विद्याभ्यास करनेतै शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय जातै ऐसी शक्ति बिना वक्ता-पनेका अधिकारी कैसै होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जो सम्य-ग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभि-प्राय पहचानता होय जातै जो ऐसा न होय तौ कही अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाक जिनआज्ञा भग करनेका बहुत भय होय। जातै जो ऐसा न होय तौ कोई अभिप्राय विचारि सूत्रविरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै। सो ही कह्या है—

**बहु गुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो।**
**जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ॥१॥**

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तौ छोड़ने योग्य ही है। जैसें उत्कृष्टमणिसयुक्त है तौ भी सर्प है सो लोकविषै विघ्नका ही करण-हारा है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वाचि आजीविका

आदि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा न होय। जातै जो आशावान् होइ तौ यथार्थ उपदेश देइ सकै नाही, वाकै तौ किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसारि व्याख्यानकरि अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितै वक्ता का पद ऊँचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तौ वक्ता आप ही हीन हो जाय, श्रोता ऊँचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै तीव्र क्रोध मान न होय जातै तीव्र क्रोधी मानी की निदा होय, श्रोता तिसतै डरते रहै,तब तिसतै अपना हित कैसे करै। बहुरि वक्ता कसा चाहिए जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करै तौ मिष्टवचननिकरि, जैसै उनका सन्देह दूरि होय तैसै समाधान करै। जो आपकै उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तौ या कहै, याका मोको ज्ञान नाही, किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे ताईं उत्तर दू गा, अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसौ मिलै तौ पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोकूं हू बताय देना। जातै ऐसा न होय तौ अभिमानके वशतै अपनी पण्डिताई जनावनेकौ प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातै श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेत बुरा होय, जैनधर्मकी निदा होय। जातै जो ऐमा न होइ तौ श्रोताओका सदेह दूर न होई तब कल्याण कैसै होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सकै नाही। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिकी प्रवृत्ति न होय, जातै लोकनिद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय, तब ताका वचन कौन प्रमाण करै, जिनधर्मको लजावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाका कुल हीन न होय, अगहीन न होय, स्वर भङ्ग न होय, मिष्टवचन

होय, प्रभुत्व होय, तातै लोकविषै मान्य होय जातैं, जो ऐसा न होय तौ ताकौ वक्तापनाकी महतता शोभै नाही। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषै ये गुण तौ अवश्य चाहिए सो ही आत्मानुशासनविषै कह्या है।

**प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः**
**प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।**
**प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया**
**ब्रूयाद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥**

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपनै प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा पर-करि आपकी निन्दा रहितपना करि परके मनका हरनहारा होय, गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होंय, ऐसा सभाका नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बड़े-बड़े जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तौ विशेषपनै ताकौ वक्तापनौ सोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्म-रसकरि यथार्थ अपने स्वरूपका अनुभव जाकै न भया होय सो जिन-धर्मका मर्म जानै नाही, पद्धतिहीकरि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय साचा जिनधर्मका स्वरूप वाकरि कैसै प्रगट किया जाय, तातै आत्म-ज्ञानी होई तौ सांचा वक्तापनो होई, जातै प्रवचनसार विषै ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, सयमभाव ये तीनौ आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाही। बहुरि दोहापाहुडविषै ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वितुसं कंडिया ।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ॥१॥

याका अर्थ—हे पाडे हे पाडे हे पाडे तै कणछोडि तुस ही कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषै सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है तातै मूर्ख ही है ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषै भी पहलै अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातै अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक है वा अवधि-मन·पर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता है ते महावक्ता जानने। ऐसें वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी वक्ता-का सयोग मिलै तौ बहुत भला है ही अर न मिलै तो श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुणके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतै तौ शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुननेके लोभकरि श्रद्धानादि गुणरहित पापी पुरुषनिके मुखतै शास्त्र सुनना उचित नाही। उक्त च—

तं जिण आणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि ।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्सकहगाओ ॥१॥

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा मानने विषै सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु हीकै निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावकके मुखतै धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है। अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है,ऐसा जानना। ऐसें वक्ताका

स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं है—

## श्रोताका स्वरूप

भला होनहार है तातै जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मै कौन हूँ ? मेरा कहा स्वरूप है? (अर कहाँतै आकर यहाँ जन्म धारचा है और मरकर कहाँ जाऊँगा? ❀) यह चरित्र कैसे बनि रह्या है ? ए मेरै भाव हो हैं तिनका कहा फल लागैगा, जीव दुखी होय रह्या है सो दु ख दूरि होनेका कहा उपाय है, मुझको इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतै उद्यमवत भया है । बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतै होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है, किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थको अपने अंतरंगविषै बारम्बार विचारै है बहुरि अपने विचारतै सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है, ऐसा तौ नवीन श्रोताका स्वरूप जानना । बहुरि जे जैनधर्म्म के गाढे श्रद्धानी हैं अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीकै जानि जिस अर्थको सुनै है ताकौ यथावत् निश्चय जानि अवधारै है । बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै है अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करै है, शास्त्राभ्यास विषै अति आसक्त है, धर्म्मबुद्धिकरि निंद्यकार्यनिके त्यागी भए है, ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिए । बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे है । जाकै किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बडे जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तौ श्रोतापनौ विशेष सोभै है । बहुरि

❀ यह पक्तियाँ खरडा प्रति में नही हैं अन्य सब प्रतियों में हैं। इसीसे आवश्यक जानि यहा दे दी गई हैं।

ऐसा भी श्रोता है अर वाकै आत्मज्ञान न भया होय तौ उपदेशका मरम समझि सकै नाही तातै आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्मके रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवत बुद्धिकरि वा अवधिमन.पर्ययकरि सयुक्त होय तौ वह महान् श्रोता जानना। ऐसै श्रोतानिके विशेष गुण है। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि शास्त्र सुननेतै हमारा भला होगा, ऐसी बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै है परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझै नाही तिनिके पुण्यबन्ध हो है। कार्य सिद्ध होता नाही। बहुरि जे कुलवृत्तिकरि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै है वा सुनै तौ है परन्तु किछू अवधारण करते नाही, तिनकै परिणाम अनुसारि कदाचित् पुण्यबन्ध हो है कदाचित् पापबध हो है। बहुरि जे मद मतसर भावकरि शास्त्र सुनै हैं वा तर्क करनेहीका जिनिका अभिप्राय है, बहुरि जे महतताकै अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनै है, बहुरि जो शास्त्र तौ सुनै है परन्तु सुहावता नाही, ऐसे श्रोतानिके केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसै ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनिकै पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका अर वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्र कौ उचित वक्ता होय वाचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है—

### मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता

इस संसार अटवी विषै समस्त जीव है ते कर्म्मनिमित्ततै निपजे

जे नाना प्रकार दु ख तिनकरि पीडित हो रहे है। बहुरि तहाँ मिथ्या अंधकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहाँते मुक्त होनेका मार्ग पावते नाही तड़फि तडफि तहाँ ही दु खकौ सहै है। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेकौ कारण तीर्थंकर केवली भगवान्, सो ही भया सूर्य, ताका भया उदय, ताकी दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि, तहाँते मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया जैसै सूर्यकै ऐसी इच्छा नाही जो मै मार्ग प्रकाशूँ, परन्तु सहज ही वाकी किरण फैलै है ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसै ही केवली वीतराग है तातै ताकै ऐसी इच्छा नाहीं जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करें परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनिका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गकौ कैसै पावै अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुख सहैगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक, तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसै दीपक करि दीपक जोवनेतै दीपकनिकी परम्परा प्रवर्तै तैसै आचार्यादिकनिकरि तिन ग्रन्थनितै अन्य ग्रंथ बनाए। बहुरि तिनिहूतै किनिहू अन्य ग्रन्थ बनाए ऐसे ग्रथनितै ग्रन्थहोनेतै ग्रन्थनिकी परम्परा वर्तै है। मै भी पूर्वग्रन्थनितै इस ग्रन्थको बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसै सूर्य वा सर्व दीपक है ते मार्गकौं एकरूपही प्रकाशै है तैसै दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ है ते मोक्षमार्गको एकरूप ही प्रकाशै है। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गकौ प्रकाशै है। बहुरि जैसै प्रकाशै भी नेत्ररहित वा नेत्र-विकार सहित पुरुष है तिनिकू मार्ग सूझता नाही तौ दीपककै तौ

मार्गप्रकाशकपनेका अभाव भया नाही, तैसैं प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित है वा मिथ्यात्वादि विकार सहित है तिनिकू मोक्षमार्ग सूझता नाही, तौ ग्रन्थकै तौ मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाही। ऐसैं इस ग्रन्थका मोक्षमार्गप्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहाँ प्रश्न—जो मोक्षमार्गके प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही, तुम नवीन ग्रन्थ काहे कौ बनावो हौ ?

ताका समाधान—जैसैं बडे दीपकनिका तौ उद्योत बहुत तैलादिकका साधनतैं रहै है, जिनकै बहुत तैलादिककी शक्ति न होइ तिनिकौ स्तोक दीपक जोइ दीजिये तौ वै उसका साधन राखि ताके उद्योततैं अपना कार्य करैं तैसैं बडे ग्रन्थनिका तौ प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतैं रहै है, जिनकै बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाही तिनिकूं स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तौ वै वाका साधन राखि ताके प्रकाशतैं अपना कार्य करैं। तातैं यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहाँ जो मै यहु ग्रन्थ बनाऊँ हूँ सो कषायनितैं अपना मान बधावनेकौ वा लोभ साधनेकौ वा यश होनेकौ वा अपनी पद्धति राखनेकौ नाही बनाऊँ हूँ। जिनकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिकका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाही तातैं तिनिकै बडे ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाही। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तौ भी यथार्थ अर्थ भासै नाही। ऐसैं इस समयविषैं मदज्ञानवान् जीव बहुत देखिये है तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितैं यह भाषा मय ग्रन्थ बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसै बडे दरिद्रीकौ अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसै कोढीकू अमृत पान करावै

अर वह न करै तैसे ससारपीड़ित जीवकौ सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तौ वाके अभाग्यकी महिमा हमतै तौ होइ सकै नाही। वाका होनहारहीकौ विचारै अपने समता भावै। उक्तं च—

**साहीरो गुरुजोगे जे रा सुरांतीह धम्मवयराइं।**
**ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भयविहूणा ॥१॥**

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुडे भी जे जीव धर्म्म वचननिकौं नाही सुनै है ते धीठ है अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसार भयतै तीर्थकरादिक डरे तिस संसार भयकरि रहित है, ते बड़े सुभट है। बहुरि प्रवचनसारविषै भी मोक्षमार्गका अधिकार किया, तहाँ प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या, सो इस जीवका तौ मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है, याको होतै तत्वनिका श्रद्धान हो है, तत्वनिका श्रद्धान भए सयमभाव हो है अर तिस आगमतै आत्मज्ञानकी भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म्मके अनेक अग है तिनिविषै एक ध्यान बिना यातै ऊँचा और धर्म्मका अग नाही है तातै जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रथका तौ वाँचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातै अवश्य याका अभ्यासविषै प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होयगा।

**इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै पीठबन्ध-**
**प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥**

# दूसरा अधिकार

## संसार अवस्था का स्वरूप

### दोहा

**मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव ।**
**सो जयवंत रहौ मदा, यह ही मोच्च उपाय ॥१॥**

अब इस शास्त्रविषै मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहाँ बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है। सो इस आत्माकै कर्म्मका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दुखी होय रह्या है। बहुरि याकै दु ख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै है परन्तु साँचा उपाय पाए बिना दु.ख दूरि होता नाही अर दु ख सहा भी जाता नाही तातै यहु जीव व्याकुल होय रह्या है ऐसे जीवकौ समस्त दु खका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका साचा उपाय करना सो ही कर्तव्य है तातै इसहीका याकौ उपदेश दीजिए है तहाँ जैसे वैद्य है सौ रोगसहितमनुष्यकौ प्रथम तौ रोगका निदान बतावै, ऐसै यहु रोग भया है। बहुरि उस रोगके निमित्ततै याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै ताकरि वाकै निश्चय होय जो मेरै ऐसै ही रोग है। बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी ताकौ प्रतीति अनावै। इतना तौ वैद्यका बतावना है बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तौ रोग तै मुक्त होई अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसैं ही इहाँ कर्म बन्धनयुक्त जीवकौ प्रथम तौ कर्मबन्धनका निदान बताइए है ऐसै यहु कर्मबन्धन भया है। बहुरि उस कर्मबधनके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती है सो सो बताइए है। ताकरि जीवकै

निश्चय होय जो मेरे ऐसैं ही कर्मबन्धन है । बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपायकी याकौ प्रतीति अनाइये है इतना तौ शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै तौ कर्मबन्धनतैं मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीवका कर्तव्य है,सो इहाँ प्रथम ही कर्मबन्धनका निदान बताइये है।

## कर्मबन्धनका निदान

बहुरि कर्म्मबन्धन होतैं नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमणपनौ पाइए है,एक रूप रहनौ न हो है तातैं कर्मबन्धनसहित अवस्थाका नाम ससार अवस्था है। सो इस ससार अवस्थाविषैं अनन्तानन्त जीव द्रव्य है ते अनादिहीतैं कर्मबन्धन सहित है । ऐसा नाही है जो पहलैं जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछै इनिका सयोग भया । तौ कैसैं है— जैसैं मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषै अनते पुद्गलपरमाणु अनादितैं एक बन्धनरूप है, पीछै तिनमै केई परमाणु भिन्न हो है केई नए मिलैं है। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है । तैसैं इस ससार विषैं एक जीव द्रव्य अर अनते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनिका अनादितैं एक बन्धनरूप है पीछै तिनिमैं केई कर्म परमाणु भिन्न हो है, केई नये मिलैं है। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो पुद्गलपरमाणु तौ रागादिकके निमित्ततैं कर्मरूप हो है, अनादि कर्मरूप कैसै है ?

ताका समाधान—निमित्त तौ नवीन कार्य होय तिसविषै ही सम्भवं है। अनादि अवस्थाविषै निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसे नवीन पुद्गल-परमाणूनिका बधान तौ स्निग्ध रूक्ष गुणके अशन ही

करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनि विषै अनादि पुद्गलपरमाणू-
निका बन्धान है तहाँ निमित्तका कहा प्रयोजन है ? तैसै नवीन पर-
माणूनिका कर्म्मरूप होना तौ रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि
पुद्गलपरमाणूनिकी कर्म्मरूप ही अवस्था है । तहाँ निमित्तका कहा
प्रयोजन है ? बहुरि जो अनादिविषैभी निमित्त मानिए तौ अनादिपना
रहै नाही। तातै कर्मका बन्ध अनादि मानना । सो तत्वप्रदीपिका प्रव-
चनसार शास्त्रकी व्याख्या विषै जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहाँ कह्या
है। रागादिकका कारण तौ द्रव्यकर्म है, अर द्रव्यकर्म्मका कारण
रागादिक है। तब उहा तर्क करी जो ऐसै इतरेतराश्रयदोष लागै, वह
वाकै आश्रय, वह वाकै आश्रय, कहीं थभाव नाही है, तब उत्तर ऐसा
दिया है—

नैवं अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनो-
पादानात् । ❀

याका अर्थ—ऐसै इतरेतराश्रय दोष नाही है । जातै अनादिका
स्वयसिद्ध द्रव्यकर्म्मका सबध है ताका तहाँ कारणपनाकरि ग्रहण
किया है। ऐसै आगममै कह्या है। बहुरि युक्तितै भी ऐसैं ही सभवै है
जो कर्म्मनिमित्त विना पहले जीवकै रागादिक कहिए तौ रागादिक
जीवका निज स्वभाव होय जाय जातै परनिमित्त विना होइ ताहीका
नाम स्वभाव है। तातै कर्म्मका सम्बन्ध अनादि ही मानना ।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितै तिनिका
सम्बन्ध, ऐसै कैसै सम्भवै ?

---

❀ नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसबद्धस्यात्मन प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात् । प्रवचनसार टीका, २।२९

ताका समाधान—जैसै ठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुप कणका वा तैल तिलका सम्बन्ध देखिए है नवीन इनिका मिलाप भया नाही तैसै अनादिहीसौ जीव कर्म्मका सम्बन्ध जानना, नवीन इनिका मिलाप नाही भया । बहुरि तुम कही कैसै सभवै ? अनादितै जैसै केई जुदे द्रव्य है तैसै केई मिले द्रव्य है इस सभवनेविषै किछू विरोध तौ भासता नाही ।

बहुरि प्रश्न—जो सबध वा सयोग कहना तो तब सभवै जब पहले जुदे होइ पीछै मिलै । इहाँ अनादि मिले जीव कर्म्मनिका सबध कैसै कह्या है ।

ताका समाधान—अनादितै तौ मिले थे परन्तु पीछै जुदे भए तब जान्या जुदे थे तौ जुदे भए । तातै पहले भी भिन्न ही थे । ऐसै अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासै है । तिसकरि तिनिका बन्धान होतै भिन्नपना पाइए है । बहुरि तिस भिन्नताकी अपेक्षा तिनिका सम्बन्ध वा सयोग कह्या है जातै नए मिलौ वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसै ही कहना सभवै है । ऐसै इन जीव-निका अर कर्म्मका अनादि सम्बन्ध है ।

तहाँ जीवद्रव्य तौ देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, सकोचविस्तारशक्तिकौ लिए असख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है । बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुणरहित जड है अर मूर्त्तीक है, अनत पुद्गल परमाणूनिका पिड है तातै एक द्रव्य नाही है । ऐसै ए जीव अर कर्म्म है सो इनिका अनादि सम्बन्ध है तौ भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्मका कोई परमाणु

जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणकौ धरे जुदे जुदेही रहै है। जैसें सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिकौ धरै सोना जुदा रहै है स्वेतादि गुणनिकौ धरे रूपा जुदा रहै है, तैसै जुदे जानने।

इहा प्रश्न—जो मूर्त्तीक मूर्त्तीकका तौ वन्धान होना वनै, अमूर्त्तीक मूर्त्तीकका वन्धान कैसैं वनै ?

ताका समाधान—जैसे अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाही ऐसे सूक्ष्मपुद्गल, अर व्यक्त इन्द्रियगम्य है ऐसे स्थूलपुद्गल,तिनका वन्धान होना मानिए है,तैसे इन्द्रियगम्य होने योग्य नाही ऐसा अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्त्तीककर्म्म इनिका भी वन्धान होना मानना। वहुरि इस वन्धानविषै कोऊ किसीकौ करै तौ है नाही। यावत् वन्धान रहै तावत् साथि रहै, विछुरै नाही अर कारणकार्यपना तिनिकै वन्या रहै, इतना ही यहाँ बधान जानना। सो मूर्तीक अमूर्तीककै ऐसे बधान होने विषै किछू विरोध है नाही। या प्रकार जैसैं एक जीवकै अनादिकर्म्मसम्वन्ध कह्या तैसै ही जुदा जुदा अनत जीवनिकै जानना।

वहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है तहाँ च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततै तो जीवके स्वभावका घात हो है तहाँ ज्ञानावरण दर्शनावर्णकरि तौ जीवके स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनिकी व्यक्तता नाही हो है तिनि कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् ज्ञान दर्शनकी व्यक्तता रहै है। वहुरि मोहनीयकरिजीवके स्वभाव नाही, ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा कोध मान माया लोभादिक कषाय तिनिकी व्यक्तता हो है। वहुरि अतरायकरि जीवका स्वभाव दीक्षा लेनेकी समर्थतारूप वीर्य ताकी व्यक्तता न हो है ताका क्षयोपशमकै अनुसारि

किंचित् शक्ति हो है ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्ततैं जीवके स्वभावका घात अनादिहीतैं भया है। ऐसैं नाही जो पहलैं तौ स्वभावरूप शुद्ध आत्मा था पीछैं कर्म्मनिमित्ततै स्वभावघात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहाँ तर्क—जो घात नाम तौ अभावका है सो जाका पहलैं सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनैं। इहाँ स्वभावका तौ सद्भाव है ही नाही, घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषै अनादिहीतैं ऐसी शक्ति पाइए है जो कर्म्मका निमित्त न होइ तौ केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्त्तै परन्तु अनादिहीतैं कर्म्मका सम्बन्ध पाइए है। तातैं तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देने-की अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यारि अघातिया कर्म्म है तिनिके नितित्ततैं इस आत्माकैं बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बनै है तहाँ वेदनीयकरि तौ शरीरविषै वा शरी-रतैं बाह्य नानाप्रकार सुखदु खकौ कारण परद्रव्यनिका सयोग जुरै है। अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यत पाया शरीरका सम्वन्ध नाही छूटि सकै है। अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजै है। अर गोत्रकरि ऊँचा नीचा कुलकी प्राप्ति हो है ऐसैं अघातिकर्म्मनिकरि वाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहके उदयका सहकारण होतैं जीव सुखी दु.खी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्वन्धतैं जीवकैं अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थकौ नाही करै है। जैसै कोऊ शरीरकौ पकरै तौ आत्माभी पकर्या जाय। वहुरि यावत् कर्म्मका उदय रहै तावत् वाह्य सामग्री तैसैं ही वनी रहे अन्यथा न होय सकै, ऐसा इनि अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहाँ कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तौ जड है किछू वलवान नाही, तिनिकरि जीवके स्वभावका घात होना वा वाह्यसामग्रीका मिलना कैसै सम्भवे ?

ताका समाधान—जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावकौ घातै, बाह्य मामग्रीकौ मलावै तव कर्म्मकै चेतनपनौ भी चाहिए अर वलवानपनौ भी चाहिए सो तौ है नाही, सहजही निमित्त-नैमित्तिक सम्वन्ध है। जव उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस काल-विषै आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमै विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य है ते तैसै ही सम्बन्धरूप होय परिणमै। जैसै काहू पुरुषकै सिर परि मोहनधूलि परी है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहाँ उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर वावलापना भी न था अर बावला-पना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तौ निमित्त है अर पुरुप आप ही बावला हुआ परिणमै है,ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसै सूर्यका उदयका कालविषै चकवा चकवी-निका सयोग होय तहाँ रात्रिविषै किसीनै द्वेपबुद्धितै ल्यायकरि मिलाए नाही,सूर्यउदयका निमित्त पाय आप ही मिलै है अर सूर्यास्तका निमित्त पाय आपही विछुरै है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक बनि रह्या है। तैसै ही कर्म्मका भी निमित्त नैमित्तिकभाव जानना। ऐसै कर्म्मका उदयकरि अवस्था होय है बहुरि तहाँ नवीन वन्ध कैसै हो है सो कहिए है—

## नूतन बंध विचार

जैसै सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतै जितना व्यक्त नाही तितनेका तौ तिस कालविषै अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मदपनातै जेता

प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यके स्वभावका अश है,मेघपटलजनित नाही है। तैसै जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अतरायके निमित्ततै जितने व्यक्त नही तितनैका तौ तिसकालविषै अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगट है सो तिस जीवके स्वभावका अश ही है,कर्म्मजनित उपाधिक भाव नाही है। सो ऐसा स्वभावके अशका अनादितै लगाय कबहूँ अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यह देखनहार जाननहार शक्तिकौ धरे वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्म्मका बध नाही है जातै निज स्वभाव ही बन्धका कारन होय तौ बन्धका छूटना कैसै होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है ताकरिभी बन्ध नाही है जातै आपहीका अभाव होतै अन्यको कारण कैसै होय। तातै ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायके निमित्ततै निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्धके कारण नाही।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तौ मिथ्यात्वभावहो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय होय है। ते यद्यपि जीव के अस्तित्वमय है, जीवतै जुदे नाही,जीवही इनिका कर्ता है,जीवके परिणामनरूप ही ये कार्य है तथापि इनिका होना मोहकर्म्मके निमित्ततै ही है,कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनिका अभाव हो है तातै ए जीवके निजस्वभाव नाही उपाधिकभाव है। बहुरि इनि भावनिकरि नवीनवन्ध हो है तातै मोहके उदयतै निपजे भाव वन्धके कारन है। वहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतै वाह्य सामग्री मिलै है तिनिविषै शरीरादिक तौ जीवके

प्रदेशनिसौ एक क्षेत्रावगाही होय एकबन्धानरूप ही हो है । अर धन कुटुम्बादिक आत्मातैं भिन्नरूप है सो ए सर्व बन्धके कारन नाही है जातैं परद्रव्य बधका कारन न होय । इनिविषै आत्माकै ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादिभाव हो है सोई बधका कारन जानना ।

### योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध

बहुरि इतना जानना जो नामकर्म्मके उदयतै शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततै आत्माके प्रदेशनिका चचलपना हो है । ताकरि आत्माके पुद्गलवर्गणासौ एक बन्धान होनेकी शक्ति हो है ताका नाम योग है । ताके निमित्ततै समय समय प्रति कर्म्मरूप होने योग्य अनत परमाणूनिका ग्रहण हो है । तहाँ अल्पयोग होय तौ थोरे परमाणूनिका ग्रहण होय, बहुत योग होय तौ घने परमाणूनिका ग्रहण होय । बहुरि एक समय विषै जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनिविषै ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनिकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसे सिद्धात-विषै कह्या है तसे बटवारा हो है । तिस बटवारा माफिक परमाणु तिनि प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै है । विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है—शुभयोग, अशुभयोग । तहाँ धर्मके अगनिविषै मनवचनकाय की प्रवृत्ति भए तौ शुभयोग हो है अर अधर्म अगनिविषै तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है । सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु, सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तौ सर्वप्रकृतिनिका निरन्तर बध हुआ ही करै है । कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाही । इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषै, रति अरति युगलविषै, तीनौ वेदनविषै एकै काल एक एक ही प्रकृतिनिका

बन्ध हो है । बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषै शुभोपयोग होतैं साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतैं असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतैं केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्त तैं कर्मका आगमन हो है। तातैं योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणूनिका नाम प्रदेश है तिनिका बध भया, अर तिनिविषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

## कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध

बहुरि मोहके उदयतैं मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो है, तिनि सबनिका नाम सामान्यपनै कषाय है। ताकरि तिनिकर्मप्रकृतिनिकी स्थितिबन्धै है सो जितनी स्थिति बँधे तिसविषै अबाधाकाल छोडि तहाँ पीछै यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत् समय समय तिस प्रकृतिका उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यंचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होतैं थोरा स्थिति-बन्ध होय,बहुल कषाय होतैं घना स्थितिबन्ध होय। इनि तीन आयूनि-का अल्पकषायतैं बहुत अर बहुत कषायतैं अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहीकरि तिनि कर्मप्रकृतिनिविषै अनुभागशक्तिका विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बधै तैसा ही उदयकालविषै तिनि प्रकृतिनिका घना थोरा फल निपजै है। तहाँ घातिकर्मनिकी सव प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषै तौ अल्पकषाय होतैं थोरा अनुभाग बधै है, बहुत कषाय होतैं घना अनुभाग बधै

है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषै अल्पकपाय होतै घना अनुभाग बंधै है, वहुत कषाय होतै थोरा अनुभाग बधै है। ऐसै कपायनिकरि कर्मप्रकृतिनिकै स्थिति अनुभागका विशेष भया तातै कषायनिकरि स्थितिबंध अनुभागबधका होना जानना। इहाँ जैसै बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यत थोरी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तौ वह मदिरा हीनपनाकौ प्राप्त है। बहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यंत घनी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तौ वह मदिरा अधिकपनाको प्राप्त है। तैसै घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु है अर तिनिविषै थोरे कालपर्यन्त थोरा फल देने की शक्ति है तौ ते कर्मप्रकृति हीनताकौ प्राप्त है। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु है अर तिनिविषै बहुत कालपर्यंत बहुत फल देने की शक्ति है तौ वे कर्मप्रकृति अधिकपनाकौ प्राप्त है तातै योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबध बलवान नाही। कषायनिकरि किया स्थितिबध अनुभागबध ही बलवान है तातै मुख्यपनै कषाय ही बध का कारण जानना। जिनिकौ बध न करना होय ते कषाय मति करौ।

## जड़ पुद्गल परमाणुओंका यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहा कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु तौ जड है उनकै किछू ज्ञान नाही, कैसै यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमै है ?

ताका समाधान— जैसै भूख होतै मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिड सो मास शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमै है। बहुरि तिस भोजनके परमाणूनिविषं यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो है। बहुरि तिनिविषं केई परमाणुनिका

सम्वन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिनि परमाणू-निविषै केई तौ अपने कार्य निपजावनैकी बहुत शक्तिकौ धरै है, केई स्तोकशक्तिकौ धरै है। सो ऐसै होनेविषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिडकै ज्ञान तौ नाही है जो मै ऐसै परिणमौ अर और भी कोऊ परिणमावनहारा नाही है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव बनि रह्या है ताकरि तैसै ही परिणमन पाइए है। तैसै ही कषाय होतै योग द्वारि-करि ग्रह्या हुवा कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिड सो ज्ञानावरणादि प्रकृति-रूप परिणमै है। बहुरि तिनि कर्मपरमाणूनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे, कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु हो है। बहुरि तिनि विषै केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिनि परमाणूनिविषै कोऊ तौ अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्ति धरै है, कोऊ थोरी शक्ति धरै है सो ऐसै होनेविषै कोऊ कर्म-वर्गणारूप पुद्गलपिडकै ज्ञान तौ नाही है जो मैं ऐसै परिणमौ अर और भी कोई परिणमावन हारा है नाही, ऐसा ही निमित नैमित्तिक-भाव बनि रह्या है ताकरि तैसै ही परिणमन पाइये है। सो ऐसै तौ लोकविषै निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे है। जैसै मत्रनिमित्त-करि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करनेकी शक्ति हो है वा कॉकरी आदिविषै सर्पादि रोकनेकी शक्तिहो है तैसै ही जीव भावके निमित्त-करि पुद्गल परमाणूनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। इहाँ विचारकरि अपने उद्यमतै कार्य करै तौ ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त वने स्वयमेव तैसै परिणमन होय तौ तहाँ ज्ञानका किछू प्रयोजन नाही, या प्रकार नवीनबध होनेका विधान जानना।

## भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमै तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसौ एक क्षेत्रावगाहरूप बधान रहै है। तहाँ जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणू थे ते सक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणु होय जाँय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसै पूर्वं बधे परमाणुनिकी भी जीवभावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनै तौ न पलटै, जैसेके तैसे रहै। ऐसै सत्तारूप कर्म रहै है।

## कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिनि प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसारि कार्य बनै। कर्म्म तिनिका कार्यनिकौ निपजावता नाही। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वय बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समय फल निपज्या तिसका अनतर समयविषै तिनि कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतै कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमै है। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसै समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरै है। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछै ते परमाणु तिस ही स्कधविषै रहौ वा जुदे होय जाहु, किछू प्रयोजन रह्या नाही।

इहाँ इतना जानना - इस जीवकै समय समय प्रति अनतपरमाणु बधै है तहाँ एक समयविषै बधे परमाणु ते आबाधाकाल छोडि अपनी स्थितिके जेते समय होहि तिनि विषै क्रमतै उदय आवै है। बहुरि बहुत समयनिविषै बधे परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य है ते एकट्ठे होय उदय आवै है। तिनि सब परमाणूनिका अनुभाग मिले जेता अनुभाग होय तितना फल तिस काल विषै निपजै है। बहुरि अनेक समयनिविषै बधे परमाणु बधसमयतै लगाय उदयसमय पर्यन्त कर्मरूप अस्तित्वकौ धरै जीवसो सम्बन्धरूप रहै है। ऐसै कर्मनिकी बध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहाँ समयसमय प्रति एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणु बधै है, एक समयप्रबद्ध मात्र निर्जरै है। ड्योढगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै है। सो इनि सबनिका विशेष आगै कर्मअधिकारविषै लिखैगे तहाँ जानना।

## द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप

बहुरि ऐसै यह कर्म है सो परमाणुरूप अनत पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातै याका नाम द्रव्यकर्म है। बहुरि मोहके निमित्ततै मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातै याका नाम भाव कर्म है। सो द्रव्यकर्म के निमित्ततै भावकर्म होय अर भावकर्म के मिमित्ततै द्रव्यकर्मका बंध होय। बहुरि द्रव्यकर्मतै भावकर्म, भावकर्मतै द्रव्यकर्म, ऐसै ही परस्पर कारणकार्यभावकरि ससारचक्रविषै परिभ्रमण हो है। इतना विशेष जानना—तीव्र मन्द वन्ध होनेतै वा सक्रमणादि होनेतै वा एक

कालविषै बन्ध्या अनेककालविषै वा अनेककालविषै बधे एककाल-विषै उदय आवनेतै काहू कालविषै तीव्रउदय आवै तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहूकालविषै मद उदय आवै तब मद कषाय होय तब मद ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिनि तीव्र-मदकषायनिहीके अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी सक्रमणादिक होय तौ होय। या प्रकार अनादितै लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयत शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दु खकौ कारण है। तातै शरीरकौ नोकर्म कहिए है। इहा नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर वचन ए भी शरीरके अग है सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिड जानने। सो ऐसै शरीरकै अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीवकै एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान हो है सो शरीर-का जन्म समयतै लगाय जेती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीरका सम्बन्ध रहै है। बहुरि आयु पूरण भए मरण हो है। तब तिस शरीरका सम्बन्ध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय है। बहुरि ताके अनतर समयविषै वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्म-उदयके निमित्ततै नवीन शरीर धरै है तहाँ भी अपने आयुपर्यन्त तैसै ही सम्बन्ध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससौ सम्बन्ध छूटै है। ऐसै ही पूर्व शरीरका छोडना नवीन शरीरका ग्रहण करन। अनुक्रमतैं हुआ करै है। बहुरि यहु आत्मा यद्यपि असख्यातप्रदेशी है तथापि संकोचविस्तारशक्तितै शरीरप्रमाण ही रहै है,विशेष इतना—समुद्घात

होतैं शरीरतें बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै है । बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है । बहुरि इस शरीरके अंग भूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनिके सहायतै जीवकै जानपना की प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाकै अनुसारि मोहके उदयतै सुखी दुखी हो है। बहुरि कबहूँ तौ जीवकी इच्छाकै अनुसारि शरीर प्रवर्तै है कबहूँ शरीरकी अवस्थाकै अनुसार जीव प्रवर्तै है। कबहूँ जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है, ऐसैं इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

## नित्य निगोद और इतर निगोद

तहाँ अनादितै लगाय प्रथम तौ इस जीवकै नित्यनिगोदरूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहाँ नित्यनिगोदशरीरकौ धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोदशरीरकौ धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीकौ धारै है। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितै तहाँ ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहाँतै छै महीना अर आठ समयविषै छस्सै आठ जीव निकसै है ते निकसि अन्य पर्यायनिको धारै है। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक-वनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषै वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै है बहुरि तहाँ कितेककाल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्यायकौ पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहाँ कितेककाल रहै तहाँ तै निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहाँ परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है।

अर द्वीद्रियादि पचेन्द्रियपर्यंत त्रसनिविषै साधिक दोय हजार सागर है अर इतरनिगोदविषै अढाई पुद्‍गलपरिवर्तनमात्र है सो यहु अनतकाल है। वहुरि इतरनिगोदतै निकसि कोई स्थावरपर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसै एकेद्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असख्यात पुद्‍गलपरिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अतर्मुहूर्त काल है। ऐसै घना तौ एकेन्द्रियपर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तौ काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतै कर्मवन्धनरूप रोग भया है।

## इति कर्म्मबन्धननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मवन्धनरूप रोगके निमित्ततै जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तौ इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्यविशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपकौ प्रतिभासे है तिसहीका नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासनेका नाम दर्शन है, विशेपस्वरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकौ प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्मा-विषै शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतै ज्ञानावरण दर्शनावरण-का सम्बन्ध है ताके निमित्ततै इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाही। तिनि कर्मनिका क्षयोपशमतै किचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा अचक्षु-दर्शनपाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसै है सो दिखाइए है।

सो प्रथम तौ मतिज्ञान है सो शरीरके अंगभूत जे जीभ, नासिका,

नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थानविषै आठ पाँखड़ीका फूल्या कमलकै आकारि द्रव्यमन तिनिके सहायहीतैं जानै है। जैसै जाकी दृष्टि मद होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चसमा दीए ही देखै। बिना चसमैंके देखि सकै नाही। तैसै आत्माका ज्ञान मद है सो अपने ज्ञानहीकरि जानै है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानै तिनि बिना जानि सकै नाही। बहुरि जैसै नेत्र तौ जैसाका तैसा है अर चसमाविषै किछू दोष भया होय तौ देखि सकै नाही, अथवा थोरा दीसै अथवा औरका और दीसै, तैसै अपना क्षयोपशम तौ जैसा का तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमे होय तौ जानि सकै नाही, अथवा थोरा जानै अथवा औरका और जानै। जातै द्रव्य इन्द्रिय वा मनरूप परमाणूनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनकै अनुसारि ज्ञानका परिणमन होय है। ताका उदाहरण—जैसै मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय। बहुरि जैसै शीत वायु आदिके निमित्ततै स्पर्शनादिइन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय वा अन्यथा जानना होय। बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है ताका उदाहरण—जैसै नेत्रइद्रियकै अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आय जाएँ तौ देखि न सकै। बहुरि लाल काँच आड़ा आवै तौ सब लाल ही दीसै, हरित काँच आड़ा आवै तौ हरितही दीसै, ऐसै अन्यथा जानना होय। बहुरि दूरबीन

चसमा इत्यादि आडा आवै तौ बहुत दीसने लगि जाय । प्रकाश जल हिलव्वी काच इत्यादिकके परमाणु आडे आवैं तौ भी जैसाका तैसा दीखै। ऐसैं अन्य इन्द्रिय वा मनकैं भी यथासम्भव—निमित्तनैमित्तिक-पना जानना। बहुरि मत्रादिक प्रयोगतै वा मदिरा पानादिकतै वा भूतादिकके निमित्ततै न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है । ऐसे यहु ज्ञान बाह्य द्रव्यकै भी आधीन जानना । बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरितै कैसा ही जानै, समीपतै कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जानतै बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै । काहूकौ सशय लिए जानै, काहूकौ अन्यथा जानै, काहूकौ किंचित् जानै, इत्यादि रूपकरि निर्मल जानना होय सकै नाही। ऐसैं यहु मतिज्ञान पराधीनता लिए इद्रिय मन द्वारकरि प्रवर्ते है। तहाँ इन्द्रियनिकरि तौ जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषैं जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कध होय तिनहीकौ जानै । तिनिविषैं भी जुदे जुदे इन्द्रियनि-करि जुदे जुदे कालविषै कोई स्कधके स्पर्शादिकका जानना हो है । बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूरि क्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनिकौ अत्यन्त अस्पष्टपनै जानै है सो भी इद्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीकौ जानि सकै है । बहुरि कदाचित् अपनी कल्पनाही करि असत्कौ जानै है। जैसैं सुपने-विषै वा जागतै भी जे कदाचित् कही न पाइए ऐसे आकारादिक चितवै वा जैसैं नाही तैसैं मानै। ऐसैं मन करि जानना होय है सो यहु

इंद्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहाँ पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकेन्द्रियनिकै स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शख आदि बेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ा मकोड़ा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतगादिक चौइद्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादिक तिर्यच अर मनुष्य देव नारकी ए पचेन्द्रिय है तिनिकै स्पर्श रस गध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यचनिविषै केई सज्ञी हैं केई असज्ञी है। तहाँ सज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है, असज्ञीनिकै नाही है। बहुरि मनुष्य देव नारकी सज्ञी ही है तिनि सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है, ऐसै मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके सम्बन्धतै अन्य अर्थको जाकरि जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १, अनक्षरात्मक २। तहाँ जैसै 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तौ मतिज्ञान भया तिनिके सम्बन्धतै घट पदार्थका जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसै अन्य भी जानना। सो यहु तौ अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि जैसै स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तौ मतिज्ञान है ताके सम्बन्धतै यह हितकारी नाही यातै भागि जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसै अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असज्ञी जीवनिकै तौ अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर शेष सज्ञी पचेन्द्रियकै दोऊ है। सो यहु श्रुतज्ञान है, सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताकै भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिकै आधीन है, तातै महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाकै अनुसारि क्षेत्रकालका प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिकौ स्पष्टपनै जाकरि जानिये सो अवधिज्ञान है सो यहु देव नारकीनिकै तौ सर्वकै पाइए है अर सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है। असज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यहु होता ही नाही। सो यहु भी शरीरादिक पुद्गलनिकै आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद है। देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३। सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिए किंचिन्मात्र रूपी पदार्थकौ जाननहारा देशावधि है सो ही कोई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि, सर्वावधि अर मन पर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै है। केवलज्ञान मोक्षमार्ग-स्वरूप है। तातै इस अनादि ससार अवस्था विषै नका सद्भाव ही नाही है, ऐसै तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनकै स्पर्शादिक विषय तिनिका सम्बन्ध होतै प्रथम कालविषै मतिज्ञानकै पहलै जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षु-दर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहाँ नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तौ चक्षुदर्शन है सो तौ चौइन्द्रिय पचेन्द्रिय जीवनिहीकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतै अवधिज्ञानके पहलै जो सत्तामात्र अवलोकनेरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनिकै अवधिज्ञान सम्भवै तिनिहीकै यहु हो है। जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना। बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहाँ सद्भाव ही नाही। ऐसै

दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दर्शनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमके अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतै शक्ति तौ ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषै कै तौ ज्ञानोपयोग हो है, कै दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसै मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसै स्पर्शकौं जानै तब रसादिककौ न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसै उष्णस्पर्शको जानै तब रूक्षादिकको न जानै। ऐसै एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसै ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रनिके समीप तिष्ठता भी पदार्थ न दीसै, ऐसै ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है कि अनेक विषयनिका युगपत् जानना वा देखना हो है, सो युगपत् होता नाही, क्रम ही करि हो है, सस्कारबलतै तिनिका साधन रहै है। जैसै कागलेकै नेत्र के दोय गोलक है, पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलक-निका साधन करै है तैसै ही इस जीवकै द्वार तौ अनेक है अर उपयोग एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहाँ प्रश्न—जो एक कालविषै एक विषयका जानना वा देखना हो

है तौ इतना ही क्षयोपशम भया कहौ, बहुत काहेकूं कहौ ? बहुरि तुम कहो हौ, क्षयोपशमतैं शक्ति हो है तौ शक्ति तौ आत्माविषैं केवलज्ञान-दर्शनकी भी पाइए है।

ताका समाधान—जैसैं काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताकौ काहूनैं रोक्या अर यहु कह्या,पाँच ग्रामनि-विषैं जावो परन्तु एक दिनविषैं एक ही ग्रामकौं जावो। तहाँ उस पुरुष कै बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तौ द्रव्य अपेक्षा पाइए है,अन्य काल विषैं सामर्थ्य होय, वर्तमानैं सामर्थ्यरूप नाही है परन्तु वर्तमान पाँच ग्राम-नितैं अधिक ग्रामनिविषैं गमन करि सकै नाही। बहुरि पाँच ग्रामनि विषैं जानेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनि-विषैं गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषैं एक ग्रामकौं गमन करनेहीकी पाइए है। तैसैं इस जीवकै सर्वकौ देखनेकी, जाननेकी शक्ति है। बहुरि याको कर्मनैं रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषयनिकौ जानौ वा देखौ परन्तु एक काल विषैं एकहीकौं जानौ वा देखौ। तहाँ इस जीव सर्वके देखने जाननेकी शक्ति तौ द्रव्यअपेक्षा पाइए है, अन्य-कालविषैं सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही, जातैं अपने योग्य विषयनितैं अधिक विषयनिकौ देखि जानि सकै नाही। बहुरि अपने योग्य विषयनिकौ देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है जातैं इनिकौ देखि जानि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक कालविषैं एकहीकौ देखनेकी वा जाननेकी पाइए है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो ऐसैं तौं जान्या परन्तु क्षमोपशम तौ पाइए

अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भए देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसैं कर्महीका निमित्त तौ न रह्या?

ताका समाधान—जैसैं रोकनहारानैं यहु कह्या जो पाँच ग्रामनि-विषैं एक ग्रामकौ एक दिनविषैं जावो परन्तु इन किकरनिकौ साथ लेकैं जावो तहाँ वे किकर अन्यथा परिणमै तौ जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय तैसैं कर्मका ऐसा ही क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषैं एक विषयकौ एक कालविषैं देखौ वा जानौ परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भए देखौ वा जानौ। तहाँ वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तौ देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय। ऐसे यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष है तातै कर्महीका निमित्त जानना। जैसे काहूकैं अंधकारके परमाणु आड़े आएँ देखना न होय, घूघू मार्जारादिकनिकैं तिनको आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसैं जैसैं क्षयोपशम होय तैसैं तैसैंही देखना जानना होय। ऐसैं इस जीवकै क्षयोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषैं अवधि मनःपर्यय हो है ते भी क्षयोपशमज्ञान ही है तिनिकी भी ऐसैं ही एक कालविषैं एककौ प्रतिभासना वा परद्रव्य-का आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततैं बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतैं थोरे अंशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो है तहाँ दर्शनमोहके उदयतैं तौ मिथ्यात्वभाव हो है ताकरि यह जीव

अन्यथा प्रतीतरूप अतत्त्वश्रद्धान करै है। जैसै है तैसै तौ न मानै है अर जैसै नाही है तैसै मानै है। अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुञ्ज प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादि निधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल-द्रव्यनिकापिड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीनसयोग भया, ऐसैं शरीरादिक पुद्गल पर है। इनिका सयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यचादि पर्याय ही है, तिस पर्यायनिविषै अहंबुद्धि धारे है, स्व-परका भेद नाही करि सकै है। जो पर्याय पावै तिसहीकौ आपा मानै,है। बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक है ते तौ आपके गुण है अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततैं उपाधिक भाव भए है अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाही है,शरीरादिक पुद्गलके गुण है अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणूनिकी नाना प्रकार पलटनि हो है सो पुद्-गलकी अवस्था है सो इन सबनिहीकौ अपनो स्वरूप जानै है,स्वभाव पर भावका विवेक नाही होय सकै हैं। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषैं कुटुम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतैं भिन्न हैं अर ते अपनै आधीन होय नाही परिणमैं है तथापि तिनि विषै ममकार करै है। ए मेरे है वे काहू प्रकार भी अपने होते नाही, यह ही अपनी मानि तैं अपने मानै है। बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तौ प्रतीति करै है अर यथार्थस्वरूप जसै है तैसे प्रतीति न करै है। ऐसै दर्शनमोहके उदयकरि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो है। जहाँ तीव्र उदय होय है तहाँ सत्यश्रद्धानतै घना विपरीत श्रद्धान होय है। जब मद उदय होय है तव सत्यश्रद्धानतै थोरा विपरीतश्रद्धान हो है।

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं इस जीवकै कषायभाव हो है तब यह देखता जानता सता परपदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनौ मानि क्रोधादिक करै है। तहाँ क्रोधका उदय होतैं पदार्थनिविषै अनिष्टपनौ वा ताका बुरा होना चाहै। कोऊ मंदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाकौ वध बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुख उपजाय,ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपकौ सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तौ होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि मानका उदय होतैं पदार्थविषै अनिष्टपनौ मानि ताकौं नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मल धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनिकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकौ नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनिकी हीनता,आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसैं ऊँचा दीसै तैसै शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिकौ हीन दिखाय,आप ऊँचा हुआ चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतैं ऊँचा कार्य करै ताकौ कोई उपाय करि नीचा दिखावै और आप कार्य करै ताकूं ऊँचा दिखावै, या प्रकार मानकरि अपनी महतताकी इच्छा तौ होय, महतता होनी भवितव्य आधीन है।

बहुरि मायाका उदय होतैं कोई पदार्थकौ इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताकी सिद्धि किया चाहै। रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदा-

र्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै। परको ठिगनेके अर्थि अपनी अवस्था अनेक प्रकार करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपनाअभिप्राय सिद्ध किया चाहै। या प्रकार मायाकरि इष्ट-सिद्धिके अर्थि छल तौ करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

वहुरि लोभका उदय होतै पदार्थनिकौ इष्ट मानि तिनिकी प्राप्ति चाहै। वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय। वहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनिकौ तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै। या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तौ होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है। ऐसें क्रोधादिका उदयकरि आत्मा परिणमैहै,तहाँ एक एक कषायका च्यारि च्यारि प्रकार है। अनतानुवन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्या-नावरण ३, सज्वलन ४। तहाँ (जिनका उदयतै आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनतानुवधीकषाय है।* ) जिनिका उदय होतै देशचारित्र न होय तातै किचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय है। बहुरि जिनिका उदय होतै सकलचारित्र न होय तातै सर्वका त्याग न होय सकै, ते प्रत्याख्याना-वरण कषाय है। बहुरि जिनिका उदय होतै सकलचारित्रको दोष उपज्या करै तातै यथाख्यातचारित्र न होय सकै,ते सज्वलन कषाय है। सो अनादि ससार अवस्थाविषै इनि च्यारचौ ही कषायनिका निरतर

* यह पक्ति खरडा प्रति में नही है।

उदय पाइए है। परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहाँ भी अर शुक्ललेश्यारूप मदकषाय होय तहाँ भी निरन्तर च्यारचौहीका उदय रहै है। जातै तीव्रमन्दकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाही है, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद है। इनिही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होतै तीव्र क्रोधादिक हो है, मन्द अनुभाग उदय होतै मन्द उदय हो है। बहुरि मोक्षमार्ग भए इनि च्यारौ विषै तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछै च्यारचौका अभाव हो है। बहुरि कोधादिक च्यारचौ कषायनिविषै एककाल एकहीका उदय हो है। इनि कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनौ है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातै काहूकाल भिन्नता भासै, काहूकाल न भासै है। ऐसै कषायरूप परिणमन जानना। बहुरि चारित्रमोहहीके उदयतै नोकषाय होयहै तहाँ हास्यका उदयकरि कही इष्टपनौ मानि प्रफुल्लित हो है, हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदय करि काहूकौ इष्ट मानि प्रीति करै है तहाँ आसक्त हो है। बहुरि अरतिका उदय करि काहूकौ अनिष्ट मानि अप्रीति करै है तहाँ उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोकका उदयकरि कही अनिष्टपनौ मानि दिलगीर हो है, विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीकौ अनिष्ट मानि तिसतै डरै है, वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहू पदार्थकौ अनिष्ट मानि ताकी घृणा करै है, वाका वियोग चाहै है। ऐसै ए हास्यादिक छह जानने। बहुरि वेदनिके उदयतै याकै काम परिणाम हो है तहाँ स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसौ रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसो रमनेकी इच्छा हो है अर नपुन्सकवेदके उदयकरि

युगपत् दोऊनिसौ रमनेकी इच्छा हो है, ऐसैं ए नव तौ नोकषाय है। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाही तातैं इनिको ईषत्कषाय कहै है। यहाँ नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनिका उदय तिनि क्रोधादिकनिकी साथि यथासम्भव हो है। ऐसैं मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कपायभाव हो है सो ए कारण ससारके मूल ही है। इनिही करि वर्तमान काल विपै जीव दुखी है अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारण ए ही है। बहुरि इनिहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहाँ मिथ्यात्वका नाम मोह है जातैं तहाँ सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग हे जातैं तहाँ इष्टबुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातैं तहाँ अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपने सबही का नाम मोह है। तातैं इनि विषैं सर्वत्र असावधानी पाइए है। बहुरि अतरायके उदयतैं जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिकौ प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसैं अतरायके उदयतैं चाह्या चाहै सो होय नाही। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतैं किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तौ बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र (चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु थोडा ही*) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ाही लाभ

* यह पंक्ति खरडा प्रति में नही है किन्तु अन्य सब प्रतियो में है, इस कारण आवश्यक जान यहा दे दी गई है।

हो है। ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाँ भी अनेक बाह्य कारण चाहिएं। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतैं जीवकै अवस्था हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषै वेदनीयके उदयकरि शरीरविषै बाह्य सुख दुःखका कारण निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपनौ रोगीपनौ शक्तिवानपनौ दुर्बलपनौ इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीडा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो है। बहुरि बाह्यविषै सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक, असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बधनादिक सुख दुखकौ कारन हो है। ए बाह्यकारण कहै तिनि विषै केई कारण तौ ऐसे है जिनिके निमित्तस्यौ शरीरकी अवस्था ही सुख दुःखको कारण हो है अर वे ही सुख दुःखकौ कारन न हो है। बहुरि केई कारण ऐसे है जे आप ही सुख दुःखकौ कारण हो है। ऐसे कारणका मिलना वेदनीयके उदयतै हो है। तहाँ सातावेदनीयतैं सुखके कारण मिलै अर असातावेदनीयतै दुःखके कारण मिलै। सो इहाँ ऐसा जानना, ए कारणही तौ सुखदुःखकौ उपजावै नाही, आत्मा मोहकर्मका उदयतै आप सुखदुःख मानै है। तहाँ वेदनीयकर्मका उदयकै अर मोहकर्मका उदयकै ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तौ सुख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारन मिलै तब दुःख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारन काहूकौ सुखका, काहूकौ दुःखका कारण हो है। जैसै काहूकै सातावेदनीयका उदय होतै मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है, तैसा ही वस्त्र काहूकौ असाता

वेदनीयका उदय होतें मिल्या सो दुःखका कारण हो है। तातैं बाह्य वस्तु सुखदुःखका निमित्तमात्र हो है। सुख दुःख हो है सो मोहके निमित्ततैं हो है। निर्मोही मुनिनकै अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारन मिलैं तौ भी सुख दुःख न उपजै। मोही जीवकै कारन मिलै वा बिनाकारन मिलै भी अपने सकल्प हीते सुखदुःख हुआ ही करै है। तहाँ भी तीव्रमोहीकै जिस कारनको मिले तीव्र सुख दुख होय तिसही कारनकौ मिलै मदमोहीकै मद सुखदुःख होय। तातैं सुख-दुःखका मूल बलवान कारण मोहका उदय है। अन्य वस्तु है सो बलवान कारन नाही। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवकै परिणामनिके निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजीव अन्य वस्तुहीकौ सुखदुःखका कारन मानै है। ऐसै वेदनीयकरि सुखदुःखका कारन निपजै है। बहुरि आयुकर्मके उदयकरि मनुष्यादिपर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारन मिलौ, शरीरस्यौ सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किएँ भी शरीरस्यौ सम्बन्ध रहै नाही, तिसहीकाल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस ससारविषै जन्म, जीवन, मरनका कारन आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीन-पर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारनतैं जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतैं मरन हा है। सहज ही ऐसा आयु-कर्मका निमित्त है। और कोई उपजावनहारा, क्षपावनहारा, रक्षाकरने हारा है नाही, ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसै नवीन वस्त्र पहरै

कितेक काल पहरे रहै पीछै ताकूं छोड़ि अन्य वस्त्र पहरै तैसें जीव नवीन शरीर धरै, कितेक काल धरे रहै, पीछै ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक है। जीव जन्मादि रहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाही। तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्यायसम्बन्धी कार्यनि-विषै ही तत्पर होय रह्या है। ऐसैं आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यह जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है, तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहाँ त्रस स्थावरादि विशेष निपजै है। बहुरि तहाँ एकेंद्रियादि जातिकौं धारै है। इस जाति कर्म-का उदयकै अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमकै निमित्तनैत्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशय होय तैसी जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहाँ शरीरका परमाणु अर आत्माका प्रदेशोका एक बन्धन हो है अर सकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अगोपांगादिकका योग्यस्थान प्रमाण लिए हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसन आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजै है वा हृदय-स्थानविषै आठ पाखडीका फूल्याकमलकै आकार द्रव्यमन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेप होना अर वर्णादिक-का विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै है सो ए शरीररूप परणए परमाणु ऐसैं परिणमै है। बहुरि श्वासो-च्छ्वास वा स्वर निपजै है सो ए भी पुद्गलके पिंड है अर शरीरस्यौं एक बधानरूप है। इनविषै भी आत्माके प्रदेशव्याप्त है। तहां श्वासोच्छ्-वास तौ पवन है सो जैसैं आहारकौ ग्रहै नीहारकौ निकासै तब ही जीवनौ

होय तैसै बाह्यपवनकौ ग्रहै अर अभ्यतरपवनकौ निकासै तब ही जीवितव्य रहै। तातै श्वासोच्छ्‌वास जीवितव्यका कारन है। इस शरीरविषै जैसै हाड माँसादिक है तैसै ही पवन जानना। बहुरि जैसै हस्तादिकसौ कार्य करिए तैसै ही पवनतै कार्य करिए है। मुखमै ग्रास धरचा ताकौ पवनतै निगलिए है, मलादिक पवनतै ही बाहर काढिए है, तैसै ही अन्य जानना। बहुरि नाडी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है। सो जैसै वीणाकी तातिकौ हलाए भाषारूपहोने योग्य पुद्‌गलस्कध है, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै है तैसै तालवा होठ इत्यादि अगनिकौ हलाए भाषापर्याप्तिविषै ग्रहे पुद्‌गलस्कध है, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै है। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो है। इहाँ ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदडी बेडी है तहाँ एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तौ गमनादि होय सकै, दोऊनिविषै एक बैठि रहै तौ गमनादि होय सकै नाही अर दोऊनिविषै एक बलवान होय तौ दूसरेकौ भी घसीट ले जाय तैसै आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्‌गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप बधान है तहाँ आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्‌गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्‌गलविषै शक्ति पाइए है अर आत्माकी इच्छा न होय तौ हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इनि विषै पुद्‌गल बलवान होय हालै चालै तौ ताकी साथि विना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसै हलन चलनादि होय है। बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै हैं। ऐसै ए कार्य निपजै है, तिनिकरि

मोहके अनुसारि आत्मा सुखी दु.खी भी हो है। नामकर्मके उदयतै स्वमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो है और कोई करनहारा नाही है। बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहाँ है ही नाही। बहुरि गोत्रकर्मकरि ऊँचा नीचाकुलविषै उपजना हो है तहाँ अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है। मोहके निमित्ततै तिन करि आत्मा सुखी दुखी भी हो है। ऐसै अघाति कर्मनिका निमित्त तै अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि ससारविषै घाति अघाति कर्मनिका उदयकै अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य अपने अन्तरगविषै विचारि देखि, ऐसै ही है कि नाही। सो ऐसा विचार किए ऐसै ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसै है तौ तू यह मान कि 'मेरै अनादि ससार रोग पाइए है ताके नाशका मोकौं उपाय करना,' इस विचारतै तेरा कल्याण होगा।

**इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार अवस्थाका निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२॥**

# तीसरा अधिकार

## संसार अवस्थाका स्वरूप-निर्देश

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपनौं करो प्रकाश।
जो बहुविधि भवदुखनिकौं, करि है सत्तानाश ॥१॥

अब इस ससार अवस्थाविषै नानाप्रकार दु.ख है तिनिका वर्णन करिए है—जातै जो ससारविषै भी सुख होय तौ ससारतै मुक्त होने का उपाय काहेकौ करिए। इस ससारविषै अनेक दु ख है, तिसहीतै ससारतै मुक्त होनेका उपाय कीजिए है। बहुरि जैसै वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीकौ ससार रोगका निश्चय कराय पीछै तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तैसै यहाँ ससारका निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि ससारीकौ ससार रोगका निश्चय कराय अब तिनिका उपाय करनेकी रुचि कराईए है। जैसै रोगी रोगतै दु खी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही, साँचा उपाय जानै नाही अर दु ख भी सह्या जाय नाही। तब आपको भासै सो ही उपाय करै तातै दु ख दूरि होय नाही। तब तड़फि तडफि परवश हुवा तिनि दु खनिकौ सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही। याकौ वैद्य दु खका मूलकारण बतावै, दु खका स्वरूप बतावै, या के किये उपायनिकूं झूठे दिखावै तब साचे उपाय करनेकी रुचि होय। तैसैही यह ससारी ससारतै दु खी होय रह्या है

परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही अर साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुख भी सह्या जाय नाही। तब आपकौ भासै सो ही उपाय करै तातै दुख दूरि होय नाही। तब तडफि-तडफि परवश हुवा तिनि दु खनिकौ सहै है।

## दुःखोंका मूल कारण

याकौ यहाँ दु खका मूलकारण बताइए है, दु खका स्वरूप बताइए है अर तिनि उपायनिकूं झूठे दिखाइए तौ साँचे उपाय करनेकी रुचि होय तातै यह वर्णन इहाँ करिये है। तहाँ सब दु खनिका मूल-कारन मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असयम है। जो दर्शनमोहके उदयतै भया अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुस्वरूपकी यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्या-दर्शनहीके निमित्ततै क्षयोपक्षमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथार्थ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतै भया कषायभाव ताका नाम असयम है ताकरि जैसै वस्तुका स्वरूप है तैसा नाहीं प्रवर्तै है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसै ये मिथ्यादर्शनादिक है तेई सब दु.खनिका मूलकारन है। कैसे ? सो दिखाइये है:—

## मिथ्यात्वका प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व-पर-विवेक नाही होइ सकै है एक आप आत्मा अर अनत पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनिका सयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीकौ आपो मानै है। बहुरि

आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना देखना हो है। अर कर्मउपाधितैं भए क्रोधादिकभाव तिनिरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है अर स्थूल कृपादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिकौं अपना स्वरूप जानै है। तहाँ ज्ञानदर्शकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारै हो है तातैं यहु मानै है, ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग है। इनिकरि मैं देखौं जानौं हौं ऐसी मानितातैं इन्द्रियनिविषै प्रीति पाइए है।

## मोहजनित विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतैं तिनि इन्द्रियनिकै द्वारा विषय ग्रहण करने की इच्छा हो है। बहुरि तिनिविषै इनिका ग्रहण भए तिस इच्छा के मिटनेतैं निराकुल हो हैं तब आनन्द मानै है। जैसैं कूकरा हाड़ चाबै ताकरि अपना लोही निकसै ताका स्वाद लेय ऐसैं मानै, यहु हाड़निका स्वाद है। तैसैं यहु जीव विषयनिकौं जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्तैं ताका स्वाद लेय ऐसैं मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमैं तौ स्वाद है नाही। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या, परन्तु मैं अनादि अनंतज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, ऐसा नि केवलज्ञानका तौ अनुभव है नाही। बहुरि मैं नृत्य देख्या, राग सुण्या, फूल सूंघ्या, पदार्थ स्पर्शा, स्वाद जान्या तथा मौकौं यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषयनिकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसैं इस जीवकैं मोहके निमित्ततैं विषयनिकी इच्छा पाइए है।

सो इच्छा तौ त्रिकालवर्त्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वकौ स्पर्शौं, सर्वकौ स्वादौ, सर्व को सूंघौ, सर्वकौ देखौ, सर्वकौ सुनौं, सर्वकौ जानौ सो इच्छा तौ इतनी है अर शक्ति इतनी ही है जो इन्द्रियनिकै सन्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनिविषै काहूकौ किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतै मनकरि किछू जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिले सिद्धि होय। तातै इच्छा कबहूँ पूर्ण होय नाही। ऐसी इच्छा तौ केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तौ इच्छा पूर्ण होय नाही तातै मोहके निमित्ततै इन्द्रियनिकै अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिबो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है। ऐसा दुःखी हो रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणकै अर्थि अपना मरनको भी नाही गिनै है। जैसै हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बड़सीकै लाग्या मॉस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतंग कै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासै तौ भी मरनकौ गिनै नाही, विषयनिका ग्रहण करै जातै मरण होनेतै इन्द्रियनिकरि विषयसेवन की पीड़ा अधिक भासै है। इनि इन्द्रियनिकी पीडाकरि सर्व जीव पीड़ितरूप निर्विचार होय जैसै कोऊ दुखी पर्वततै गिरि पड़ै तैसै विषयनिविषै झपापात ले है। नानाकष्टकरि धनकौ उपजावै ताकौ विषयके अर्थि खोवै। बहुरि विषयनिके अर्थि जहाँ मरन होता जानै तहाँ भी जाँय, नरकादिकौ कारन जे हिंसादिक कार्य तिनिकौ करै वा क्रोधादि कषायनिकौं उपजावै सो कहा करै, इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातै अन्य विचार किछू आवत

नाही। इस पीडाहीकरि पाडित भए इन्द्रादिक है ते भी विषयनिविषै अति आसक्त हो रहे है। जैसै खाजि रोगकरि पीड़ित हुवा पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीडा न होय तो काहेकौ खुजावै, तैसै इन्द्रिय रोगकरि पीडित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करै है। पीडा न होय तौ काहेकौ विषय सेवन करै ? ऐसै ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतै भया इन्द्रियादिजनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिके निमित्ततै इच्छासहित होय दु खका कारण भया है।

## दुःख निवृत्तिका उपाय

अब इस दु ख दूरि होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिए है—इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तौ नाना प्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिकौ प्रवल करै है अर ऐसै ही जानै है जो इन्द्रिय प्रवल रहे मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहाँ अनेक वाह्यकारण चाहिए है तिनिका निमित्त मिलावै है। वहुरि इन्द्रिय है ते विषयकौ सन्मुख भए ग्रहै तातै अनेक वाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका सयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका सयोग मिलावनेके अर्थि वहुत खेदखिन्न हो है। वहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछैं मन द्वारै स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय तातै तिनि विषयनिकौ अपने आधीन राखनेका उपाय करै अर शीघ्र शीघ्र तिनिका ग्रहण किया करै। वहुरि इन्द्रियनिकै

तौ एक कालविषै एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत बहुत ग्रहण किया चाहै तातै आखता* होय शीघ्र शीघ्र एक विषयकौ छोड़ि औरकौ ग्रहै। बहुरि वाकौ छोड़ि औरकौ ग्रहै, ऐसै हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याकौ भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातै प्रथम तो इन सबनिका ऐसै ही होना अपने आधीन नाही, महाकठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसारि ऐसै ही विधि मिलै तौ इन्द्रियनिकौ प्रबल किए किछू विषयग्रहणकी शक्ति बधै नाही। यह शक्ति तौ ज्ञानदर्शन बधे+ बधै ‡। सो यह कर्मका क्षयोपशमके आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताकै ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूकै शरीर दुर्बल है ताकै अधिक देखिए है। तातै भोजनादिककरि इन्द्रियपुष्ट किए किछू सिद्धि है नाही। कपायादि घटनेतै कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञाननर्शन बधै तब विषय ग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनिका सयोग मिलावै सो बहुतकालताई रहता नाही अथवा सर्व विषयनिका सयोग मिलता ही नाही। तातै यह आकुलता रहिवो ही करै। बहुरि तिनि विषयनिकौ अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाही। वे तौ जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमै है वा कर्मोदयके आधीन है। सो ऐसा कर्मका बन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछै उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करतै भी कर्मका निमित्त बिना सामग्री मिलै नाही। बहुरि एक विपय कौ छोडि अन्यका ग्रहणकौ ऐसै हापटा मारै है, सो कहा सिद्ध हो है। जैसै मणकी भूख वालेकौ कण मिल्या तौभूख कहा मिटै ? तैसै सर्व

* उतावला, + वढनेपर, ‡ वढै।

का ग्रहणकी जाकै इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसै मिटै ? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाही। तातै यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछे कि इस उपायतै केई जीव सुखी होते देखिए है, सर्वथा झूठ कैसै कहो हौ ?

ताका समाधान—सुखी तौ न हो है, भ्रमतै सुख मानै है। जो सुखी भया तौ अन्य विषयनिकी इच्छा कैसै रहैगी। जैसै रोग मिटे अन्य औषध काहेकौ चाहै तैसै दुःख मिटे अन्य विषयकौ काहेकौ चाहै। तातै विषयका ग्रहणकरि इच्छा थभि जाय तौ हम सुख मानै। सो तौ यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तौ तिसकी इच्छा रहे अर जिस समय ताका सग्रह भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहणकी इच्छा होती देखिए है तौ यह सुख मानना कैसे है। जैसै कोऊ महा क्षुधावान् रक ताकौ एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तसै यह महातृष्णावान् याकौ एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतै सुख है नाही।

कोऊ कहै जैसै कण कणकरि अपनी भूख मेटै तैसै एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तौ दोष कहा ?

ताका समाधान—जो कण भेले होय तौ ऐसै ही मानै। परन्तु जब दूसरा कण मिले तब तिस कणका निर्गमन होय जाय तौ कैसै भूख मिटै ? तैसै ही जानने विषै विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तव पूर्व विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाही तौ कैसै इच्छा पूरन होय ? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटै नाही। आकुलता मिटे

बिना सुख कैसै कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्यादर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है तातैं आगामी अनेक दुखका कारन कर्म बधै है। जातैं यह वर्त्तमानविषै सुख नाही, आगामी सुखका कारन नाही, तातें दुःख ही है। सोई प्रवचनसार विषै कह्या है—

**"सपर बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।**
**जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तद्धा* ॥१॥**

जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है, बधका कारण है, विषम है, सो ऐसा सुख तैसा दुःखही है। ऐसै इस ससारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तौ साँचा उपाय कहा?

## दुःख निवृत्तिका सांचा उपाय

जब इच्छा तौ दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुख मिटै। सो इच्छा तौ मोह गए मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भए होय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई साँचा उपाय जानना। ऐसै तौ मोहके निमित्ततैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है, ताका वर्णन किया।

इहाँ कोऊ कहै, ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतैं जानना न भया ताकूं दुःखका कारण कहौ, क्षयोपशमकौ काहेकौ कहो?

ताका समाधान—जो जानना न होना दुःखका कारण होय तौ पुद्गलकै भी दुःख ठहरै। तातैं दुःखका मूलकारण तौ इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतैं हो है, तातैं क्षयोपशमकौ दुःखका कारण कह्या है, परमार्थतैं क्षयोपशम भी दुःखका कारन नाही। जो मोहतैं विषय-

* प्रवचनसार १-७६ मे 'तहा' पाठ दिया है।

ग्रहणकी इच्छा है सोई दु खका कारण जानना । बहुरि मोहका उदय है सो दु खरूप ही है । कैसै सो कहिए है—

## दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

प्रथम तौ दर्शनमोहके उदयतै मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसै याकै श्रद्धान है तैसै तौ पदार्थ है नाही, जैसै पदार्थ है तैसै यह माने नाही, तातै याकै आकुलता ही रहै । जैसै बाउलाकौ काहूनै वस्त्र पहराया,वह बाउला तिस वस्त्रको अपना अग जानि आपकू अर शरीरकौ एक मानै । वह वस्त्र पहरावनेवालेकै आधीन है, सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चरित्र करै । वह बाउला तिसकौ अपनै आधीन मानै, वाकी पराधीन क्रिया होय तातै महाखेदखिन्न होय । तैसै इस जीवकौ कर्मोदयनै शरीर सम्बन्ध कराया । वह जीव तिस शरीरकौ अपना अग जानि आपकौ अर शरीरकौ एक मानै, सो शरीर कर्मके आधीन,कबहू कृप होय, कबहू स्थूल होय, कबहू नष्ट होय, कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय । यह जीव तिसकौ आपके आधीन जाने, वाकी पराधीन क्रिया होय तातै महाखेदखिन्न हो है । बहुरि जैसै जहाँ बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहीतै आनि उतरै, वह बाउला तिनकौ अपने जानै, वे तौ उनहीके आधीन,कोऊ आवै, कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै । यह बाउला तिनकौ अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय । तैसै यह जीव जहाँ पर्याय धरै तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहीतै आनि प्राप्त भए, यह जीव तिनिकौ अपने जानै सो वे तौ उनहीकै आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारूप

परिणमै। यह जीव तिनकौ अपने आधीन मानै,उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय।

इहाँ कोऊ कहै,काहूकालविषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीवकै आधीन भी तौ क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान—शरीरादिककी, भवितव्यकी अर जीवकी इच्छा की विधि मिले कोई एक प्रकार जैसैं वह चाहै तैसैं परिणमै तातैं काहू कालविषै वाहीका विचार होतैं सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तौ सर्व प्रकार यह चाहै तैसैं न परिणमै। तातैं अभिप्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहवो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसारि परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनिके उपजावनेकी वा बधावनेकी वा रक्षा करनेकी चिताकरि निरतर व्याकुल रहै है। नानाप्रकार कष्ट सहकरि भी तिनिका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनिकी इच्छा हो है,कषाय हो है, बाह्य सामग्रीविषै इष्ट अनिष्टपनौ मानै है, उपाय अन्यथा करै है, साँचा उपायकौ न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इनि सबनिका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइजाय तातैं सब दु·खनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है। बहुरि इस मिथ्यादशनके नाशका उपाय भी नाही करै है। अन्यथा श्रद्धानकौ सत्यश्रद्धान मानै, उपाय काहेकौ करै। बहुरि सज्ञी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्वनिश्चय करनेका उपाय विचारै तहाँ अभाग्यतैं कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तौ अतत्त्वश्रद्धान पुष्ट होइ जाय। यह तौ जानै, इनतैं मेरा भला होगा, वे ऐसा उपाय कर जाकरि यह अचेत

होय जाय। वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषै दृढ होइ जाय। तब विषयकषायकी वासना बधनेतै अधिक दु खी होइ। बहुरि कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तहाँ तिनिका निश्चय उपदेशकौ तौ श्रद्दहै नाही, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्त्वश्रद्धानी ही रहै। तहाँ मदकषाय वा विषय इच्छा घटै तौ थोरा दुखी होय, पीछै बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय। तातै यह ससारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय। बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपकै जैसा श्रद्धान है तैसै पदार्थनिकौ परिणमाया चाहै सो वै परिणमै तौ याका साँचा श्रद्धान होइ जाय। परन्तु अनादि निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमै है। कोऊ कोऊकै आधीन नाही। कोऊ किसीका परिणमाया परिणमै नाही। तिनिकौ परिणमाया चाहै सो उपाय नाही। यह तौ मिथ्यादर्शन ही है। तौ साँचा उपाय कहा है ? जैसै पदार्थनिका स्वरूप है तैसै श्रद्धान होइ तौ सर्व दु ख दूरि होइ जाय। जैसै कोऊ मोहित होय मुरदाकौ जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दु खी हौ है। बहुरि वाकौ मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवैगा नाही ऐसा मानना सो ही तिस दु ख दूरि होनेका उपाय है। तैसै मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिकौ अन्यथा मानै, अन्यथा परिणमाया चाहै तौ आप ही दुखी हो है। बहुरि उनकौ यथार्थ मानना अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमैगे नाही ऐसा मानना सोही तिस दु.खके दूरि होनेका उपाय है। भ्रमजनित दु खका उपाय भ्रम दूरि करना ही है। सो भ्रम दूरि होनेतै सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना।

## चारित्रमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नौ-कषायरूप जीवके भाव हो है। तब यह जीव क्लेशवान् होय दु खी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषैं प्रवर्तै है। सोई दिखाइए है—जब याकै क्रोध कषाय उपजै, तब अन्यका बुरा करनेकी इच्छा होई। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करनेका उद्यम करै। अथवा औरनि-करि बुरा होता जानै तौ औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तौ अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन सिद्ध न होय तौ भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होतैं कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनकौ भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाही। बहुरि अन्यका बुरा न होई तौ अपने अंतरंग विषैं आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अगनिका घात करै वा विषादिकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होतैं हो है। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिकौ नीचा वा आपकौ ऊँचा दिखा-वनेकी इच्छा होइ। बेहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका सग्रह किया ताकौ विवाहादि कार्यनिविषैं खरचै वा देना करि भी खर्चै। मूए पीछै हमारा जस रहैगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकै भी

अपनी महिमा बधावै। जो अपना सन्मानादि न करै ताको भय आदिक दिखाय दु ख उपजाय अपना सन्मान करावै । बहुरि मान होतें कोई पूज्य बडे होहि तिनका भी सन्मान न करै, किछू विचार रहता नाही। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दीसै तौ अपने अतरगविषै आप बहुत सन्तापवान् होय वा अपने अगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होतें होय है। बहुरि जब याकै माया-कषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नानाप्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीरकी अवस्था करै, बाह्य वस्तुनिकौ अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन-विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करै। बहुरि कपट प्रगट भए अपना बहुत बुरा होइ, मरनादिक होइ तिनिकौ भी न गिनै। बहुरि माया होतें कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनै तौ उनस्यौ भी छल करै, किछू विचार रहता नाही। बहुरि छलकरि कार्यसिद्धि न होइ तौ आप बहुत सतापवान होय, अपने अगनिका घात करै, वा विषादि-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होतें हो है। बहुरि जब याकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदाथका लाभकी इच्छा होय ताकै अर्थि अनेक उपाय विचारै। ताके साधनरूप वचन बोलै। शरीरकी अनेक चेष्टा करै। बहुत कष्ट सहै, सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जानै सो भी कार्य करै। घना दु ख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होतें पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहाँ भी अपना प्रयोजन साधै,किछू विचार रहता नाही। बहुरि जिस इष्टवस्तु की प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करै है। बहुरि इष्ट वस्तुकी

प्राप्ति न होय वा इष्टका वियोग होइ तौ आप बहुत सन्तापवान होय अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था लोभ होतैं हो है। ऐसैं कषायनिकरि पीड़ित हुवा इन अवस्थानिविषै प्रवर्तै है।

बहुरि इनि कषायनिकी साथि नोकषाय हो है। जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकस्मित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हंसना, नाना रोगकरि आप पीडित है, कोई कल्पनाकरि हसने लगि जाय है। ऐसै ही यह जीव अनेक पीडा-सहित है, कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावताकार्य मानि हर्ष मानै है। परमार्थतैं दुखी ही है। सुखी तो कषायरोग मिटै होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अतिआसक्त हो है। जैसै बिल्ली मूसाकौ पकरि आसक्त हो है, कोऊ मारै तौ भी न छोरै। सो इहाँ इष्टपना है। बहुरि वियोग होनेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है तातै दुःखही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका सयोग पाय महा व्याकुल हो है। अनिष्टका सयोग भया सो आपकूं सुहावता नाही। सो यह पीडा सही न जाय तातै ताका वियोग करनेको तडफडै है सो यह दुःख ही है। बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग वा अनिष्टका सयोग होतै अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय, अपना अंग-घात करि मरि जाय, किछू सिद्धि नाही तौ भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग, अनिष्टसयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकानै प्राप्त होय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही

है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुकौ घृणा करै । ताका तौ सयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होइ कै वाकू दूरि किया चाहै, महादु खकौ पावै है । बहुरि तीनू वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुष सहित रमनेकी अर नपु सकवेदकरि दोऊनिस्यौ रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है। आताप उपजै है। निर्लज्ज हो है, धन खर्चै है। अपजसकौ न गिनै है। परम्परा दुख होइ वा दडादिक होय ताकौ न गिनै है। काम पीडातै बाउला हो है । मरि जाय है। सो रसग्रथनिविषै कामकी दश दशा कही है । तहाँ बाउला होना, मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमे ज्वरके भेदनिविषै कामज्वर मरणका कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरणपर्यन्त होते देखिए है। कामाधक किछू विचार रहता नाही । पिता, पुत्री वा मनुष्य तिर्यचणी इत्यादितै रमने लगि जाय है । ऐसी कामकी पीडा महा-दु.खरूप है । या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है।

इहाँ ऐसा विचार आवै है जो इनि अवस्थानिविषै न प्रवर्तै तौ क्रोधा-दिक पीडै अर अवस्थानिविषे प्रवर्तै तौ मरण पर्यत कष्ट होइ । तहाँ मरण पर्यत कष्ट तौ कबूल करिए है अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिए है । तातै यह निश्चय भया जो मरणादिकतै भी कषायनिकी पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ तब कषाय किए बिना रह्या जाता नाही। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलै तौ उनके आश्रय कषाय करै। न मिलै तौ आप कारण बनावै। जैसैं व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तौ जूआ खेलना वा अन्य

क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनावै है । बहुरि काम क्रोधादि पीड़ै शरीरविषै तिनिरूप कार्य करनेकी शक्ति न होइ तौ औषधि बनावै, अन्य अनेक उपाय करै । बहुरि कोई कारण बनै नाही तौ अपने उपयोग विषै कषायनिकौ कारणभूत पदार्थनिका चितवनिकरि आप ही कषायरूप परिणमै। ऐसै यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुवा महान् दु खी हो है। बहुरि जिस प्रयोजनकौ लिये कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुख दूरि होय अर मोकू सुख होय, ऐसें विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनैकै अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दु ख दूर होनेका उपाय मानै है । सो इहाँ कषायभावनितै जो दु.ख हो है सो तो साँचा ही है । प्रत्यक्ष आप ही दुखी हो है । बहुरि यह उपाय करै है सो भूठा है। काहेतै सो कहिए है—क्रोधविषै तौ अन्यका बुरा करना, मानविषै औरनिकू नीचा करि आप ऊँचा होना, मायाविषै छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होनेका कारण बन्या रहना, रतिविषै इष्टसयोगका बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूरि होना, शोकविषै शोकका कारण मिटना, भयविषै भयका मिटना, जुगुप्साविषै जुगुप्साका कारण दूरि होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यो रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यो रमना, नपु सकवेदविषै दोऊनिस्यो रमना, ऐसै प्रयोजन पाइए है। सो इनिकी सिद्धि होय तौ कषाय उपशमनेतैं दुःख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनिकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाही, भवितव्यके आधीन है । जातै अनेक उपाय करते देखिये है अर सिद्धि न

हो है। बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाही, भावतव्यके आधीन है। जातै अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है। बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातै कार्यकी सिद्धि भी होय जाय, तौ तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहाँ थम्भाव होता नाही। यावत् कार्यसिद्ध न भया तावत् तौ तिस कार्यसम्बन्धी कषाय थी। जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्यसम्वन्धी कषाय होइ जाय। एक समय मात्रभी निराकुल रहै नाही। जैसै कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्यस्यौ क्रोधकरि वाका बुरा चाहनै लाग्या, अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बडे-निका बुरा चाहने लाग्या। ऐसै ही मानमायालाभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होइ चुक्या तब अन्य विषै मानादिक उपजाय तिस की सिद्धि किया चाहै। थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्यकी सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बडे कार्यकी सिद्धि करनेका अभिलाषी भया। कषायनिविषै कार्यका प्रमाण होइ तौ तिस कार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाही, इच्छा बधती ही जाय। सोई आत्मानुशासनविषै कह्या है—

"आशागर्तः प्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥३६॥"

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्राणी प्रति पाइए है। अनता-

नत जीव है तिनि सबनिके ही आशा पाइए है । बहुरि वह आशा-रूपी खाडा कैसा है, जिस एक ही खाडे विषै समस्तलोक अणुसमान है । अर लोक एक ही, सो अब इहाँ कौन कौनकै कितना कितना बट-वारै‡ आवै । तुम्हारै यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है । इच्छा पूर्ण तौ होती ही नाही । तातैं कोई कार्यसिद्ध भए भी दुःख दूरि न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होइ जाय । जैसैं काहूकौ मारनेवाले बहुत होय, जब कोई वाकू न मारै तब अन्य मारने लगि जाय । तैसैं जीवको दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय है, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जाय । ऐसैं कषायका सद्भाव रह्या ही करै । कोई एक समय भी कषाय रहित होय नाही । तातैं कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसैं होइ ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्व-कषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ । सो तो कदाचित होइ सकै नाही । तातैं अभिप्रायविषै शाश्वत दुःखी ही रहै है । तातैं कषायनिका प्रयोजनकौ साधि दुःख दूरि करि सुखी भया चाहै है, सो यह उपाय झूंठा ही है तौ साचा उपाय कहा है ? सम्यग्-दर्शनज्ञानतैं यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ, तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै । बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होइ । ऐसैं होते कषायनिका अभाव होइ, तब तिनिकी पीड़ा दूरि होय तब प्रयो-जन भी किछू रहै नाही । निराकुल होनेतैं महासुखी होइ । तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका साचा उपाय है । बहुरि अन्त-

‡ बांटमें—हिस्सेमें ।

रायका उदयतै जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्तिका उत्साह उपजै परन्तु होइ सकै नाही । तब परम आकुलता होइ सो यह दु खरूप है ही । याका उपाय यह करै है, जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनिके दूरि करनेका उद्यम करै सो यह झूठा उपाय है । उपाय किये भी अन्तरायका उदय होतै विघ्न होता देखिए है । अन्तरायका क्षयोपशम भए उपाय बिना भी कार्यविषै विघ्न न हो है । तातै विघ्न का मूलकारण अतराय है । बहुरि जैसै कूकराकै पुरुषकरि बाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यौ वृथा ही द्वेष करै है । तैसै जीवकै अतरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया, यह जीव तिनि बाह्य द्रव्यनिस्यौ वृथा खेद करै है । अन्य द्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ । बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ । तातै जानिए है,अन्य द्रव्यका किछू वश नाही, जिनका वश नाही तिनिस्यौ काहेकौ लरिये । तातै यह उपाय झूठा है । सौ साचा उपाय कहा है ? मिथ्यादर्शनादिकतै इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूरि होय । अर सम्यग्दर्शनादिकही करि अतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तौ मिटि जाय, शक्ति बधि जाय तब वह दु ख दूरि होइ निराकुल सुख उपजै । तातै सम्यग्दर्शनादिक ही साचा उपाय है । बहुरि वेदनीयके उदयतै दु ख सुखके कारण का सयोग हो है । तहाँ केई तौ शरीर विषै ही अवस्था हो है । केई शरीरकी अवस्थाकौ निमित्तभूत बाह्य सयोग हो है । केई बाह्य ही वस्तूनिका सयोग हो है । तहाँ असाताके उदयकरि शरीरविषै तो क्षुधा, तृषा, उल्लास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो है । बहुरि शरीरकी अनिष्ट

अवस्थाकौ निमित्तभूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बधनादिकका सयोग हो है । बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका सयोग हो है। सो मोहकरि इनिविषै अनिष्टबुद्धि हो है। जब इनिका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनि मैं महाव्याकुल होइ इनिकौ दूरि किया चाहै। यावत् ए दूरि न होंय तावत् दु खी हो है सो इनिकौ होतै तौ सर्व ही दु ख मानै है । बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनौ बलवानपनौ इत्यादि हो है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाकौ निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका सयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किकर हस्ती घोटक धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका सयोग हो है सो मोहकरि इनिविषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनिका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवे जाकरि परिणामनिमै चैन मानै। इनिकी रक्षा चाहै। यावत् रहै तावत् सुख मानै । सो यहु सुख मानना ऐसा है जैसैं कोऊ घने रोगनिकरि बहुत पीडित होय रह्या था ताकै कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशाँतता भई तव वह पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपकौ सुखी कहै, परमार्थतै सुख है नाही। तैसै यहु जीव घने दुःखनिकरि बहुत पीड़ित होइ रह्या था ताकै कोई प्रकार करि कोऊ एक दु खकी कितेककाल किछू उपशांतता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपकौ सुखी कहै है, परमार्थतै सुख है नाही। बहुरि याकौ असाताका उदय होतै जो होय ताकरि तौ दुःख भासै है तातै ताके दूरि करनेका उपाय करै है। अर साताका उदय होतै जो होय ताकरि सुख भासै है तातै ताकौ होनेका उपाय करै है।

सो यहु उपाय झूठा है । प्रथम तौ याका उपाय याकै आधीन नाही। वेदनीयकर्मका उदयकै आधीन है । असाताके मेटनेकै अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थि तौ सर्वहीकै यत्न रहै है परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूके बहुत यत्न किए भी सिद्धि न होय,तातै जानिए है याका उपाय याकै आधीन नाही। बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तौ थोरै काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारण मिटै अर साताका कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतै तिनिकौ भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्यवस्तुकौ भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् तौ वाकी इच्छाकरि आकुलित होइ। अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यकौं भोगनेकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसै काहूकौं स्वाद लेनेकी इच्छा भई थी वाका आस्वाद जिस समय भया तिस ही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुकौ पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ। जैसै स्त्रीकौं देख्या चाहै था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमनेकीं इच्छा हो है। बहुरि ऐसै भोग भोगतै भी तिनिके अन्य उपाय करनेकीं आकुलता हो है तौ तिनिकौ छोरि अन्य उपाय करनकौ लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखौ एक धनका उपाय करनेमै व्यापारादिक करतै बहुरि वाकी रक्षा करनेमैं सावधानी करतै केती आकुलता हो है । बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका

उदय आया ही करै, ताका निराकरणकरि सुख मानै सौ काहेका सुख है। यह तौ रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहै तावत् तिनिकौ मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होइ, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी आकुलता होइ बहुरि क्षुधादिक होइ तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसै याकै उपाय करतै कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै, तातै दु ख ही रहै है। बहुरि ऐसै भी रहना तौ होता नाही, आपकौ उपाय करतै करतै ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछू उपाय बनि सकै नाही। अर ताकी पीडा बहुत होय, सही जाय नाही। तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस ससारमे साताका उदय तौ कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाईए है, घने जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातै उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतै सुख दु.ख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दु ख तो साता असाताका उदय होतै मोहका निमित्ततै हो है। सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकै सहस्र धनका व्यय भया तब वह दु खी हो है। अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है। बाह्यसामग्री तौ वाकै यातै निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धनका धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तौ यहु सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिले कोऊ सुख मानै है, कोऊ दु.ख मानै है। जैसै काहूकौ मोटा वस्त्रका मिलना दुःखकारी होइ, काहूकौ सुखकारी होइ। बहुरि शरीरविषै क्षुधा आदि पीड़ा वा बाह्य इष्टका वियोग, अनिष्टका सयोग भए काहूकै बहुत दु.ख होइ, काहूकै थोरा होइ,

काहूकै न होइ। तातै सामग्रीकै आधीन सुख दु ख नाही।साताअसाता का उदय होतै मोहपरिणामनके निमित्ततै ही सुख दुःख मानिए है।

इहाँ प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी तौ तुम कहौ हो तैसै ही है, परन्तु शरीरविषै तौ पीडा भए दु खी होइ ही होइ अर पीडा न भए सुखी होई सो यह तौ शरीरअवस्था ही कै आधीन सुख दु ख भासै है।

ताका समाधान —आत्माका तौ ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इन्द्रिय शरीरका अग है। सो यामै जो अवस्था वीतै ताका जाननेरूप ज्ञान परिणमै ताकी साथि ही मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख दु ख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्रधनादिकस्यौ अधिक मोह होइ तौ अपना शरीरका कष्ट सहै ताका थोरा दु ख मानै, उनकौ दु·ख भए वा सयोग मिटै बहुत दु ख मानै। अर मुनि है सो शरीरकौ पीडा होतै भी किछू दु ख मानते नाही। तातै सुख दु ख मानना तौ मोहहीकै आधीन है। मोहकै अर वेदनीयकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, तातै साता असाताका उदयतै सुख दु खका होना भासै है। बहुरि मुख्यपनै केतीक सामग्री साताके उदयतै हो है, केतीक असाताके उदयतै हो है तातै सामग्रीनिकरि सुखदु ख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतै सुख दु खका मानना हो है औरनिकरि सुख दु ख होनेका नियम नाही। केवलीकै साता असाताका उदय भी है अर सुख दुखकौ कारण सामग्रीका सयोग भी है। परन्तु मोहका अभावतै किचिन्मात्र भी सुख दु ख होता नाही। तातै सुख दु ख मोहजनित ही मानना। तातै तू सामग्रीके दूरकरनेका वा होनेका उपायकरि दु ख मेट्या चाहै, सुखी भया चाहै। सो यह उपाय झूठा है, तो साँचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतै भ्रम दूरि होई तब सामग्रीतैं सुख दु ख भासै नाही, अपने परिणामहीतें भासै। बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि अपने परिणाम जैसै सामग्रीके निमित्ततै सुखी दुखी न होइ तैसै साधन करै। सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतै मोह मद होइ जाइ तब ऐसी दशा होइ जाइ जो अनेक कारण मिलौ आपको सुख दु ख होई नाही। जब एक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचा सुखकौ अनुभवै तब सर्व दु ख मिटे सुखी होइ, यहु साँचा उपाय है। बहुरि आयुकर्मके निमित्ततै पर्यायका धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरन ह। बहुरि यहु जीव मिथ्यादर्शनादिकतं पर्यायहीकौ आपो अनुभवै है। तातै जीवितव्य रहै अपना अस्तित्व मानै है। मरन भये अपना अभाव होना मानै है। इसही कारणतै सदाकाल याके मरनका भय रहै है। तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है। जिनकौ मरनका कारन जानै तिनिस्यौ बहुत डरै। कदाचित् उनका सयोग बनै तौ महाविह्वल होइ जाय। ऐसै महा दुःखी रहै है। ताका उपाय यहु करै है जो मरनेके कारननिकौ दूर राखै है वा उनस्यौ आप भागै है। बहुरि औषधादिक का साधन करै है, गढ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है, जातै आयु पूर्ण भए तौ अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तौ भी मरन होइ ही होइ। एक समयमात्र भी न जीवै। अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारन मिलौ,सर्वथा मरन न होइ। तातै उपाय किए मरन मिटता नाही। बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ तातै मरन भी होइ ही होइ, याका उपाय करना झूठा ही है तौ साचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतै पर्यायविषै अहंबुद्धि छूटै, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहबुद्धि आवै । पर्यायकौ स्वाग समान जानै तब मरणका भय रहै नाही । बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहीतै सिद्धपद पावै तब मरणका अभाव ही होइ । तातै सम्यग्दर्शनादिकही साचा उपाय है ।

बहुरि नामकर्मके उदयतै गति जाति शरीरादिक निपजै है तिनिविषै पुण्यके उदयतै जे हो है ते तो सुखके कारण हो है । पापके उदयतै हो है ते दु खके कारण हो है । सो इहाँ सुख मानना भ्रम है । बहुरि यहु दु खके कारण मिटावनेका, सुखके कारण होनेका उपाय करै सो झूठा है । साँचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है । सो जैसै वेदनीयका कथन करतै निरूपण किया तैसै इहाँ भी जानना । वेदनीय अर नामकै सुख दु खका कारणपनाकी समानतातै निरूपणकी समानता जाननी । बहुरि गोत्र कर्मके उदयतै नीच ऊँच कुलविषै उपजै है । तहाँ ऊँचा कुलविषै उपजै आपकौ ऊँचा मानै है अर नीचा कुलविषै उपजै आपकौ नीचा मानै है सो कुल पलटनेका उपाय तौ याकौ भासै नाही तातै जैसा कुल पाया तिस ही कुलविषै आपो मानै है । सो कुल अपेक्षा आपकौ ऊँचा नीचा मानना भ्रम है । ऊँचा कुलका कोई निंद्य कार्य करै तौ वह नीचा होइ जाय । अर नीचा कुलविषै कोई श्लाध्य कार्य करै तौ वह ऊँचा होइ जाय । लोभादिकतै नीच कुलवालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय । बहुरि कुल कितेक काल रहै ? पर्याय छूटै कुलकी पलटनि होइ जाय । तातै ऊँचा नीचा कुलकरि आपकू ऊँचा नीचा मानै । ऊँचाकुल वालेकौ नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेकौ पाए हुए नीचापनै का दु ख ही है । तो याका साँचा उपाय कहा है? सो कहिए है,सम्यग्दर्श-

नादिकतै ऊँचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानै । बहुरि तिनिहीतै जाकी बहुरि पलटनि न होइ ऐसा सर्वतै ऊँचा सिद्धपद पावै, तब सब दु ख मिटै,सुखी होइ (तातै सम्यग्दर्शनादिक दु ख मेटने अरु सुख करने का साचा उपाय है)* या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततै ससारविषै दुःख ही दु ख पाइए है ताका वर्णन किया।

अब इसही दु'खकौ पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

## एकेन्द्रिय जीवोंके दुःख

इस ससारविषै बहुत काल तौ एकेन्द्रिय पर्यायही विषै बीतै है। तातै अनादिहीतै तौ नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहाँतै निकसना ऐसैं जैसै भारभूनतै चणाका उछटि जाना सो तहातै निकसि अन्य पर्याय धरै तौ त्रसविषै तो बहुत थोरे ही काल रहै। एकेद्रीहीविषै बहुत काल व्यतीत कर है। तहाँ इतरनिगोदविषै बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषै रहना होय। नित्य निगोदतै निकसे पीछै त्रसविषै तौ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर ही है। अर एकेन्द्रियविषै उत्कृष्ट रहनेका काल असख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है अरु पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनतवाँ भागविषै भी अनते सागर हो है। तातै इस ससारीकै मुख्यपनै एकेन्द्रिय पर्यायविषैही काल व्यतीत हो है। तहाँ एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शन की शक्ति तौ किचिन्मात्र ही रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततै भया मतिज्ञान अर ताके निमित्ततै भया श्रुतज्ञान, अर स्पर्शनइन्द्रियजनित अचक्षुदर्शन जिनकर शीत उष्णादिकको किंचित् जानै देखै है।

* यह पक्ति खरडा प्रति में नही है।

ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातै अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है। अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातै महादु खी है । बहुरि दर्शनमोहके उदयतै मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीको आपो श्रद्धै है। अन्यविचार करनेकी शक्ति ही नाही। बहुरि चारित्रमोहके उदयतै तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमै है जातै उनकै केवली भगवान्ने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्या ही कही है। सो ए तीव्र कषाय होतै ही हो है, सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातै बहुत दु खी होय रहे है, किछू उपाय कर सकते नाही ।

इहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तौ किंचिन्मात्र ही रह्या है, वै कहा कषाय करै ?

ताका समाधान—जो ऐसा तौ नियम है नाही जेता ज्ञान होइ तेता ही कषाय होय। ज्ञान तौ क्षयोपशम जेता होय तेता हो है । सो जैसै कोऊ आँधा बहरा पुरुषकै ज्ञान थोरा होतै भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसै एकेन्द्रियकै ज्ञान थोरा होतै भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायकै अनुसारि किछू उपाय करै। सो वै शक्तिहीन है तातै उपाय करि सकते नाही। तातै उनकी कषाय प्रगट नाही हो है । जैसै कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताकै कोई कारणतै तीव्र कषाय होइ, परन्तु किछू करि सकते नाही। तात वाका कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है, यू ही अति दु खी होइ। तैसै एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन है, तिनिकै कोई कारणतै कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाही, तातै उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है, वै आप ही दु खी हो है। बहुरि ऐसा जानना, जहाँ कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन होय तहाँ घना दु ख हो है बहुरि जैसै कषायघटती जाय, शक्ति बधती

जाय तैसैं दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिकैं कषाय बहुत अर शक्ति-हीन तातैं एकेन्द्रिय जीव महादुःखी है। उनके दुःख वै ही भोगवै है अर केवली जानैं है। जैसैं सन्निपातीका ज्ञान घटि जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनेतैं अपना दुःख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है, तैसैं एकेन्द्रियका ज्ञान थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातैं अपना दुखकौ प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुःखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि चाह्या होता नाही। तातैं भी दुःखी ही हो है। बहुरि अघा-तिकर्मनिविषै विशेषपनैं पापप्रकृतिका उदय है तहाँ असातावेदनीयका उदय होतैं तिसके निमित्ततैं महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनतैं टूटै है, शीत उष्णकरि सूकि जाय है, जल न मिलैं सूकि जाय है, अगनिकरि बलै है, ताकौ कोऊ छेदै है, भेदै है, मसलै है, खाय है, तोरै है इत्यादि अवस्था हो है। ऐसैं ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषैं अवस्था हो है। तिनि अवस्थाकौ होतैं वे महादुःखी हो है। जैसैं मनुष्यकैं शरीर विषैं ऐसी अवस्था भए दुःख हो है तैसैं ही उनकैं हो है। जातैं इनिका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतैं हो है सो वाकैं स्पर्शनइन्द्रिय है ही, ताकरि उन कौ जानि मोहके वशतैं महाव्याकुल हो है परन्तु भागनैकी वा लरनैकी वा पुकारनैकी शक्ति नाही तातैं अज्ञानी लोक उनके दुखकौ जानते नाही। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होइ सो वह बलवान् होता नाही। बहुरि आयुकर्मतैं इनि एकेंद्रिय जीवनिविषैं जे अपर्याप्त है तिनिकैं तौ पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवे भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयुकर्म थोरा तातैं जन्ममरण हूवाही करै, ताकरि दुःखी है। बहुरि नामकर्मविषैं तिर्यंच-

गति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय विशेषपनै पाइए है। कोई हीनपुण्य प्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाही तातै तिनिकरि भी मोहके वशतै दु खी हो है । बहुरि गोत्रकर्मविषै नीचगोत्रहीका उदय है तातै महतता होय नाही तातै भी दु खी ही है । ऐसै एकेन्द्रिय जीव महा-दु खी है अर इस ससारविषै जैसै पाषाण आधारविषै तौ बहुत काल रहै है, निराधार आकाशविषै तौ कदाचित् किचिन्मात्रकाल रहै, तैसै जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषै बहुतकाल रहै है,अन्य पर्यायविषै तौ कदाचित् किचिन्मात्र काल रहै है । तातै यहु जीव ससारविषै महादु खी है ।

## दो इन्द्रियादिक जीवोंके दुःख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय असज्ञीपचेन्द्रिय पर्यायनिकौ जीव धरै तहाँ भी एकेन्द्रियवत् दु ख जानना । विशेष इतना—इहाँ क्रमतै एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछू शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है । तहाँ भी जे अपर्याप्त है वा पर्याप्त भी हीनशक्तिके धारक है, छोटे जीव है, तिनिकी शक्ति प्रगट होती नाही । बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बडे जीव है, तिनिकी शक्ति प्रगट हो है । तातै ते जीव विषयनिका उपाय करै है, दु ख दूरि होनेका उपाय करै है। क्रोधादिककरि काटना, मारना,लरना, छलकरना, अन्नादिका सग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै है । दुःखकरि तडफडाट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करै है । तातै तिनिका दु ख किछू प्रगट भी हो है । सो लट कीडी आदि जीवनिके शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतै वा भूख तृषा आदितै परम दु.ख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लैना। इहाँ विशेष

कहा लिखै। ऐसै द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुखी ही जानने।

## नरकगतिके दुःख

बहुरि सञ्ज्ञीपचेन्द्रियनिविषै नारकी जीव है ते तौ सर्व प्रकार घने दुखी है। ज्ञानादिकी शक्ति किछू है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत। अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै तातै तिस शक्तिके होने करि भी घने दुखी है। बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है। जातै उनकै कृष्णादि अशुभलेश्या ही है। तहाँ क्रोध मानकरि परस्पर दु:ख देनेका निरन्तर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करै तौ यह दुःख मिटि जाय। अर अन्यकौ दुख दिए किछू उनका कार्य भी होता नाही, परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दुाख देनैंहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यकौ दुखदायक शरीर केअग बनावै वा शस्त्रादि बनावै तिनि करि अन्यकौ आप पीडै अर आपको कोई और पीडै। कदाचित् कषाय उपशांत होय नाही। बहुरि माया लोभ की भी अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाही। तातै तिनि कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाही तिनिकरि अतरगविषै महादुखी है। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनिका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय है। परन्तु बाह्यनिमित्त नाही तातै प्रगट होते नाही, कदाचित् किंचित् किसी कारणतै हो है। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्यकारण बनि रहे है, तातै ए कषाय तीव्र प्रगट होइ है। बहुरि वेदनिविषै नपुसक वेद है सो इच्छा तौ बहुत और स्त्री पुरुषस्यौ रमनेका निमित्त नाही, तातै महापीड़ित है। ऐसै कषायनिकरि अति दुखी है। बहुरि वेदनीयविषै

असाताहीका उदय है ताकरि तहाँ अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषै कोढ कास श्वासादि अनेक रोग युगपत् पाइएहैं अर क्षुधा तृषा ऐसी है, सर्वका भक्षण पान किया चाहै है अर तहाँकी माटीहीका भोजन मिलै है,सो माटी भी ऐसी है जो इहाँ आवै तो ताका दुर्गन्धतै केई कोस-निके मनुष्य मरि जाएँ। अर शीत उष्ण तहाँ ऐसा है जो लक्ष योजन का लोहाका गोला होइ सो भी तिनिकरि भस्म होइ जाय। कही शीत है,कही उष्ण है। बहुरि तहाँ पृथिवी शस्त्रनितै भी महातीक्ष्ण कटकनि करि सहित है। बहुरि तिस पृथिवीविषै वन है सो शस्त्रकी धारा समान पत्रादि सहित है। नदी है सो ताका स्पर्श भए शरीर खड खड होइ जाय ऐसे जल सहित है। पवन ऐसा प्रचड है जाकरि शरीर दग्ध हुआ जाय है। बहुरि नारकी नारकीकौ अनेक प्रकार पीडै,घाणीमे पेलै,खड खड करै, हाँडीमे राँधै, कोरडा मारै, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावै इत्यादि वेदना उपजावै। तीसरी पृथिवी पर्यत असुरकुमारदेव जाय ते आप पीड़ा दे वा परस्पर लडावै। ऐसी वेदना होतै भी शरीर छूटै नाही, पारावत् खड खड होई जाइ तौ भी मिलि जाय, ऐसी महा पीड़ा है। बहुरि साताका निमित्त तौ किछू हे नाही। कोई अश कदाचित् कोईकै अपनी मानितै कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान् नाही। बहुरि आयु तहाँ बहुत, जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दु ख तहाँ सहनै होय। बहुरि नामकर्मकी सर्वपापप्रकृतिनिहीका उदय है, एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाही,तिनि करि महादु खी है। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकरि महतता न होइ तातै दु खी ही हे। ऐसै नरकगतिविषै महादु ख जानने।

## तिर्यंचगतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव है तिनिका तो उश्वासकै अठारहवै भाग मात्र आयु है। बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव है सो इनिकी शक्ति प्रगट भासै नाही। तिनिकै दु:ख एकेन्द्रियवत् जानना। ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि बडे पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन है, केई गर्भज है। तिनिविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनकी इच्छाकरि आकुलित है। बहुतकौं तौ इष्टविषयकी प्राप्ति नाही है। काहूकौ कदाचित् किंचित् हो है। बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्व भावकरि अतत्वश्रद्धानी होय रहे है। बहुरि कषाय मुख्यपनै तीव्र ही पाइए है। क्रोधमानकरि परस्पर लरै है, भक्षण करै है, दु ख देइ है, माया लोभकरि छल करै है, वस्तुकौ चाहै है, हास्यादिककरि तिनिकषायनिका कार्यनिविषै न प्रवर्तै है। बहुरि काहूकै कदाचित् मदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै हो है तातै मुख्यता नाही। बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीडा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुतभारवहन शीत उष्ण अंगभगादि अवस्था हो है ताकरि दु खी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातै बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै ही है, मुख्यता नाही। बहुरि आयु अन्तर्मुहूर्त्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहाँ घने जीव स्तोक आयुके धारक हो है। तातै जन्म मरनका दु.ख पावै है। बहुरि भोगभूमियोंकी बड़ी आयु है अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं। बहुरि नामकर्मकी मुख्यपनै तौ तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिका ही

उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्यप्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाही। बहुरि गोत्रविषै नीच गोत्रहीका उदय है तातै हीन होइ रहे है। ऐसै तिर्यचगतिविषै महा-दुःख जानने।

## मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असख्याते जीव तौ लब्धि अपर्याप्त हैं ते सम्मूर्छन ही है, तिनिकी तौ आयु उश्वासके अठारवै भागमात्र है। बहुरि केई जीव गर्भमै आय थोरे ही कालमै मरन पावै है, तिनकी तौ शक्ति प्रगट भासै नाही है। तिनकै दु.ख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमै रहना पीछै बाह्य निकसना हो है। सो तिनिका दु खका वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वं वर्णन किया है तैसै जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवे है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसै जानना। विशेष यहु है, इहाँ कोइ शक्तिविशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष माताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटुम्बादिकका निमित्त विशेप पाइए है इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दु ख प्रत्यक्ष भासै है। जैसै विष्टाविषै लट उपजै तैसै गर्भमे शुक्र शोणितका बिन्दुकौ अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछै तहाँ क्रमतै ज्ञानादिककी वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है। सकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादि सहित तहाँ काल पूरण करे। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्यअवस्थामे महा दुःख हो है। कोऊ कहै बाल्यावस्थामे दु.ख थोरा है, सो नाही है। शक्ति

थोरी है तातैं व्यक्त न होय सकै है। पीछै व्यापारादि वा विषय-इच्छा आदि दुःखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछै वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाइ तब परमदुखी हो है। सो ए दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए है। हम बहुत कहा कहै। प्रत्यक्ष जाकौं न भासै सो कह्या कैसैं सुनै। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए विना होय नाहीं। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही है। एक मनुष्य पर्यायविषै कोई अपना भला होनेका उपाय करै तौ होय सकै है। जैसैं काना साँठा * की जड वा बाड † तौ चूसने योग्य नाहीं। अर बीचिकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाहीं। कोई स्वादका लोभी वाकू बिगारै तो बिगारो। अर जो वाकौं बोइ दे तो वाके बहुत साठे होइ, तिनिका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसैं मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तौ सुख भोगने योग्य नाहीं। अर बीचिकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहाँ सुख होइ सकै नाहीं। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारै तौ बिगारो। अर जो याकौं धर्मसाधनविषै लगावै तौ बहुत ऊँचे पदकौं पावै। तहाँ सुख बहुत निराकुल पाइए। तातैं इहाँ अपना हित साधना, सुख होनेका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

## देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषै ज्ञानादिककी शक्ति किछू औरनितैं विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे है। बहुरि तिनिकै कषाय किछू

---

* गन्ना। † गन्ने के ऊपरका फीका भाग।

मद है। तहाँ भवनवासी व्यतर ज्योतिष्कनिकै कषाय बहुत मन्द नाही अर उपयोग तिनिका चचल बहुत अर किछू शक्ति भी है सो कषायनि-के कार्यनिविषै प्रवर्तै है। कोतूहल विषयादि कार्यनिविषै लगि रहे है। सो तिस आकुलताकरि दु.खीही है। बहुरि वैमानिकनिकै ऊपरि ऊपरि विशेष मदकषाय है अर शक्ति विशेष है तातै आकुलता घटनेतै दु.ख भी घटता है। इहाँ देवनिकै क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है। तातै तिनिके कार्यकी गौणता है। काहूका बुरा करना वा काहू कौ हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तौ कोतूहलादिकरि होइ है। अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है,मुख्यता नाही। बहुरि माया लोभ कषायनिके कारण पाइए है तातै तिनिके कार्यकी मुख्यता है। तातै छल करना विषयसामग्रीकी चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है। सो भी ऊँचे ऊँचे देवनिकै घाटि ‡ है। बहुरि हास्य रति कषायके कारन घने पाइए है तातै इनिके कार्यनिकी मुख्यता है। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनिके कारण थोरे है तातै तिनिके कार्यनिकी गौणता है। बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै है। ए भी कषाय ऊपरि ऊपरि मन्द है। अहमिंद्रनिके वेदनिकी मदताकरि कामसेवनका अभाव है। ऐसै देवनिकै कषायभाव है सो कषायहीतै दु ख है। अर इनिकै कषाय जेता थोरा है तितना दु ख भी थोरा है तातै औरनिकी अपेक्षा इनिकौ सुखी कहिए है। परमार्थतै कषायभाव जीवै है ताकरि दु:खी ही है। बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है। तहाँ भवनत्रिककै थोरा है। वैमानिकनिकै

‡ कम है।

ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरकी अवस्थां स्त्रीमदिरादि सामग्री-का सयोग पाइए है । बहुरि कदाचित् किचित् असाताका भी उदय कोई कारणकरि हो है। तहाँ निकृष्टदेवनिकै किछू प्रगट भी है । अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाही है । बहुरि आयु बड़ी है। जघन्य दशहजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागर है । अर ३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होता नाही । सो इतना काल विषय सुखमे मगन रहै है। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्य प्रकृतिनिहीका उदय है तातै सुखका कारण है। अर गोत्र विषै उच्च गोत्रहीका उदय है तातै महंतपदकौ प्राप्त है। ऐसै इनिकै पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है। तातै तिनिके भोगनेविषै आसक्त होइ रहे है परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातै सुखी होते नाही । ऊँचे देवनिकै उत्कृष्ट पुण्यका उदय है, कषाय बहुत मद है तथापि तिनिकै भी इच्छाका अभाव होता नाही, तातै परमार्थतै दु खी ही है । ऐसै सर्वत्र ससारविषै दुःख ही दु ख पाइए है। ऐसै पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया ।

## दुःखका सामान्य स्वरूप

अब इस सर्व दु खका सामान्यस्वरूप कहिए है । दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होतें हो है । सोई संसारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तौ इच्छा विषयग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसै वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी, अव्यक्तकौं जानने इत्यादिकी इच्छा हो है । सो तहाँ अन्य किछू पीड़ा नाहीं परन्तु यावत् देखै जानै नाही तावत् महाव्याकुल होइ। इस इच्छाका

नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी, हीन करनेकी इत्यादि इच्छा हो है। सो इहाँ भी अन्य कोई पीडा नाही। परन्तु यावत् वह कार्य न होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतै शरीरविषै या बाह्य अनिष्ट कारण मिलै तब उनके दूरि करनेकी हो है। जैसै रोग पीड़ा क्षुधा आदिका सयोग भए उनके दूर करनेकी इच्छा हो है सो इहा यहु ही पीडा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत् महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसै इन तीन प्रकारकी इच्छा होतै सर्व ही दु ख मानै है सो दुःख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततै बनै है सो इन तीन प्रकार इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेकी इच्छा ही है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषै एक एक प्रकारकी इच्छा अनेक प्रकार है। तहाँ केई प्रकारकी इच्छा पूरण करनेका कारण पुण्यउदयतै मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइ सकै नाही। तातै एककौ छोरि अन्यकौ लागै, आगै भी वाकौ छोरि अन्यकौ लागै। जैसै काहूकै अनेक सामग्री मिली है, वह काहूकौ देखै है, वाकौ छोरि राग सुनै है, वाकौ छोरि काहूका बुरा करने लगि जाय, वाकौ छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषै ही एककौ देखि अन्यकौ देखै है। ऐसै ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्ति विषै इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्य का उदय है। याकौ जगत सुख मानै है सो सुख है नाही, दुःख ही है। काहेतै—प्रथम तौ सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकै भी न बनै। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण बनै तौ युगपत् तिनि

का साधन न होइ। सो एकका साधन यावत् न होइ तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भए उस ही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होइ। एक समय भी निराकुल न रहै, तातैं दुःख ही है। अथवा तीन प्रकारकी इच्छा रोगके मिटावनेका किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दु ख घाटि हो है, सर्व दु खका तौ नाश न होइ तातैं दु ख ही है। ऐसैं ससारी जीवनिकै सर्वप्रकार दु ख ही है। बहुरि यहाँ इतना जानना—तीनप्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीडित है अर चौथी इच्छा तौ पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बन्ध धर्मानुरागतैं होइ सो धर्मानुराग विषैं जीव थोरा लागै। जीव तौ बहुत पाप क्रियानिविषैं ही प्रवर्तै है। तातैं चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् कालविषैंही हो है। बहुरि इतना जानना—जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तौ चौथी इच्छावालाकै किछू तीन प्रकार इच्छाके घटनेतैं सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतैं भी दु खी हो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तौ वह बहुत आकुलतावान् है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान् है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है वाकै उसके दूर करनेकी इच्छा थोरी है, तो वह थोडा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तौ वह जीव घना आकुलतावान् है। तातैं सुखी दु.खी होना इच्छाके अनुसार जानना, बाह्य कारणकै आधीन नाही है। नारकी दु.खी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिए

है । तातै नारकीनिकै तीव्रकषायतै इच्छा बहुत है । देवनिकै मन्द कषायतै इच्छा थोरी है । बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दु खी इच्छा हीकी अपेक्षा जानने । तीव्र कषायतै जाकै इच्छा बहुत ताको दु खी कहिए है । मद कषायतै जाकै इच्छा थोरी ताकौ सुखी कहिए है। परमार्थतै घना वा थोरा दु ख ही है,सुख नाही है,देवादिककौ भी सुखी मानिये है सो भ्रम ही है । उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातै आकुलित है । या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असयमतै हो है । बहुरि इच्छा है सो आकुलतामय है अर आकुलता है सो दु ख है ऐसें सर्व जीव ससारी नानाप्रकारके दु खनिकरि पीडित ही होइ रहे है।

## दुःख निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिकौ दुखतै छूटना होय सो इच्छा दूरि करनेका उपाय करो । बहुरि इच्छा दूरि तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय । तातै इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है । ऐसा साधन करतै जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेता ही दुःख दूरि होता जाय बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतै सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दु ख मिटै, साँचा सुख प्रगटै । बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अतरायका अभाव होइ तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञान दर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होइ । अनतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होइ । बहुरि केतेक काल पीछै अघाति कर्मनिका भी अभाव होइ, तब इच्छाके बाह्य कारण तिनिका भी अभाव होइ । मोह गए पीछै एक समय मात्र भी किछू इच्छा उपजावनेकौ समर्थ थे नाही, मोह होतै कारण थे तातै कारण कहे

है सो इनिका भी अभाव भया तब सिद्धपदकौ प्राप्त हो है। तहाँ दुःखका वा दुःखके कारणनिका सर्वथा अभाव होनेतै सदा काल अनौपम्य अखडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहै है। सोई दिखाइए है—

## सिद्ध अवस्थामें दुःखके अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होतै वा उदय होतै मोह करि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था, सो अब मोहका अभावतै इच्छाका भी अभाव भया। तातै दुःखका अभाव भया है। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षय होनेतै सर्व इन्द्रियनिकौ सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातै दुःखका कारण भी दूरि भया है सोई दिखाइए है—जैसे नेत्रकरि एक विषयकौ देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिकौ युगपत् देखै है। कोऊ बिना देख्या रह्या नाही, जाके देखनेकी इच्छा उपजै। ऐसै ही स्पर्शनादिककरि एक एक विषयकौ ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व स्पर्श रस गध शब्दनिकौ युगपत् ग्रहै है। कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाही, जाके ग्रहणकी इच्छा उपजै।

इहाँ कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसै होइ ?

ताका समाधान--इन्द्रियज्ञान होतै तौ द्रव्यइन्द्रियादि बिना ग्रहण न होता था। अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिना ही इन्द्रिय ग्रहण हो है। इहाँ कोऊ कहै, जैसै मनकरि स्पर्शादिककौ जानिए है तैसै जानना होता होगा। त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसै न होता होगा। सो ऐसै नाही है। मनकरि तौ स्मरणादि होतै अस्पष्ट जानना किछू हो है। इहाँ तौ स्पर्शरसादिककौ जैसै त्वचा जीभ इत्यादि करि

स्पर्शं स्वादै सूं घै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतै भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिनिकै हो है। विशेष इतना भया है—वहाँ इन्द्रिय विषयका सयोग होतै ही जानना होता था, इहाँ दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है । बहुरि मनकरि किछू अतीत अनागतकौ वा अव्यक्तकौ जान्या चाहै था,अब सर्व ही अनादितै अनतकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनिकौ युगपत् जानै है। कोऊ बिना जान्या रह्या नाही, जाके जाननेकी इच्छा उपजै । ऐसै इन दु ख और दु खनिके कारण तिनिका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतै मिथ्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनिका सर्वथा अभाव भया तातै दु खका अभाव भया । बहुरि इनके कारणनिका अभाव भया तातै दु खके कारणका भी अभाव भया । सो कारणका अभाव दिखाइए है

सर्व तत्त्व यथार्थ प्रतिभासै, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसै होइ ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाही, निदक स्वयमेव अनिष्ट पावै ही है, आप क्रोध कौनसौ करै ? सिद्धनितै ऊँचा कोई है नाही । इन्द्रादिक आपहीतै नमै है,इष्ट पावै है, तो कौनस्यौ मान करै ? सर्व भवितव्य भासि गया, कोऊ कार्य रह्या नाही, काहूस्यौ प्रयोजन रह्या नाही, काहेका लोभ करै ? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाही, कौन कारणतै हास्य होइ ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाही,इहाँ कहा रति करै? कोऊ दु खदायक सयोग रह्या नाही, कहाँ अरति करै ? कोऊ इष्ट अनिष्ट सयोग वियोग होता नाही, काहेकौ शोक करै? कोऊ अनिष्ट करनेवाला कारण रह्या नाही, कौनका भय करै ? सर्व वस्तु अपने स्वभाव लिए भासै, आपकौ अनिष्ट

नाही, कहाँ जुगुप्सा करै ? काम पीडा दूर होनेतै स्त्रीपुरुष उभयस्यौ रमनेका किछू प्रयोजन रह्या नाही, काहेकौ पुरुष स्त्री नपु सकवेद रूप भाव होइ ? ऐसे मोह उपजनैके कारणनिका अभाव जानना । बहुरि अंतरायके उदयतै शक्ति हीनपनाकरि पूरण न होती थी । अब ताका अभाव भया । तातै दु खका अभाव भया । बहुरि अनत शक्ति प्रगट भई, तातै दु खके कारणका भी अभाव भया ।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तौ करते नाही, इनकी शक्ति कैसै प्रगट भई ?

ताका समाधान—ए कार्य रोगके उपचार थे । जब रोग ही नाही तब उपचार काहेकौ करै । तातै इन कार्यनिका सद्भाव तौ नाही । अर इनिका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातै शक्ति प्रगटी कहिए है । जैसे कोऊ नाही गमन किया चाहै ताकौ काहूनै रोक्या था तब दु.खी था । जब वाकै रोकना दूरि भया, अर जिस कार्यकै अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया । तब वाकै गमन न करतै भी शक्ति प्रगटी कहिए । तैसै ही इहाँ जानना । बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनतवीर्य प्रगट उनकै पाइए है । बहुरि अघाति कर्मनि विषै मोहतै पाप प्रकृतिनिका उदय होतै दुःख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होतै सुख मानै था । परमार्थतै आकुलताकरि सर्व दु ख ही था । अब मोहके नाशतै सर्व आकुलता दूरि होनेतै सर्व दु खका नाश भया । बहुरि जिन कारणनिकरि दु.ख मानै था, ते तौ कारण सर्व नष्ट भए । अर जिनिकरि किंचित् दु.ख दूरि होनेतै सुख मानै था, सो अब मूलहीमै दु ख रह्या नाही । तातै तिन दुःखके उपचारनिका किछू

प्रयोजन रह्या नाही, जो तिनिकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहैं। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होइ रही है। इसहीका विशेष दिखाइये है—

वेदनीय विषै असाताका उदयतै दु.खके कारण शरीर विषै रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाही तब कहाँ होय ? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाकौ कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन कौ कारण होय ? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनै था, सो अब इनिकै अनिष्ट रह्या ही नाही। ऐसे दु खका कारणका तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतै किंचित् दु ख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे, तिनिका प्रयोजन रह्या नाही। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाही, तातै बाह्य भी मित्रादिककौ इष्ट माननेका प्रयोजन रह्या नाही। इनि करि दु ख मेट्या चाहै था वा इष्ट किया चाहै था, सा अब सम्पूर्ण दुःख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततै मरण जीवन था तहाँ मरणकरि दु ख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातै दु खका कारण रह्या नाही। बहुरि द्रव्य प्राणनिकौ धरै कितेक काल जीवनैतै सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषै दु खकी विशेषताकरि तहाँ जीवना न चाहै था,सो अब इस सिद्धपर्याय विषै द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है। अर तहाँ दु खका लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतै अशुभ गति जाति आदि होतै दु ख मानै था, सो अब तिनि सबनिका अभाव भया, दुख कहाँतै होय ? अर शुभगति जाति आदि होतै किंचित् दु ख दूरि होनेतै सुख मानै था, सो अब तिनि बिना ही सर्व दु खका नाश अर सर्व सुखका प्रकाश पाईए है। तातै तिनिका भी किछू प्रयोजन

रह्या नाहीं। बहुरि गोत्रके निमित्ततै नीचकुल पाए दुःख मानै था सो ताका अभाव होनेतै दुःखका कारण रह्या नाही। बहुरि उच्चकुल पाए सुख मानै था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदकौ प्राप्त है। या प्रकार सिद्धनिकै सर्व कर्मके नाश होनेतै सर्व दु खका नाश भया है।

दु खका तौ लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होइ। सो इच्छाका वा इच्छाके कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातै निराकुल होय सर्व दु ख रहित अनन्त सुखकौ अनुभवै है। जातै निराकुलपना ही सुखका लक्षण है। ससारविषै भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहॉ सर्वथा निराकुल भया तहॉ सुख सम्पूर्ण कैसै न मानिए ? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतैं सिद्धपद पाए सर्व दु.खका अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहॉ उपदेश दीजिए है—हे भव्य ! हे भाई ! जो तोकू ससारके दु ख दिखाए, ते तुझ विषै बीतै है कि नाही सो विचारि। अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसै ही है कि नाही सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाही, सो विचारि। जो तेरै प्रतीति जैसै कही है [तैसै ही आवै है सो तू ससारतै छूटि सिद्धपद पावनेका हम उपाय कहै है सो करि, विलम्ब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

**इति श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार दुःखका वा मोक्ष सुखका निरूपक तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥**

# चौथा अधिकार

## मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका निरूपण

दोहा

**इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव ।**
**तिनिकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव ॥१॥**

अब इहाँ ससार दु खनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है तिनिका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए है । जैसे वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगीकुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसै इहाँ ससारके कारणनिका विशेष निरूपण करिए है तौ ससारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब ससाररहित होय । तातै मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है —

### मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितै कर्मसम्बन्धसहित है । याकै दर्शनमोहके उदयतै भया जो अतत्त्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है । जातै तद्भाव जो श्रद्धान करने योग्य अर्थहै ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्त्व है । तत्त्व नाही ताका नाम अतत्त्व है । अर जो अतत्त्व है सो असत्य है, तातै इसहीका नाम मिथ्या है । बहुरि ऐसै ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है । इहाँ श्रद्धानहीका नाम दर्शन है । यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहाँ प्रकरणके वशतै इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना । सो ऐसै ही सर्वार्थसिद्धिनाम

सूत्रकी टीकाविषै कह्या है। जातैं सामान्यअवलोकन ससारमोक्षकौ कारण होई नाही। श्रद्धान ही ससार मोक्षकौ कारण है, तातैं ससार मोक्षका कारणविषै दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्यारूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जैसैं वस्तुका स्वरूप नाहीं तैसैं मानना, जैसैं है तैसैं न मानना ऐसा विपरीताभिनिवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताकौ लिए मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ प्रश्न—जो केवलज्ञान बिना सर्वपदार्थ यथार्थ भासै नाही अर यथार्थ भासै बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ, तातैं मिथ्यादर्शनका त्याग कैसैं बनै ?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तौ ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, विना जानै प्रतीति कैसैं आवै ? यहु तौ सत्य है। परन्तु जैसैं कोऊ पुरुष है सो जिनस्यौं प्रयोजन नाही, तिनकौ अन्यथा जानै वा यथार्थ जानै बहुरि जैसैं जानै तैसे ही मानै, किछू वाका बिगार सुधार है नाही, तातैं बाउला स्याना नाम पावै नाही। बहुरि जिनस्यौं प्रयोजन पाइए है, तिनिकौ जो अन्यथा जानै अर तैसैं ही मानै तौ बिगार होइ तातैं वाकौ बाउला कहिए। बहुरि तिनिकौ जो यथार्थ जानै अर तैसैं ही मानै, तौ सुधार होइ तातें वाकौ स्याना कहिए। तैसैं ही जीव है सो जिनस्यौं प्रयोजन नाही, तिनिकौ अन्यथा जानौ वा यथार्थ जानौ बहुरि जैसैं जानै तैसैं श्रद्धान करै, किछू याका बिगार सुधार नाही तातैं मिथ्यादृष्टी सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाही। बहुरि जिनस्यौं प्रयोजन पाइए है तिनिकौ जो अन्यथा जानै अर तैसैं

ही श्रद्धान करै तौ बिगार होइ तातै याकौ मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनिको जो यथार्थ जानै अर तैसै ही श्रद्धान करै तौ सुधार होइ तातै याकौ सम्यग्दृष्टी कहिए। इहा इतना जानना कि अप्रयोजनभूत वा प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामै ज्ञानकी हीनता अधिकता होना, इतना जीवका बिगार सुधार है। ताका निमित्त तौ ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहाँ प्रयोजनभूत पदार्थनिकौ अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछू और भी बिगार सुधार हो है। तातै याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहाँ कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातै ज्ञानावरणहीकै अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहाँ दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसै भासै ?

ताका समाधान—प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तौ सर्व सज्ञी पचेन्द्रियनिकै भया है। परन्तु द्रव्यलिगी मुनि ग्यारह अग पर्यंत पढै वा ग्रैवेयकके देव अवधिज्ञानादियुक्त है तिनिकै ज्ञानावरणका क्षयोपक्षम बहुत होतै भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यचादिककै ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतै भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातै जानिए है ज्ञानावरणहीकै अनुसारि श्रद्धान नाही। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याकै उदयतै जीवकै मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

## प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहाँ कोऊ पूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन है ?

ताका समाधान—इस जीवके प्रयोजन तौ एक यहु ही है कि दु.ख न होय, सुख होय। अन्य किछू भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाही। बहुरि दु खका न होना, सुखका होना एक ही है, जातै दु खका अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसै ? सो कहिए है।

प्रथम तो दु ख दूरि करनैविषै आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाही होय तो आपकौ पहिचाने बिना अपना दु ख कैसै दूरि करै। अथवा आपापरकौ एक जानि अपना दु.ख दूर करनेकै अर्थि परका उपचार करै तौ अपना दुःख दूरि कैसै होइ ? अथवा आपतै पर भिन्न, अर यहु परविषै अहंकार ममकार कर तातै दु.ख ही होय। आपापरका ज्ञान भए ही दु ख दूरि हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही होइ। जातै आप जीव है, शरीरादिक अजीव है। जो लक्षणादिककरि जीव अजीवकी पहिचान होइ, तौ आपापरकौ भिन्नपनौ भासै। तातै जीव अजीवकौं जानना, अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतै दुःख होता था तिनिका यथार्थ ज्ञान होनेतै दुःख दूरि होइ तातै जीव अजीवकौं जानना। बहुरि दुःखका कारन तौ कर्मबंधन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है। सो इनिकौं न पहिचानै, इनकौ दु खका मूलकारन न जानै तौ इनका अभाव कैसै करै ? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबंधन होइ, तातै दु ख ही होइ। अथवा

मिथ्यात्वादिक भाव है सो दु खमय है । सो इनिकौ जैसेके तैसे न जानै तौ इनिका अभाव न करै तब दु खी ही रहै तातै आस्रवकौ जानना । बहुरि समस्त दु खका कारण कर्मबन्धन है सो याकौ न जानै तब यातै मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताकै निमित्ततै दु खी होइ तातै बधकौ जानना । बहुरि आश्रवका अभाव करना सो सवर है । याका स्वरूप न जानै तौ या विषै न प्रवर्त तब आस्रव ही रहै तातै वर्तमान या आगामी दु ख ही होइ तातै सवरकौ जानना । बहुरि कथचित् किचित् कर्मबधका अभाव ताका नाम निर्जरा है सो याकौ न जानै तब याकी प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ । तब सर्वथा बध ही रहै तातै दु ख ही होइ तातै निर्जराकौ जानना । बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबधका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है । सो याकौ न पहिचानै तौ याका उपाय न करै, तब ससारविषै कर्मबधतै निपजे दु खनिहीकौ सहै तातै मोक्षकौ जानना । ऐसे जीवादि सप्त तत्त्व जानने । बहुरि शास्त्रादि करि कदाचित् तिनिकौ जानै अर ऐसै ही है ऐसी प्रतीति न आई तो जानै कहा होय तातै तिनिका श्रद्धान करना कार्यकारी है । ऐसे जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किए ही दु ख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है । तातै जीवादिक पदार्थ है ते ही प्रयोजनभूत जानने । बहुरि इनिके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनिका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातै सामान्यतै विशेष बलवान् है । ऐसै ये पदार्थ तौ प्रयोजनभूत है तातै इनका यथार्थ श्रद्धान किए तौ दु.ख न होइ, सुख होय अर इनिकौ यथार्थ श्रद्धान किए बिना दु ख हो है, सुख न हो है। बहुरि इनि बिना अन्य पदार्थ है, ते अप्रयोजनभूत है । जातै तिनिकौ

यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दु खकौ कारण नाही।

इहाँ प्रश्न उपजै है, जो पूर्वं जीव अजीव पदार्थ कहे तिनिविषै तो सर्व पदार्थ आय गए तिनि बिना अन्य पदार्थ कौन रहे, जिनिकौ अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तौ सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित है, परन्तु तिन जीव अजीवनिके विशेष बहुत है। तिनि विषै जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय, रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातै सुख उपजै, अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होइ, रागादिक दूरि करनेका श्रद्धान न होइ, तातै दुःख उपजै तिनि विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थतौ प्रयोजनभूत जानेने। बहुरि जिनि विशेषनिकरि सहित जीव अजीवकौ यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूरि करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाही, तिनिविशेषनिकरि सहित जीवअजीव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसै जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना तौ प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि पर्यायनिका वा घटपटादिका अवस्था आकारादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसै ही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनिका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब ससारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसै पाइए है सो कहिए है। इहाँ वर्णन तौ श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तव श्रद्धान करै, तातै जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

## मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितै जीव है सो कर्मके निमित्ततै अनेक पर्याय धरै है तहाँ पूर्व पर्यायकौ छोरै,नवीन पर्याय धरै । बहुरि वह पर्याय है सो एक तौ आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनिका एक पिंड बंधानरूप है । बहुरि जीवकै तिसपर्यायविषै यहु मै हूँ, ऐसै अहंबुद्धि हो है । बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तौ ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक है अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव है तिनि सबनिकौ अपना स्वरूप मानै है । ए मेरे है, ऐसै मम-बुद्धि हो है । बहुरि आप जीव है ताकौ ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिनि सबनिकौ अपनी अवस्था मानै है । ए मेरी अवस्था है, ऐसै मम बुद्धि करै है । बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातै जो क्रिया हो है ताकौ अपनी मानै है । अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है,ताकी प्रवृत्तिकौ निमित्त मात्र शरीरका अंगरूपस्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय है । यहु तिनिकौ एक मानि ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मै स्पर्श्या,-जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या,नेत्रकरि देख्या,काननिकरि सुन्या, ऐसै मानै है । मनोवर्गणारूप आठ पाँखुडीका फूल्या कमलके आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टिगम्य नाही ऐसा है सो शरीरका अंग है ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है । यहु द्रव्यमनकौ अर ज्ञानकौ एक मानि ऐसै मानै है कि मै मनकरि जान्या । बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकौ जैसै बोलना बनै तैसै हलावै, तब

एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धतै शरीरके अग भी हालै ताके निमित्ततै भाषा-वर्गणारूप पुद्गल वचनरूप परिणमै। यहु सबकौ एक मानि ऐसै मानै जो मै बोलू हूँ। बहुरि अपने गमनादि क्रियाकी वा वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिकौ जैसै कार्य वनै तैसै हलावै, तब एक क्षेत्रागाहतै शरीरके अग हालै तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीरहालै तब अपने प्रदेश भी हालै, यहु सबकौ एक मानि ऐसै मानै, मै गमनादि काय करू हूँ वा वस्तु ग्रहूँ हूँ वा मै किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताकै अनुसारि चेष्टा होइ जाय। जैसै क्रोधादिक भए, रक्त नेत्रादि होइ जाय, हास्यादि भए प्रफुल्लित बदनादि होइ जाय, पुरुष-वेदादि भए लिगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबकौ एक मानि ऐसा मानै कि ए कार्य सर्व मै करू हूँ। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततै मोहभावकरि आप सुख दु.ख मानै। इन सबनिकौ एक जानि शीतादिककौ वा सुख दु ख कौ अपने ही भए मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनिकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कध का खडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अगहीना-दिक होय अर ताकै अनुसार अपने प्रदेशनिका सकोच विस्तार होइ। यहु सबकौ एक मानि मै स्थूल हूँ, मै कृश हूँ, मै बालक हूँ, मै वृद्ध हूँ, मेरे इनि अगनिका भग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनिकौ अपने मानि मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यच हूँ, मै क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, इत्यादिरूप मानै है। बहुरि

शरीर सयोग होने छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय। तिनिकौ अपना जन्म मरण मानि मै उपज्या,मै मरूँगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीर ही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यौ नाता मानै है। जिनिकरि शरीर निपज्या तिनिकौ आपके माता पिता मानै है । जो शरीरकौ रमावै ताकौ अपनी रमनी मानै है। जो शरीरकरि निपज्या ताकौ अपना पुत्र मानै है। जो शरीरकौ उपकारी ताकौ मित्र मानै है । जो शरीरका बुरा करै ताकौ शत्रु मानै है इत्यादिरूप मान्नि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस प्रकारकरि आप अर शरीरकौ एक ही मानै है। इन्द्रियादिक का नाम तो इहाँ कह्या है। याकौ तो किछू गम्य नाही। अचेत हुआ पर्यायविषै अहबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है ? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितै इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तौ भासै नाही अर शरीर मूर्तीक है सो ही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहबुद्धि धारै ही धारै, सो आप जुदा न भास्या तब तिनिका समुदायरूप पर्यायविषै ही अहबुद्धि धारै है । बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भास नाही। बहुरि जिस विचार करि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तै होइ सक नाही तातै पर्याय ही विषै अहबुद्धि पाइए है । बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्यसामग्रीका सयोग होतै तिनि कौ भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किकरादिक प्रत्यक्ष आपतै भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाही, ऐसे आपकौ भासै, तौ भी तिनि विषै ममकार करै है । पुत्रादिकविषै ए है, सो मै ही हूँ, ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्या-

दर्शनतैं शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही भासै है । अनित्यकौ नित्य मानै है, भिन्नकौ अभिन्न मानै, दु खके कारणकौ सुखका कारण मानै, दु:खकौ सुख मानै इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसै जीव अजीव तत्त्व-निका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है ।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं । तिनिकौ अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितैं भए न जानै है । दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनिकौ एक मानै है । जातैं इनिका आधारभूत तौ एक आत्मा अर इनिका परिणमन एकै काल होइ, तातैं याकौ भिन्नपनौ न भासै अर भिन्नपनौ भासनेका कारण जो विचारै है सो मिथ्यादर्शनके बलतैं होइ सकै नाही । बहुरि ए मिथ्यात्व कषायभाव आकुलता लिए है, तातैं वर्तमान दुःखमय है अर कर्मबधके कारण है, तातैं आगामी दु ख उपजावंगे, तिनिकौ ऐसै न मानै है। आप भला जानि इन भावनिरूप होइ प्रवर्तै है । बहुरि यहु दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्वकषायभावनितैं होइ अर वृथा ही औरनिकौ दु ख उपजावनहारे मानै। जैसै दुःखी तौ मिथ्यात्वश्रद्धानतैं होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसारि जो पदार्थ न प्रवर्त्तै ताकौ दुखदायक मानै । बहुरि दुःखी तो क्रोधतैं हो है अर जासौ क्रोध किया होय ताकौ दुःखदायक मानै । दु खी तो लोभतैं होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिकौ दुखदायक मानै, ऐसै ही अन्यत्र जानना । बहुरि इनि भावनिका जैसा फल लागै, तैसा न भासै है । इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दताकरि स्वर्गादिक हो है । तहाँ घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाही, तातैं बुरे न लागै है । कारण कहा

है—ए आपके किए भासै तिनकौ बुरे कैसे मानै है ? बहुरि ऐसैं ही आस्रव तत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इनि आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनिका उदय होतैं ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्व-कषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुखदुःखका कारन मिलना, शरीर संयोग रहना, गतिजातिशरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषै मूल कारन कर्म है। ताकौ तौ पहिचानै नाही, जातै वह सूक्ष्म है, याकौ सूझता नाही। अर वह आपकौ इनि कार्यनिका कर्त्ता दीसै नाही, तातै इनके होनेविषै कै तौ आपकौ कर्त्ता मानै, कै काहू औरकौ कर्त्ता मानै। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तौ गहलरूप होई भवितव्य मानै। ऐसैं ही बंधतत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो संवर है। जो आस्रवकौ यथार्थ न पहिचानै, ताकै संवरका यथार्थश्रद्धान कैसै होइ? जैसै काहूकै अहित आचरण है। वाकौ वह अहित न भासै, तौ ताके अभावकौ हितरूप कैसै मानै? तैसै ही जीवकै आस्रवकी प्रवृत्ति है। याकौ यहु अहित न भासै तौ ताके अभावरूप संवरकौ कैसै हित मानै। बहुरि अनादितै इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहू न भया, तातै संवरका होना भासै नाही। संवर होतै सुख हो है सो भासै नाही। संवरतै आगामी दुःख न होसी सो भासै नाही। तातै आस्रवका तो संवर करै नाही, अर तिन अन्य पदार्थनिकौ दुःखदायक मानै है। तिनिहीके न होनेका उपाय किया करै है सो वे

अपनै आधीन नाही । वृथा ही खेदखिन्न हो है । ऐसै सवरतत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतै अयथार्थ श्रद्धान हो है ।

बहुरि बधका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है । जो बधकौं यथार्थ न पहचानै, ताकै निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसै होय ? जैसैं भक्षण किया हुवा विष आदिकतै दु·ख होता न जानै तो ताकै उषाल‡का उपायकौ कैसैं भला जानै । तैसै बधनरूप किए कर्मनितै दुःख होता न जानै, तौ तिनिकी निर्जराका उपायकौ कैसै भला जानै । बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितै सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनिका तौ ज्ञान होता नाही । बहुरि तिनविषै दु·खकूं कारनभूत शक्ति है,ताका ज्ञान नाही । तातै अन्य पदार्थनिहीके निमित्तकौ दु खदायक जानि तिनिके ही अभाव करनेका उपाय करै है । सो वे अपने आधीन नाही । बहुरि कदाचित् दुःख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट सयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसारि बनै है । तातै तिनिका उपाय करि वृथाही खेद करै है । ऐसै निर्जरातत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतै अयथार्थ श्रद्धान हो है ।

बहुरि सर्व कर्मबधका अभाव ताका नाम मोक्ष है । जो बधकौ वा बंधजनित सर्व दु.खनिकौ नाही पहिचानै, ताकै मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसै होइ । जैसै काहूकै रोग है वह तिस रोगकौ वा रोग-जनित दु.खनिकौ न जानै, तौ सर्वथा रोगके अभावकौ कैसै भला जानै ? तैसै याकै कर्मबन्धन है यह तिस बधनकौ वा बधजनित दु.खकौ न जानै, तौ सर्वथा वधके अभावकौ कैसै भला जानै ? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तौ ज्ञान नाही, तातै बाह्यपदार्थ-

‡ नष्ट करना ।

निकौ दुःखका कारन जानि तिनकै सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै है। अर यहु तौ जानै, सर्वथा दुःख दूरि होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिकौं मिलाय सर्वथा सुखी होना, सो कदाचित् होय सकै नाहीं। यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसै मिथ्यादर्शनतै मोक्षतत्त्वनिका अयथार्थ ज्ञान होनेतै अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतै जीवादि सप्त तत्त्व जे प्रयोजनभूत है तिनिका अयथार्थ श्रद्धान करै है। बहुरि पुण्यपाप है ते इनहीके विशेष है। सो इनि पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतै पुण्यकौ भला जानै है, पापकौ बुरा जानै है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनै है, ताकौ भला जानै है। पापकरि इच्छाके अनुसारि कार्य न बनै, ताकौ बुरा जानै है सो दोन्यौ ही आकुलताके कारण है, तातै बुरे ही है। बहुरि यहु अपनी मानितै तहाँ सुख दुख मानै है। परमार्थतै जहाँ आकुलता है तहाँ दुःख ही है। तातै पुण्यपापके उदयकौ भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनिकौ भले बुरे जानै है सो भी भ्रम ही है। जातै दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन है। ऐसै पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतै अयथार्थ-श्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातै याहीका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतै रहित है तातै याहीका नाम अदर्शन है।

## मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभूत जीवादि

तत्त्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनिके जाननेविषै संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहाँ ऐसैं है कि ऐसें है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है, जैसे "मै आत्मा हूँ कि शरीर हूँ" ऐसा जानना। बहुरि ऐसैं ही है, ऐसा वस्तुस्वरूपतैं विरुद्धतालिए एक रूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है, जैसैं 'मै शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि किछू है, ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है जैसैं 'मै कोई हौं' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिविषैं संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिकौ यथार्थ जानैं वा अयथार्थ जानैं ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाही है। जैसैं मिथ्यादृष्टि जेवरीकौ जेवरी जानैं तौ सम्यग्ज्ञान नाम न होय। अर सम्यग्दृष्टि जेवरीकौ सांप जानैं तौ मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहाँ प्रश्न—जो प्रत्यक्ष साँचा भूठा ज्ञानकौ सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसैं न कहिए ?

ताका समाधान—जहाँ जाननेहीका, साँच भूँठ निर्द्धार करनेहीका प्रयोजन होय, तहाँ तौ कोई पदार्थ है ताका सांचा भूठा जाननेकी अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसैं परोक्ष-प्रमाणका वर्णनविषैं कोई पदार्थ हो है ताका सांचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेकौ अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहाँ संसार मोक्षके कारणभूत साचा भूँठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा

अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाहीं । तातै तिनकी अपेक्षा इहाँ मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या। इहाँ प्रयोजनभूत, जीवादिक-तत्त्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है । इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषै मिथ्यादृष्टिका तौ सर्वजानना मिथ्या-ज्ञान ही कह्या, अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहाँ प्रश्न—जो मिथ्यादृष्टीकै जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थ जानना है ताकौ मिथ्याज्ञान कहौ । जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेकौ तौ सम्यग्ज्ञान कहौ ?

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टि जानै है, तहाँ वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाही है । तातै कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदा-भेद विपर्ययकौ उपजावै है । तहाँ जाकौ जानै है ताका मूल कारणकौ न पहिचानै । अन्यथा कारण मानै सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि जाकौ जानै ताका मूलवस्तु तत्त्वस्वरूप ताकौ नाही पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाकौ जानै ताकौ यहु इनतै भिन्न है, यहु इनतै अभिन्न है ऐसा न पहचानै, अन्यथा भिन्न-अभिन्नपनौ मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसै मिथ्यादृष्टीकै जाननेविषै विपरीतता पाइए है । जैसै मतवाला माताकौ भार्या मानै, भार्याकौ माता मानै, तैसै मिथ्यादृष्टीकै अन्यथा जानना है । बहुरि जैसै काहू-कालविषै मतवाला माताकौ माता वा भार्याकौ भार्या भी जानै तौ भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातै वाकै यथार्थज्ञान न कहिए । तैसै मिथ्यादृष्टी काहू काल विषै किसी पदार्थकौ सत्य भी जानै तौ भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान-

लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परन्तु तिनि करि अपना प्रयोजन तौ अयथार्थ ही साधै है तातै वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टीकै ज्ञानकौ मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहाँ प्रश्न—जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है ?

ताका समाधान—मोहके उदयतै जो मिथ्यात्वभाव होय सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसै विषके सयोगतै भोजन भी विषरूप कहिए तैसै मिथ्यात्वके सम्बन्धतै ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

इहाँ कोऊ कहै ज्ञानावरणका निमित्त क्यो न कहौ ?

ताका समाधान - ज्ञानावरणके उदयतै तौ ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतै किंचित् ज्ञानरूप मतिज्ञान आदि ज्ञान हो है। जो इनि विषै काहूकौ मिथ्याज्ञान काहूकौ सम्यग्ज्ञान कहिए तौ दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टी वा सम्यग्दृष्टीकै पाइए है तातै तिनि दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय सो तौ सिद्धान्तविषै विरुद्ध होइ। तातै ज्ञानावरणका निमित्त बनै नाही।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि जेवरी सर्पादिकके अयथाथज्ञानका कौन कारण है तिसहीकौ जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थज्ञानका कारण कहौ?

ताका उत्तर—जो जाननेविषै जेता अयथाथपना हो है तेता तौ ज्ञानावरणका उदयतै हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतै हो है। जैसै जेवरीकौ सर्प जान्याँ सो यथार्थ जानने की शक्तिका कारण उदयमे हो है,तातै अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी जेवरी जानी सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है

तातै यथार्थ जानै है। तैसै ही जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होनेविषै ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसै काहूपुरुषकै क्षयोपक्षमतै दुखकौ वा सुखकौ कारणभूत पदार्थनिकौ यथार्थ जाननेकी शक्ति होय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखकौ कारणभूत जो होय तिसहीकौ वेदै, सुखका कारणभूत पदार्थनिकौ न वेदै, अर जो सुखका कारणभूत पदार्थकौ वेदै तो सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतै होय सकै नाही। तातै इहाँ दुःखकौ कारणभूत अर सुखकौ कारणभूत पदार्थ वेदनेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाही, असाता साताका उदय ही कारणभूत है। तैसै ही जीवकै प्रयोजनभूत जीवादिकतत्त्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनिकै यथार्थ जाननेकी शक्ति होय। तहाँ जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनिहीकौ वेदै, जानै, प्रयोजनभूतकौ न जानै। जो प्रयोजनभूतकौ जानै तौ सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतै होइ सके नाही। तातै इहाँ प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाही। मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहाँ ऐसा जानना—जहाँ एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय तहाँ तौ ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतै भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहाँ सज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होतै शक्ति होय अर न जानै तहाँ मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतै मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या, मोहका उदयतै भया भाव सो ही कारण कह्या है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातै पहिलै मिथ्याज्ञान कह्यौ पीछै मिथ्यादर्शन कह्यौ ?

ताका समाधान—है तौ ऐसै ही, जाने बिना श्रद्धान कैसै होय। परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी सज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततै हो है। जैसै मिथ्यादृष्टी वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थकौं जानै तौ समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकै मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टीकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसै ही सर्वमिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानकौ कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातै जहाँ सामान्यपनै ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ तौ ज्ञान कारणभूत है ताकौ पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताकौ पीछै। बहुरि जहाँ मिथ्यासम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ श्रद्धान कारणभूत है ताकौ पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताको पीछै कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तौ युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपना कैसै कहौ हौ ?

ताका समाधान—वह होय तौ वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना हो है। जैसै दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तौ प्रकाश होय, तातै दीपक कारण है प्रकाश कार्य है। तैसै ही ज्ञान श्रद्धानकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकै कारणपना जानना।

बहुरि प्रश्न—जो मिथ्यादर्शन के सयोगतै ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तौ एक मिथ्यादर्शन ही ससारका कारण कहना था मिथ्याज्ञान जुदा काहेकौ कह्या ?

ताका समाधान—ज्ञानहीकी अपेक्षा तौ मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कै क्षयोपशमतैं भया यथार्थ ज्ञान तामैं किछू विशेष नाही, अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषैं भी जाय मिलै है, जैसैं नदी समुद्र मै मिलै। तातैं ज्ञानविषैं किछु दोष नाही, परन्तु क्षयोपशमज्ञान जहाँ लागै तहाँ एक ज्ञेयविषै लागै, सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततैं अन्य ज्ञेयनिविषैं तौ ज्ञान लागै, अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्त्वनिका यथार्थ निर्णय करनेविषैं न लागै, सो यहु ज्ञानविषैं दोष भया। याकौं मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषैं दोष भया। याकौं मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसैं लक्षणभेदतैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसैं मिथ्याज्ञानका स्वरूप कह्या। इसहीकौं तत्त्वज्ञानके अभावतैं अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातैं याहीकौं कुज्ञान कहिए है।

## मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—चारित्रमोहके उदयतैं कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहाँ अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाही, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाही, तातैं याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए है—अपना स्वभाव तौ दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तौ रहै नाही। जिन पदार्थनिकौं देखै जानै तिन विषैं इष्ट अनिष्टपनौ मानै, तातैं रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावकौं चाहै, काहूका अभावकौं चाहै। सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता नाही। जातैं

कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता है नाहीं । सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमै है । यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है । बहुरि कदाचित् जैसै आप चाहै तैसै ही पदार्थ परिणमै तौ अपना परिणमाया तौ परिणम्या नाही । जैसै गाड़ा चालै है अर वाकौ बालक धकायकरि ऐसा मानै कि याकौ मै चलाऊँ हूँ । सो वह असत्य मानै है जो वाका चलाया चालै है तौ वह न चालै तब क्यो न चलावै ? तैसै पदार्थ परिणमै है अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानै जो याकौ मै ऐसे परिणमाऊ हूँ । सो यहु असत्य मानै है । जो याका परिणमाया परिणमै तौ वह तैसै न परिणमै तब क्यो न परिणमावै ? सो जैसै आप चाहै तैसै तौ पदार्थका परिणमन कदाचित् ऐसै ही बनाव बनै तब हो है । बहुत परिणमन तौ आप न चाहै, तैसै ही होता देखिये है । तातै यहु निश्चय है, अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होइ ही नाही । कषायभाव करनेतै कहा होय ? केवल आप ही दु.खी होय । जैसै कोऊ विवाहादि कार्य विषै जाका किछू कह्या न होय अर वह आप कर्त्ता होय कषाय करै तौ आप ही दु.खी होय, तैसै जानना । तातै कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछू कार्यकारी नाही । तातै इनि कषायनिकी प्रवृत्ति कौ मिथ्याचारित्र कहिए है । बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिकौ इष्ट अनिष्ट मानै हो है । सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है । जातै कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाही । कैसै, सो कहिए है ।

### इष्ट-अनिष्टकी मिथ्याकल्पना

आपकौ सुखदायक उपकारी होइ ताकौ इष्ट कहिए । आपकौ दुख-

दायक अनुपकारी होय ताकौ अनिष्ट कहिए । सो लोकमैं सर्व पदार्थ अपने २ स्वभावहीके कर्त्ता है। कोऊ काहूकौ सुख दु खदायक उपकारी अनुपकारी है नाही। यहु जीव अपने परिणामनिविषै तिनकौ सुख-दायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दु खदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट मानै है । जातै एक ही पदाथ काहूकौ इष्ट लागै है, काहूकौ अनिष्ट लागै है। जैसे जाकौ वस्त्र न मिलै ताको मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाकौ महीन वस्त्र मिलै ताकौ वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिककौ विष्टा इष्ट लागे है, देवादिककौ अनिष्ट लागै हैं । काहूकौ मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूकौ अनिष्ट लागै है । ऐसै ही अन्य जानने । बहुरि याही प्रकार एक जीवकौ भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषे अनिष्ट लागै है । बहुरि यहु जीव जाकौ मुख्यपनै इष्ट मानै सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसै शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय । पुत्रादिक इष्ट है सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए है, इत्यादि जानने । बहुरि यहु जीव जाकौ मुख्यपनै अनिष्ट मानै सो भी इष्ट होता देखिये है । जैसै गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमे इष्ट लागै है, इत्यादि जानने । ऐसै पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनौ है नाही । जो पदार्थविषै इष्ट अनिष्टपनौ होता, तो जो पदार्थ इष्ट होता, सो सर्वको इष्ट ही होता; जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाही । यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनकौ इष्ट अनिष्ट मानै है, सो यहु कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारी वा दुःखदायक अनुपकारी हो है, सो आपही नाही हो है पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है।

जाकै पुण्यका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका सयोग दु खदायक अनुपकारी हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक है, काहूकै दु.खदायक है,व्यापार किए काहूकै नफ़ा हो है, काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किकर हो है, काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो है। तातै जानिये है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाही, कर्म उदयके अनुसारि प्रवर्तै है। जैसै काहूकै किकर अपने स्वामीके अनुसारि किसी पुरुषकौ इष्ट अनिष्ट उपजावै तौ किछू किकरनिका कर्तव्य नाही, उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किकरनिहीकौ इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसै कर्मके उदयतै प्राप्त भए पदार्थ कर्मके अनुसारि जीवकौ इष्ट अनिष्ट उपजावै तौ किछू पदार्थनिका कर्त्तव्य नाही, कर्मका कर्त्तव्य है। जो पदार्थकौ इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है । तातै यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिकौ इष्ट अनिष्ट मानि तिनिविषै राग द्वेष करना मिथ्या है।

इहाँ कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका सयोग कर्म निमित्ततै बनै है तौ कर्मनिविषै तौ राग द्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तौ जड़ है, उनकै किछू सुख दु:ख देनेकी इच्छा नाही। बहुरि वे स्वयमेवतौ कर्मरूप परिणमै नाही। याके भावनिके निमित्ततै कर्मरूप हो है। जैसै कोऊ अपने हाथ करि भाटा(पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है ? तैसै ही जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलकौ कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मकै कहा दोष है। तातै कर्मस्यौ भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकौ इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है।

जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तौ मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट हैं नाही अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातैं इनि परिणामनिकौ मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवके रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

## राग-द्वेषकी प्रवृत्ति

प्रथम तौ इस जीवकै पर्यायविषै अहबुद्धि है सो आपकौ वा शरीर कौ एक जानि प्रवर्तै है। बहुरि इस शरीरविषै आपकौ सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपकौ न सुहावै ऐसी अनिष्ट अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तौ राग करै है अर ताकै घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्यपदार्थनिविषै तौ द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इनिविषै जिन बाह्य पदार्थनिसौ राग करै है तिनिके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनिके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यौ द्वेष करै है तिनिके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै द्वेष करै है, तिनिके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इनिविषै भी जिनस्यौ राग करै है तिनिके कारण वा अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है। अर जिनस्यौ द्वेष करै है तिनिके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसै ही राग द्वेषकी परम्परा प्रवर्तै है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीरकी अवस्थाकौ कारण नाही

तिनि विषै भी रागद्वेष करै है। जैसै गऊ आदिके पुत्रादिकतै किछू शरीरका इष्ट होय नाही तथापि तहाँ राग करै है। जैसै कूकरा आदिकै बिलाई आदिक आवतै किछू शरीर का अनिष्ट होय नाही तथापि तहाँ द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतै शरीरका इष्ट होता नाही तथापि तिनिविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतै शरीरकै अनिष्ट होता नाही तथापि तिनिविषै द्वेष करै है। ऐसै भिन्न बाह्य पदार्थनिविषै रागद्वेष हो है। बहुरि इनिविषै भी जिनस्यौ राग करै है तिनिके कारण अर घातक अन्यपदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है। अर जिनस्यौ द्वेष करै है तिनिके कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिनि विषै द्वेष वा राग करै है। ऐसै ही यहाँ भी रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्त्तै है।

इहाँ प्रश्न—जो अन्य पदार्थनिविषै तौ रागद्वेष करनेका प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही तौ मूलभूत शरीरकी अवस्थाविषै वा शरीरकी अवस्थाकौ कारण नाही, तिनि पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन कहा है?

ताका समाधान—जो प्रथम मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक है तिनि विषै भी प्रयोजन विचारि राग करै तौ मिथ्याचारित्र काहेकौ नाम पावै। तिनिविषै बिना ही प्रयोजन रागद्वेष करै है अर तिनिहीके अर्थि अन्यस्यौ रागद्वेष करै है तातै सर्व रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहाँ प्रश्न—जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन तौ भासै नाही अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाही, सो कारण कहा है?

ताका समाधान—इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतै रागद्वेषभाव होय सो ए भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सके नाही। जैसै राग होय सो कोई पदार्थ विषै होय, द्वेष हाय सो कोई पदार्थ विषै ही होय। ऐसै तिनिपदार्थनिकै अर रागद्वेषकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। तहाँ विशेष इतना जो केई पदार्थ तौ मुख्यपनै रागकौ कारण है, केई पदार्थ मुख्यपनै द्वेषकौ कारण है। केई पदार्थ काहूकौ काहू काल विषै रागके कारण हो है,काहूकौं काहूकाल विषै द्वेषके कारण हो है। इहाँ इतना जानना—एक कार्य होनेविषै अनेक कारण चाहिए है सो रागादिक होने विषै अतरग कारण मोहका उदय है सो तौ बलवान् है अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान् नाही है। महामुनिनिकै मोह मन्द होतै बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतै भी रागद्वेष उपजते नाही। पापी जीवनिकै मोह तीव्र होतै बाह्यकारण न होतै भी तिनिका सकल्पही करि रागद्वेष हो है। तातै मोहका उदय होतै रागादिक हो है। तहाँ जिस बाह्यपदार्थका आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है। बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेष भाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है। तातै मोहका उदयतै पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाही। ऐसै पदार्थनि विषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि होतै जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना। बहुरि इनि रागद्वेषनि हीके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेदरूप कषायभाव है ते सर्व इस

मिथ्याचारित्रहीके भेद जानने। इनिका वर्णन पूर्वै कियाही है। बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषै स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है तातै याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहाँ परिणाम मिटै नाही अथवा विरक्त नाही, तातै याहीका नाम असयम कहिए है वा अविरति कहिए है। जातै पाँच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषै बहुरि पचस्थावर अर त्रसकी हिसा विषै स्वच्छन्दपना होय अर इनिके त्यागरूप भाव न होय सोई असयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या, है सो कषायभाव भए ऐसै कार्य हो है तातै मिथ्याचारित्रका नाम असयम, वा अविरति जानना। बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातै हिसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इनि पाप कार्यनिविषै प्रवृत्तिका नाम अव्रत है। सो इनिका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातै मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसै मिथ्याचारित्र का स्वरूप कह्या। या प्रकार इस संसारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्या ज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितै पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असंज्ञीपर्यततौ सर्वजीवनिकै पाइए है। बहुरि सज्ञी पचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्वजीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है। परिणमनविषै जैसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ जानना। जैसै एकेन्द्रियादिककै इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनिकै निमित्ततै मिथ्यादर्शनादिकका वर्णन किया है। तिसविषै जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रियादिक जाव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाही है परन्तु तिस नामका अर्थरूप जो भाव

है तिनविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है । जैसैं मै स्पर्शनकरि स्परसूँ हूँ, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है । बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै है अर ताके भावरूप परिणमै है, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लैना। ऐसैं ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितै पाइये है, नवीन ग्रहे नाही। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहाँ बिना ही सिखाए मोहके उदयतै स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्यविचार होनेके कारण मिलै तौ भी सम्यक् परिणमन होय नाही। श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वै बारबार समझावै, यहु किछू विचार करै नाही। बहुरि आपकौ भी प्रत्यक्ष भासै, सो तौ न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसैं, सो कहिए है—

मरण होतै शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा हो है। एक शरीरकौ छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है, सो व्यतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए है परन्तु याकै शरीरतै भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्रीपुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए है। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए है। यहु तिनिविषै ममत्व करै है अर तिनिकै अर्थि नरकादिकविषै गमनकौ कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकै होती देखिए है,यहु तिनकौ अपनी मानै है। बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्त्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसारि कार्य होय ताकौ तौ कहै, मै किया अर अन्यथा होय ताकौ कहै, मै कहा करौ ? ऐसैं ही होना था वा ऐसैं क्यौ

भया, ऐसा मानै। सो कै तौ सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्त्ता रहना था सो विचार नाही। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानै परन्तु मरणका निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाही, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहूँ तौ कहै, मै मरूँगा, शरीर को जलावेगे। कबहूँ कहै, मोको जलावेगे। कबहूँ कहै, जस रह्या तौ हम जीवते ही है। कबहू कहै, पुत्रादिक रहैगे तौ मै ही जीऊँगा। ऐसै बाउलाकीसी नाई वाकै किछू सावधानी नाही। बहुरि आपको परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै, ताका तौ इष्ट अनिष्टका किछू उपाय नाही अर इहाँ पुत्र पोता आदि मेरी संततिविषै घनेकाल ताईं इष्ट रह्या करै अर अनिष्ट न होइ, ऐसे अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछै इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाही परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि यिषयकषायकी प्रवृत्तिकरि वा हिसादि कार्यकरि आप दुःखी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी होय, इस लोकविषै निद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनि-ही विषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताकौ भी अन्यथा श्रद्धै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है। ऐसै यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितै जीव परिणमै है। इस ही परिणमनकरि संसारविषै अनेक प्रकार दुःख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइये है। ऐई भाव दुःखनिके बीज है, अन्य कोई नाही। तातै हे भव्य जो दुःखतै मुक्त भया चाहै तो इनि मिथ्यादर्शनादिक विभावनिका अभाव करना यहु ही कार्य है, इस कार्यके किए तेरा परम कल्याण होगा।

**इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥४॥**

# पाँचवाँ अधिकार

## विविधमत-समीक्षा

दोहा

**बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयो निज भाव।**
**ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव ॥१॥**

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादितै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि ससारविषै दु ख सहतो सतो कदाचित् मनुष्यादिपर्यायनिविषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिकौ पावै। तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिनि मिथ्या-श्रद्धानादिककौ पोषै तौ तिस जीवका दु.खतै मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसै कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकौ पाय कुपथ्य सेवन करै तौ उस रोगीका सुलझना कठिन ही होय। तैसै यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकौ पाय विशेष विप-रीत श्रद्धानादिककै कारणनिका सेवन करै तौ इस जीवका मुक्त होना कठिन ही होय। तातै जैसै वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनिके सेवनको निषेधै तैसै ही इहाँ विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनिका निषेध करिए है। इहाँ अनादितै जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए है ते तौ अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने, जातै ते नवीन ग्रहण किए नाही। बहुरि तिनिके पुष्ट करनेके कारण-निकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जानने।

तहाँ अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तौ पूर्वै वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

## गृहीत मिथ्यात्व

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनिका श्रद्धान सो तौ मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिनिके विषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोषे होय ऐसे कुशास्त्र तिनिविषै श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषै कषायनिका सेवन होय अर ताकौ धर्मरूप अंगीकार करे सो मिथ्याचारित्र है। अब इनका विशेष दिखाइए है—इन्द्र लोकपाल इत्यादि, बहुरि अद्वैतब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव, बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि; बहुरि हनुमान, भैरू, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाडी, सती इत्यादि, बहुरि शीतला, चौथि, साँझी, गणगोरि, होली इत्यादि, बहुरि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, अऊत, पितर, व्यन्तर इत्यादि; बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि; बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि; बहुरि शस्त्र, दवात, बासण इत्यादि अनेक तिनिका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनिकौ पूजै। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहै सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाही, तातै ऐसे श्रद्धानकौ गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहाँ तिनिका अन्यथा श्रद्धान कैसै हो है सो कहिए है—

## सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म

अद्वैतब्रह्मकौ* सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानै सो कोई है नाही।

* "सर्वं वैखल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० खं० १४ म० १
"नेह नानास्ति किंचन" कण्ठोपनिषद् अ० २ व० ४१ म० ११
ब्रह्मैवेदममृत पुरस्ताद ब्रह्मदक्षिणातपश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृत ब्रह्मैवेद विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ मुण्डको० खंड २, मं० ११

प्रथम वाकौ सर्वव्यापी मानै सो सर्व पदार्थ तौ न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनिके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए है, इनिकौ एक कैसे मानिए है ? इनका मानना तौ इनि प्रकारनि करि है—एक प्रकार तौ यहु है जो सर्व न्यारे न्यारे है तिनिके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए । जैसै घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न है तिनिके समुदायका नाम सैना है, तिनितै जुदा कोई सैना वस्तु नाही । सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तौ ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तौ न ठहरचा, कल्पना मात्र ही ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो व्यक्ति अपेक्षा तौ न्यारे न्यारे है तिनिकौ जाति अपेक्षा कल्पना करि एक कहिए है । जैसै सौ घोटक ( घोडा ) है ते व्यक्ति अपेक्षा तौ जुदे जुदे सौ ही है तिनिके आकारादिककी समानता देखि एक जाति कहै, सो वह जाति तिनतै जुदी ही तौ कोई है नाही । सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तौ ब्रह्म जुदा तौ कोई न ठहरचा, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे है तिनिके मिलापतै एक स्कध होय ताकौ एक कहिए । जैसै जलके परमाणू न्यारे न्यारे है तिनिका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसै पृथिवी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहाँ समुद्रादि वा घटादिक है ते तिन परमाणूनितै भिन्न कोई जुदा तौ वस्तु नाही । सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे २ है परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय है सो ब्रह्म है, ऐसै मानिए तौ इनितै जुदा तौ कोई ब्रह्म न ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो अंग तौ न्यारे न्यारे है अर

जाके अग है सो अगी एक है। जैसै नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाकै ए है सो मनुष्य एक है । सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तौ अग हैं अर जाके ए है सो अगी ब्रह्म है । यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्मका अग है, ऐसैं मानिए तौ मनुष्यकै हस्तपादादिक अंगनिकै परस्पर अतराल भए तौ एकत्वपना रहता नाही। जुडे रहे ही एक शरीर नाम पावै । सो लोकविषै तौ पदार्थनिकै अतराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसै मानिए ? अतराल भए भी एकत्व मानिए तौ भिन्नपना कहाँ मानिएगा।

इहा कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्मके अंग है तिनिकरि सर्व जुरि रहे है, ताकौ कहिए है—

जो अंग जिस अंगतै जुरचा है, तिसहीतै जुरचा रहै है कि टूटि टूटि अन्य अन्य अगनिस्यौ जुरचा करै है । जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तौ सूर्यादि गमन करै है, तिनिकी साथि जिन सूक्ष्म अगनितै वह जुरै है ते भी गमन करै। बहुरि उनको गमन करते वे सूक्ष्म अग अन्य स्थूल अंगनितै जुरे रहै, ते भी गमन करै है सो ऐसै सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जैसै शरीरका एक अग खीचे सर्व अग खीचे जाय, तैसै एक पदार्थकौ गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय, सो भासै नाही। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहैगा, तो अग टूटनैतै भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसै रह्या ? तातै सर्वलोकका एकत्वकौ ब्रह्म मानना कैसै सम्भवै ? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहलै एक था, पीछै अनेक भया बहुरि एक होय जाय तातै एक है । जैसै जल एक था सो बासणनिमैं जुदा जुदा भया बहुरि मिलै तब एक होय

वा जैसे सोनाका गदा* एक था सो ककरण कुडलादिरूप भया बहुरि मिलिकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसैं ब्रह्म एक था, पीछै अनेक-रूप भया बहुरि एक होयगा तातै एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है, तौ जब अनेक रूप भया तब जुरचा रह्या कि भिन्न भया। जो जुरचा कहैगा तौ पूर्वोक्त दोष आवैगा। भिन्न भया कहैगा तौ तिस काल तौ एकत्व न रह्या। बहुरि जब सुवर्णादिककौ भिन्न भए भी एक कहिए है सो तौ एक जाति अपेक्षा कहिए है। सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाही। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसैं कहिए? बहुरि पहिले एक था पीछै भिन्न भया मानै है, तो जैसैं एक पाषाणादि फूटि टुकडे होय जाय है तैसैं ब्रह्मके खड होय गए, बहुरि तिनिका एकट्ठा होना मानै है तौ तहाँ तिनिका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तौ तहाँ अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है अर एक होइ जाय है तौ जड़ भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड़ होइ जाय। तहाँ अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया तव काहू कालविषै अनेक वस्तु, काहू कालविषै एक वस्तु ऐसा कहना बनै। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाही। बहुरि जो कहैगा लोक रचना होतै वा न होतै ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहे है, तातै ब्रह्म अनादि अनत है। सो हम पूछै है, लोकविषै पृथवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए है कि ब्रह्म ही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तौ ए न्यारे भए ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न

---

* डला वा पासा.

ठहरया। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तौ जैसाका तैसा कैसै रह्या ? बहुरि वह कहै है जो सबही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है, वाका कोई अंश हो है। ताकौ कहिए है:—जैसै समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहाँ स्थूलदृष्टिकरि तौ गम्य नाही परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिए तौ एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसै ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया। तहाँ स्थूलविचारकरि तौ किछू गम्य नाही परन्तु सूक्ष्मविचार किए तौ एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यहु अन्यथापना और तौ काहूकै भया नाही। ऐसै सर्वरूप ब्रह्मकौ मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसै आकाश सर्वव्यापी एक है तैसैं ब्रह्म सर्व व्यापी एक है। जो इस प्रकार मानै है तौ आकाशवत् बडा ब्रह्मकौ मानि, वा जहाँ घटपटादिक है तहाँ जैसै आकाश है तैसै तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि। परन्तु जैसै घटपटादिककौ अर आकाशकौ एक ही कहिए तौ कैसै बनै ? तैसै लोककौ अर ब्रह्मकौ एक मानना कैसै सम्भवै ? बहुरि आकाशका तौ लक्षण सर्वत्र भासै है तातै ताका तौ सर्वत्र सद्भाव मानिए है। ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाही तातै ताका सर्वत्र सद्भाव कैसै मानिए ? ऐसैं इस प्रकारकरि भी सर्वरूप ब्रह्म नाही है। ऐसै ही विचारकरतै किसी भी प्रकारकरि एक सम्भवं नाही। सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न भासै है।

इहाँ प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है, तातै तुमकौ एक भासै नाही। बहुरि तुम युक्ति कही, सो ब्रह्मका स्वरूप युक्तिगम्य नाही। वचन अगोचर है। एक भी है, अनेक भी है। जुदा

भी है, मिल्या भी है। वाकी महिमा ऐसी ही है, ताकौ कहिए है— जो प्रत्यक्ष तुझकौ वा हमको वा सबनिकौ भासै, ताकौ तौ तू भ्रम कहै। अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहै है कि साचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाही। बहुरि कहै, साचास्वरूप वचन अगोचर है तौ वचन बिना कैसै निर्णय करै ? बहुरि कहै एक भी है, अनेक भी है, जुदा भी है,मिल्या भी हे,सो तिनिकी अपेक्षा बतावै नाही, बाउलेकीसी नाई ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहाँ न्याय न होय है तहाँ झूठे ऐसं ही वाचालपना कर है सो करो। न्याय तौ जैसें साच है तैसै ही होयगा।

## ब्रह्म की इच्छासे जगत्की सृष्टि

बहुरि अब तिस ब्रह्मकौ लोकका कर्त्ता मानै है ताकौ मिथ्या दिखाइए है— प्रथम तौ ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहु स्या" कहिए मै एक हूँ सो बहुत होस्यू। तहाँ पूछिए है— पूर्व अवस्थामे दुःखी होय तब अन्य अवस्थाकौ चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्था तै बहुत रूप होनेकी इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुःख था ? तब वह कहै है जो दुःख तौ न था, ऐसा ही कौतूहल उपज्या। ताको कहिए है–जो पूर्वं थोरा सुखी होय अर कौतूहल किएं घना सुखी होय सो कौतूहल करना विचारै। सो ब्रह्मकै एक अवस्थातै बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसै सम्भवै ? बहुरि जो पूर्वै ही सम्पूर्ण सुखी होय तौ अवस्था काहेको पलटै। प्रयोजन बिना तौ कोई किछू कर्त्तव्य करै नाही। बहुरि पूर्वं भी सुखी होगा, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा; परन्तु इच्छा भई तिसकाल तौ दुःखी होय।

तब वह कहै है, ब्रह्मकै जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातै दु.खी न हो है। तहाँ कहिए है--स्थूलकालकी अपेक्षा तौ ऐसे मानौ परन्तु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तौ इच्छाका अर कार्यका होना युगपत् सम्भवै नाही। इच्छा तौ तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातै सूक्ष्मकालमात्र इच्छा रही, तब तौ दु.खी भया होगा। जातै इच्छा है सो ही दुःख है, और कोई दुःखका स्वरूप है नाही। तातै ब्रह्मकै इच्छा कैसै बनै ?

## ब्रह्म की माया

बहुरि वे कहै है, इच्छा होतै ब्रह्मको माया प्रगट भई सो ब्रह्मकै माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसै रह्या ? बहुरि ब्रह्मकै अर मायाकै दडी दडवत् सयोगसम्बन्ध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो सयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या ? बहुरि जैसे दडी दडकौ उपकारी जानि ग्रहै है तैसै ब्रह्म मायाकौ उपकारी जानै है तौ ग्रहै है,नाही तौ काहेकौ ग्रहै? बहुरि जिस मायाकौ ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसै सम्भवै, वह तौ उपादेय भई। बहुरि जो समवायसम्बन्ध है तौ जैसै अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसै ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसै सम्भवै ? यहु तौ उत्तम भई।

बहुरि वे है कहै कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड़ है सो समवाय-संबंधविषै ऐसे दोय स्वभाव सम्भवै नाही। जैसै प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसै सम्भवै ? बहुरि वह कहै है—मायाकरि ब्रह्म आप तौ भ्रम रूप होता नाही ताकी माया करि जीव भ्रमरूप हो है। ताकौ कहिए

है—जैसैं कपटी अपने कपटकौ आपजानै सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रम रूप होय जाय। तहाँ कपटी तौ वाही कौ कहिए, जानै कपट किया, ताकै कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए, तिनकौ तो कपटी न कहिए। तैसैं ब्रह्म अपनी मायाकौ आप जानै सो आप तौ भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहाँ मायावी तौ ब्रह्म ही कौ कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनकौ मायावी काहेकौ कहिए है।

बहुरि पूछिए है, वै जीव ब्रह्म तै एक है कि न्यारे है। जो एक है तौ जैसैं कोऊ आप ही अपने अंगनिकौ पीडा उपजावै तौ ताकौ बाउला कहिए है तैसैं ब्रह्म आप ही आपतैं भिन्न नाही ऐसे अन्य जीव तिनकौ मायाकरि दुखी करै है सो कैसै बनै ? बहुरि जो न्यारे है तौ जैसैं कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिकौ भ्रम उपजाय पीडा उपजावैं तैसें ब्रह्म विना ही प्रयोजन अन्य जीवनि को माया उपजाय पीडा उपजावे सो भी बनै नाही। ऐसें माया ब्रह्म की कहिए है, सो कैसे सम्भवै ?

## जीवों की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानना

बहुरि वै कहै है, माया होतै लोक निपज्या तहाँ जीवनिकै जो चेतना सो तौ ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहाँ जैसें जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषै जल भर्‍या है तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिंब जुदा जुदा पडै है, चन्द्रमा एक है। तैसैं जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषै ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है, ब्रह्म एक है; तातैं जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्महीकी है। सो ऐसा कहना भी भ्रम ही

है जातें शरीर जड है, याविषै ब्रह्मका प्रतिबिबतैं चेतना भई, तौ घट पटादि जड है तिनविषै ब्रह्मका प्रतिबिब क्यौ न पड्या अर चेतना क्यो न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरकौ तौ चेतन नाही करै है,जीवकौ करै है। तब वाकौ पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तौ चेतन का चेतन कहा करैगा। अचेतन है तौ शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाकौ पूछिए है—ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तौ ज्ञानका अधिक हीनपना कैसै देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाकी जानी कौ न जानै, वह वाकी जानी कौ न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधिका भेद है तौ घटउपाधि होतैं तौ चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घटउपाधि मिटैं याकी चेतना ब्रह्म मै मिलैगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तौ यहु जीव तौ अचेतन रहि जायगा। अर तू कहैगा जीव ही ब्रह्म मै मिल जाय है तौ तहाँ ब्रह्मविषै मिलै याका अस्तित्व रहै है कि नाही रहै है। जो अस्तित्व रहै है तौ यहु रह्या, याकी चेतना याकै रही, ब्रह्मविषै कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तौ याका नाश ही भया, ब्रह्मविषै कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहैगा ब्रह्म की अर जीवनिकी चेतना भिन्न भिन्न है तौ ब्रह्म अर सर्वजीव आप ही भिन्न भिन्न ठहरे। ऐसे जीवनि कैं चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसैं भी बनै नाही।

## शरीरादिक का मायारूप होना

शरीरादि माया के कहो सो माया ही हाड मासादिरूप हो है कि माया के निमित्ततैं और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय है तौ

माया के वर्ण गधादिक पूर्वै ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वै ही थे तौ पूर्वै तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्त्तीक है तहा वर्णादि कैसै सम्भवै ? बहुरि जो नवीन भए तौ अमूर्त्तीक का मूर्त्तिक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरचा। बहुरि जो कहैगा, माया के निमित्त तै और कोई हो है तौ और पदार्थ तौ तू ठहरावता ही नाही, भया कौन ? जो तू कहैगा,नवीन पदार्थ निपजे। तौ ते मायातै भिन्न निपजे, कि अभिन्न निपजे। मायातै भिन्न निपजे तौ मायामयी शरीरादिक काहेकौ कहै, वै तौ तिनपदार्थमय भये। अर अभिन्न निपजे तौ माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेकौ कहै। ऐसै शरीरादिक मायास्वरूप है ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वै कहै है, माया तै तीन गुण निपजे—राजस १ तामस २ सात्विक ३। सो यहु भी कहना कसै बनै ? जातै मानादि कषायरूप भावकौ राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावकौ तामस कहिए है, मदकषायरूप भावकौ सात्विक कहिए है। सो ए तौ भाव चेतनामई प्रत्यक्ष दीखए है अर माया का स्वरूप जड़ कहो हो, सो जडतै ए भाव कैसै निपजे। जो जडकै भी होई तौ पाषाणादिककै भी होय। सो तौ चेतनास्वरूप जीव तिनहीकै ए भाव दीसै है। तातै ए भाव मायातै निपजे नाही। जो मायाकौ चेतन ठहरावै तौ यहु मानै। सो मायाकौ चेतन ठहराए शरीरादिक मायातै निपजे कहैगा तौ न मानैगे तातै निर्धारकर, भ्रमरूप मानै नफा कहा है ?

बहुरि वै कहै है तिनि गुणनि तै ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसे सम्भवै है ? जातै गुणीतैं तौ गुण होंइ, गुणतै

गुणी कैसे निपजै । पुरुषतै तौ क्रोध होय, क्रोधतै पुरुष कैसे निपजै । वहुरि इनि गुणनिकी तौ निन्दा करिए है । इनिकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनकौ पूज्य कैसे मानिए है । बहुरि गुण तौ मायामई अर इनिकौ ब्रह्म के अवतार १ कहिए है सो ए तौ माया के अवतार भए, इनकौ ब्रह्मके अवतार कैसे कहिए है ? बहुरि ए गुण जिनकै थोरे भी पाइए तिनकौ तौ छुड़ावने का उपदेश दीजिए अर जे इनिही की मूर्ति तिनकौ पूज्य मानिए; यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्त्तव्य भी इनमई भासै है । कौतूहलादिक वा स्त्री सेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै है सो तिनि राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो है सो इनिकै राजसादिक पाइये है ऐसा कहौ । इनिकौ पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तौ बनै नाही । जैसे अन्य ससारी है तैसै ए भी है । बहुरि कदाचित् तू कहैगा, ससारी तौ माया के आधीन है सो बिना जाने तिन कार्यनिकौ करै है । ब्रह्मादिक कै माया आधीन है सो ए जानते ही इनि कार्यनिकौ करे है सो यहु भी भ्रम ही है । जातै माया कै आधीन भए तौ काम क्रोधादिही निपजे है और कहा हो है । सो ए ब्रह्मादिकनिकै तौ काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है । कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिकै

१ ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनो ब्रह्म की प्रधान शक्तिया हैं ।

विष्णुपु० अ० २२-५८

कलिकालके प्रारम्भमें परमब्रह्म परमात्माने रजोगुणसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचना की । प्रलयके समय तमोगुणसे उत्पन्न हो काल (शिव) बनकर उस सृष्टिको ग्रस लिया । उस परमात्मा ने सत्वगुणसे उत्पन्न हो नारायण बनकर समुद्र में शयन किया । —वायुपु० अ० ७-६८,६९ ।

वशीभूत भये नृत्यगानादि करते भए, विह्वल होते भए, नानाप्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोध के वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मान के वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, माया के वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभ के वशीभूत भए परिग्रहका संग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसै वशीभूत भए, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया, अर रुण्डमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया, *बहुरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गौचरावणादि नीच कुल वालो की क्रिया इत्यादि जे निंद्य क्रिया तिनकौ तौ करते भए, यातै अधिक माया के वशीभूत भए कहा क्रिया हो है सो जानी न परी। जैसै कोऊ मेघपटलसहित अमावस्या की रात्रिकौ अंधकार रहित मानै तैसै बाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिकौ मायारहित मानना है।

बहुरि वह कहै कि इनिकौ काम क्रोधादि व्याप्त नाही होता, यहु भी परमेश्वर की लीला है। याकौ कहिए है—ऐसै कार्य करै है ते इच्छाकरि करै है कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छाकरि करै है तो स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है, युद्ध करने की इच्छाही का नाम क्रोध है इत्यादि ऐसै ही जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तौ आप जाकौ न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भए ही होय, सो परवशपना कैसै सम्भवै? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर

* नानारूपाय मुण्डाय वरुथपृथुदण्डिने।
नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने॥ मत्स्य पु० अ० २५०, श्लोक २

अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तौ अन्य जीवनिकौ इनि कार्यनितै छुड़ाय मुक्त करनेका उपदेश काहेकौ दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील सयमादिकका उपदेश सर्व झूँठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरकौ तौ किछू प्रयोजन नाही। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवतार धरै ॐ है। तौ यांकौ पूछिए है—प्रयोजन बिना चीटी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेकौ करै। बहुरि प्रयोजन भी कहो, लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसै कोई पुरुष आप कुचेष्टाकरि अपने पुत्रनिकौ सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टारूप प्रवर्तै तब उनकौ मारै, तौ ऐसै पिताकौ भला कैसै कहिए। तैसै ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकौ प्रवृत्ति करावै। बहुरि वह लोक तैसै प्रवर्तै तब उनकौ नरकादिकविषै डारै। नरकादिक इनिही भावनिका फल शास्त्रविषै लिख्या है सो ऐसे प्रभुकौ भला कैसै मानिए? बहुरि तै यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिकौ दुःखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भए। जो इच्छाकरि भए तौ जैसै कोऊ अपने सेवककौ आप ही काहू कौ कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वालोकौ आप मारै सो ऐसे स्वामीकौ भला कैसै कहिए। तैसै ही जो अपने भक्तकौ आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछै तिनि दुष्टनिकौ आप

ॐ परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥—गीता ४—८

अवतार धारि मारै तौ ऐसे ईश्वरकौ भला कैसै मानिए? बहुरि जो तू कहैगा कि विना इच्छा दुष्ट भए तौ कै तौ परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिकौ दुःख देवैंगे, कै पहिलै ऐसे शक्ति न होगी जो इनिकौ ऐसे न होने दे। बहुरि वाकौ पूछिए है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धारचा, सो कहा, विना अवतार धारें शक्ति थी कि नाही। जो थी तौ अवतार काहेकौ धारै, अर न थी तौ पीछे सामर्थ्य होने का कारण कहा भया। तब वह कहै है ऐसैं किए विना परमेश्वर की महिमा प्रगट कैसैं होय। याकौ पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग द्वेष है। सो रागद्वेष तौ लक्षण ससारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तौ अन्य जीवनिकौ रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेकौ दीजिए। बहुरि रागद्वेपके अनुसारि कार्य करना विचारचा सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे विना होय नाही, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसें जिस कार्यकौ छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यकौ राजा आप आय करै तौ किछू राजा की महिमा होती नाही, निन्दा ही होय। तैसैं जिस कार्यकौ राजा वा व्यतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यकौ परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तौ किछू परमेश्वर की महिमा होती नाही, निदा ही है। बहुरि महिमा तौ कोई और होय ताकौ दिखाइए है। तू तौ अद्वैत ब्रह्म मानै है, कौनकौ महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावने का फल तौ स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि

तू तौ कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तें है अर आपकै स्तुति करावनेकी इच्छा है तौ सबको अपनी अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो, काहेकौ अन्य कार्य करना परै। तातैं महिमाके अर्थि भी कार्य करना न बनै।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इन कार्यनिकौ करता सता भी अकर्त्ता है, याका निर्द्धार होता नाही। याकौ कहिए है—तू कहैगा यह मेरी माता भी है अर बाझ भी है तो तेरा कहा कैसै मानैंगे। जो कार्य करै ताको अकर्त्ता कैसै मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाही सो निर्द्धार बिना मानि लैना ठहरया तौ आकाशके फूल, गधेके सीग भी मानौ, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाही। ऐसैं ब्रह्मा, विष्णु, महेशका होना कहै है, सो मिथ्या जानना।

बहुरि वै कहै है—ब्रह्मा तौ सृष्टिकौ उपजावै है, विष्णु रक्षा करै है, महेश सहार करै है, सो ऐसा कहना भी न सम्भवै है। जातैं इनि कार्यनिको करतै कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहैगा, ए तौ एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेकौ होय। तौ आप ही उपजावै, आप ही क्षपावै ऐसे कार्यमें कौन फल है। जो सृष्टि आपकौ अनिष्ट है तौ काहेकौ उपजाई। अर इष्ट है तौ काहेकौ क्षपाई। अर जो पहिलै इष्ट लागी तब उपजाई, पीछै अनिष्ट लागी तब क्षपाई ऐसैं है तौ परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहैगा तो परमेश्वरका एक स्वभाव न ठहरया। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है ? सो बताय, बिना कारण स्वभाव

की पलटनि काहेकौ होय। अर द्वितीय पक्ष ग्रहैगा तौ सृष्टि तौ परमेश्वर के आधीन थी, वाको ऐसी काहेकौ होने दीनी जो आपकौ अनिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछै है—ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसै उपजावै है। एक तौ प्रकार यहु है—जैसै मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकठ्ठी करि आकारादि वनावै है तैसै ही ब्रह्मा सामग्री एकठ्ठी करि सृष्टि रचना करै है तौ ए सामग्री जहाँतै ल्याय एकठ्ठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्मा ही एती रचना बनाई, सो पहिले पीछे बनाई होगी कै अपने शरीरकै हस्तादि बहुत किए होगे सो कसै है सो बताय। जो बतावेगा तिसही मै विचार किए विरुद्ध भासैगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसै राजा आज्ञा करै ताके अनुसार कार्य होय, तैस ब्रह्माकी आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनकौ दई। अर जिनिकौ आज्ञा दई वै कहाँतै सामग्री ल्याय कैसै रचना करै है, सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसै ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसै ब्रह्मा इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है, तौ ब्रह्मा तौ इच्छाहीका कर्त्ता भया। लोक तौ स्वयमेव ही निपज्या। बहुरि इच्छा तौ परमब्रह्म कीन्ही थी, ब्रह्माका कर्त्तव्य कहा भया, जातै ब्रह्माकौ सृष्टिका निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहैगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है, केवल ब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाही। तहाँ शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछै है - जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तौ बनावनहारा तौ सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषै तौ इष्ट पदार्थ थोरे देखिए है, अनिष्ट घने देखिए है। जीवनिविषै देवादिक बनाए सो तौ रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि बनाए अर लट कीड़ी कूकर सूअर सिंहादिक बनाये सो किस अर्थि बनाए। ए तौ रमणीक नाही। भक्ति करते नाही। सर्व प्रकार अनिष्ट ही है। बहुरि दरिद्री दु खी नारकिनिकौ देखे आपकौ जुगुप्सा ग्लानि आदि दु ख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेकौ बनाए। तहाँ वह कहै है—जो जीव अपने पापकरि लट कीडी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै है। याकौ पूछिए है कि पीछै तो पापहीका फलतै ए पर्याय भए कहो परन्तु पहलै लोकरचना करतै ही इनिकौ बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछै जीव पापरूप परिणए सो कैसै परिणए। जो आप ही परिणए कहोगे तौ जानिए है ब्रह्मा पहलै तौ निपजाए पीछै याके आधीन न रहे। इस कारणतै ब्रह्माको दु.ख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमै है तौ तिनिकौ पापरूप काहेकौ परिणमाए। जीव तौ आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातै ऐसै भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषै सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए, सो तौ रमणेके अर्थि बनाए, कुवर्ण दुर्गन्धादिसहित वस्तु दु:खदायक बनाए सो किस अर्थि बनाए। इनिका दर्शनादिकरि ब्रह्माकै किछू सुख तौ नाही उपजता होगा। बहुरि तू कहैगा, पापी जीवनिकौ दु:ख देनेकै अर्थि बनाए। तौ आपहीके निपजाए जीव तिनिस्यौ ऐसी दुष्टता काहेकौ करी जो तिनिकौ दु:खदायक सामग्री

पहले ही बनाई। बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी है जे रमणीक भी नाही अर दु.खदायक भी नाही, तिनिकौ किस अर्थि बनाए। स्वयमेव तौ जैसै तैसै ही होय अर बनावनहारा तौ जो बनावै सो प्रयोजन लिए ही बनावै। तातै ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसै कहिए है ?

बहुरि विष्णुकौ लोकका रक्षक कहै है। रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै। एक तौ दु.ख उपजावने के कारण न होने दे अर एक विनशनेके कारण न होने दे। सौ तौ लोकविषै दु खहीके उपजनेके कारण जहाँ तहाँ देखिए है अर तिनिकरि जीवनिकौ दु ख ही देखिए है। क्षुधा तृषादिक लगि रहे है। शीत उष्णादिक करि दु ख हो है। जीव परस्पर दु ख उपजावै है, शस्त्रादि दु.खके कारण बनि रहे है। बहुरि विनशनेके कारण अनेक बनि रहे है। जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए है अर अजीवनिकै भी विनशनेके कारण देखिए है। सो ऐसै दोय प्रकारहीकी रक्षा तौ कीन्ही नाही तौ विष्णु रक्षक होय कहा किया। वह कहै है—विष्णु रक्षक ही है। देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए है। कीडीकौ कण कुञ्जरकौ मण पहुचावै है। सकटमे सहाय करै है। मरणके कारण बने टीटोड़ी‡कीसी नाई उबारै है। इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है। याकौ कहिए है,--ऐसै है तौ जहाँ जीवनिकै

‡ एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था। उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था सो उसने दु'खी होकर गरुड पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की, तौ उन्होने समुद्रसे अडे दिलवा दिये। ऐसी पुराणोमें कथा है।

क्षुधातृषादिक बहुत पीडैं, अर अन्न जलादिक मिलै नाही, सकट पडै सहाय न होय, किंचित् कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ विष्णुकी शक्ति हीन भई कि वाकौ ज्ञान ही न भया। लोक-विषै बहुत तौ ऐसैं ही दुःखी हो है, मरण पावै है, विष्णु रक्षा काहे कौ न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्तव्यका फल है। तब वाकौ कहिए है कि जैसैं शक्तिहीन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताकौ तौ कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय, मरण होय तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसैं ही तू कहै है कि भला भया तहाँ तौ विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका कर्तव्यका फल भया। ऐसैं झूठी कल्पना काहेको कीजिए। कै तौ बुरा वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहौ। जो विष्णुका किया भया, तौ घने जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए है सो ऐसा कार्य करै ताको रक्षक कैसैं कहिए? बहुरि अपने कर्त्तव्य का फल है तौ करैगा सो पावैगा, विष्णु कहा रक्षा करैगा? तब वह कहै है, जे विष्णुके भक्त है तिनिकी रक्षा करै है। याको कहिए है कि जो ऐसा है तौ कीडी कुञ्जर आदि भक्त नाही उनकै अन्नादिक पहुँचावनै विषै वा सकट मै सहाय होनैविषै वा मरण न होनैविषै विष्णुका कर्त्तव्य मानि सर्वका रक्षक काहेको मानै, भक्तनिहीका रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाही जातै अभक्त भी भक्त पुरुषनिकौ पीडा उपजावते देखिए है। तब वह कहै है—घनी ही जायगा (जगह) प्रहलादादिककी सहाय करी है। याकौ कहै है—जहाँ सहाय करी तहाँ तौ तू तैसे ही मानि परन्तु हम

तौ प्रत्यक्ष मलेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीडित होते देखि व मन्दिरादिकको विघ्न करते देखि पूछै है कि इहा सहाय न करै है सो शक्ति ही नाही, कि खबर नाही। जो शक्ति नाही तौ इनितै भी हीनशक्तिका धारक भया। खबर नाही तौ जाको एती भी खबर नाही, सो अज्ञान भया। अर जो तू कहैगा, शक्ति भी है अर जानै भी है, इच्छा ऐसी ही भई, तौ फिर भक्तवत्सल काहेको कहै। ऐसै विष्णुको लोकका रक्षक मानना बनता नाही।

बहुरि वै कहै है—महेश सहार करै है, सो वाकौ पूछिए है। प्रथम तौ महेश सहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तौ जैसै विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसै याकी सहार करनेकरि निदा करो। जातै रक्षा अर सहार प्रतिपक्षी है। बहुरि यहु सहार कैसै करै है। जैसे पुरुष हस्तादिककरि काहूकौ मारै वा काहूकरि मरावै तसै महेश अपन अगनिकरि सहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है, तो क्षण क्षण मे सहार तौ घने जीवनिका सर्व लोक मै हो है, यहु कैसै कैसै अगनिकरि वा कौन कौनको आज्ञा देय युगपत् कैसै सहार करै है। बहुरि महेश तौ इच्छा ही करै, याकी इच्छा तं स्वयमेव उनका सहार हो है तौ याकै सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणाम ही रह्या करते होगे. अर अनेक जीवनिके युगपत् मारनेकी इच्छा कैसे होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होतं सहार करै है तौ परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी विना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तो परमब्रह्मकै ऐसा क्रोध कैसै भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातै कोई कारण विना नाश करने की

इच्छा होय नाही। अर नाश करने की जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है, सो कारन बताय। बहुरि तू कहैगा परमब्रह्म यह ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूरि किया, कारन किछू भी नाही, तौ ख्याल बनादे वालेकौ भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूरि करै है। जो याकौ यहु लोक इष्ट अनिष्ट लागै है, तौ याकं लोकस्यौ रागद्वेष भया। साक्षीभूत परमब्रह्मका स्वरूप काहेको कहो हौ। साक्षीभूत तौ वाका नाम है जो स्वयमेव जैसं होय तैस देख्या जान्या करै। जो इष्ट अनिष्ट मानि उपजावै, नष्ट करै ताको साक्षीभूत कैसे कहिए, जातै साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी है। एकके दोऊ सम्भवे नाही। परमब्रह्मकै पहिलै तौ इच्छा यहु भई थी कि "मै एक हूँ सो बहुत होस्यू" तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मै बहुत हूँ सो एक होस्यू" सो जैसै कोऊ भोलपतै (भोलेपनसे) कार्य करि पीछे तिस कार्यकौ दूरि किया चाहै तैसै परमब्रह्म बहुत होय एक होनेकी इच्छा करी सो जानिए है कि बहुत होने का कार्य किया होय सो भोलपहीतै किया। आगामी ज्ञानकरि किया होता तौ काहेकौ ताकै दूरि करने की इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा बिना ही महेश सहार करै है तौ यहु परमब्रह्मका वा ब्रह्माका विरोधी भया। बहुरि पूछै है, यहु महेश लोककौ कैसै सहार करै है। अपने अगनिकरि सहार करै है कि इच्छा होतै स्वयमेव ही सहार होय है? जो अपने अगनिकरि संहार करै है तौ सर्वका युगपत् सहार कैसै करै है? बहुरि याकी इच्छाहोतैं स्वयमेव संहार हो है तौ इच्छातौ परमब्रह्म कीन्ही थी,यानैं संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछै है कि सहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहा गए ? तब वह कहै है—जीवनिविषै भक्त तौ ब्रह्मविषै मिले अन्य मायाविषै मिले। अब याको पूछिए है कि माया ब्रह्मतै जुदी रहै है कि पीछै एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तौ ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर माया ब्रह्ममे एक होय जाय है तौ जे जीव मायामै मिले थे ते भी मायाकी साथि ब्रह्मै मिल गए। तौ महाप्रलय होतै सर्वका परमब्रह्ममै मिलना ठहर्‌या ही तौ मोक्षका उपाय काहेकौ करिए। बहुरि जे जीव मायामै मिले, ते बहुरि लोकरचना भए वै ही जीव लोकविषै आवेगे कि वे तौ ब्रह्ममै मिल गए थे, अब नए उपजैगे। जो वे ही आवैगे तौ जानिए है जुदे जुदे रहै है मिले काहेकौ कहो। अर नए उपजैगे तौ जीव का अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेकौ मुक्त होनेका उपाय कीजिए। बहुरि वह कहै है कि पृथवी आदिक है ते मायाविषै मिलै है सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तौ अमूर्त्तीकमै मूर्त्तीक अचेतन कैसै मिलै ? अर मूर्त्तीक अचेतन है तौ यहु ब्रह्ममै मिलै है कि नाही। जो मिलै है तौ याके मिलनेतै ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तौ अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा, ए सर्व अमूर्त्तीक चेतन होइ जाय है तौ आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु ससारी एकता मानै ही है, याकौ अज्ञानी काहेकौ कहिए। बहुरि पूछैं है—लोकका प्रलय होतै महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तौ युगपत् हो है कि आगे पीछै हो है। जो युगपत् हो है तौ आप नष्ट

होता लोककौ नष्ट कैसैं करै। अर आगे पीछै हो है तौ महेश लोककौ नष्टकरि आप कहाँ रह्या, आप भी तो सृष्टिविषैंही था, ऐसैं महेशकौ सृष्टिका सहारकर्त्ता मानै है सो असम्भव है। याप्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकार करि ब्रह्मा विष्णु महेशकौ सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, सहार करनहारा मानना मिथ्या जान लोककौ अनादि निधन मानना।

इस लोकविषें जे जीवादि पदार्थ है ते न्यारे न्यारे अनादि निधन है। बहुरि तिनकी अवस्थाकी पलटन हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिए है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक है ते अनादितें ऐसैं ही है अर सदा काल ऐसैं ही रहैगे। कदाचित् तू कहैगा विना बनाए ऐसे आकारादिक कैसैं भए, सो भए हौय तौ बनाए ही हौय। सो ऐसा नाही है जातैं अनादितैं ही जे पाइए तहाँ तर्क कहा। जैसैं तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधनमाने है तैसे ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए हैं। तू कहैगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसैं भए? हम कहैगे परमब्रह्म कैसैं भया। तू कहैगा इनकी रचना ऐसी कौन करी? हम कहैगे परमब्रह्मको ऐसा कौन बनाया। तू कहेगा परमब्रह्मस्वयसिद्ध है। हम कहै है जीवादि वा स्वर्गादि स्वयसिद्ध है। तू कहैगा इनकी अर परमब्रह्मकी समानता कैसैं सम्भवै? तौ सम्भवने विषैं दूषण बताय। लोककौ नवा उपजावना, ताका नाश करना, तिसविषैं तौ हम अनेक दोष दिखाये। लोककौ अनादिनिधन माननेतैं कहा दोष है? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदा ही कोई है नाहीं। ए ससारविषैं जीव है ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतैं सर्वज्ञ

वीतराग हो है।

इहाँ प्रश्न—जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछै तो निराकार हो है तहाँ न्यारे न्यारे कैसै सम्भवै ?

ताका समाधान—जो मुक्त भए पीछै सर्वज्ञकौ दीसै है कि नाही दीसै है। जो दीसै है तौ किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखे कहा देख्या अर न दीसै है तौ कै तौ वस्तु ही नाही, कै सर्वज्ञ नाही। तातै इन्द्रियगम्य आकार नाही तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातै आकारवान् है। जब आकारवान् ठहर्‍या तब जुदा जुदा होय तौ कहा दोष लागै ? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तौ हम भी मानै है। जैसै गेहूँ भिन्न भिन्न है तिनकी जाति एक है ऐसै एक मानै तो किछू दोष है नाही। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषै सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन मानने। बहुरि जो वृथा ही भ्रमकरि साँच झूठ का निर्णय न करै तौ तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावैगा।

## ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतै पुत्रपौत्रादिककरि कुलप्रवृत्ति कहै है। बहुरि कुलनिविषै राक्षस मनुष्य देव तिर्यचनिकै परस्पर प्रसूतिभेद बतावै है तहाँ देवतै मनुष्य वा मनुष्यतै देव वा तिर्यचतै मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातै कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावै सो कैसै सम्भवै ? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूँघने आदिकरि प्रसूति

होनी बतावै है, सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसै होतैं पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसै रह्या? बहुरि बडे बडे महन्तनिकौ अन्य अन्य मातापितातैं भए कहै है। सो महतपुरुष कुशीली मातापिताकै कैसै उपजे? यहु तौ लोकविषै गालि है। ऐसा कहि उनकी महतता काहेकौ कहिए है।

## अवतारवाद विचार

बहुरि गणेशादिककी मैल आदिकरि उत्पत्ति बतावै है। वा काहूके अग काहूकै जुरै बतावै है। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्ध कहै है। बहुरि चौईस अवतार* भए कहै है, तहाँ केई अवतारनिकौ पूर्णावतार कहै है। केईनिकौ अशावतार कहै है। सो पूर्णावतार भए, तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापि रह्या कि न रह्या। जो रह्या तौ इनि अवतारनिकौ पूर्णावतार काहेकौ कहौ। जो व्याप न रह्या तौ एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अशावतार भए तहाँ ब्रह्मका अश तौ सर्वत्र कहौ हो, इनविषै कहा अधिकता भई। बहुरि कार्य तौ तुच्छ तिसके वास्ते आप ब्रह्म अवतार धारया कहै सो जानिये है, विना अवतार धारे ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्य के करनेकी न थी। जातै जो कार्य स्तोक उद्यमतै होइ तहाँ बहुत उद्यम काहेकौ करिए। बहुरि अवतारनिविषै मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यच पर्यायरूप भए, सो कैसै

---

* सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षिनारद ३ नरनारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १० कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

सम्भवै? बहुरि प्रह्लादके अर्थि नरसिंह अवतार भए सो हरिणाकुशको ऐसा काहेको होने दिया। अर कितनैक काल अपने भक्तौको काहेको दु:ख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेकौ धरचा। बहुरि नाभिराजाकै वृषभावतार भया बतावै है सो नाभिकौ पुत्रपनेका सुखउपजावनेकौ अवतार धारचा। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनको तौ किछु साध्य था ही नही। अर कहैगा जगत्के दिखावनैकौ किया तौ कोई अवतार तौ तपश्चरण दिखावै,कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत किसकौ भला जानि लागै।

बहुरि वह कहै है—एक अरहत नाम का राजा भया १ सो वृषभावतारका मत अगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई एक अरहत भया नाही। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय ताहीका नाम अर्हत् है। बहुरि रामकृष्ण इनि दोउ अवतारनिकौ मुख्य कहै है सो रामावतार कहाकिया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसौ लरि वाकू मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिलै गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानिके अर्थि नाना विपरीति चेष्टाकरी २ पीछैजरासिंघु आदिकौ मारि राज किया। सो ऐसे कार्य करने मै कहा सिद्धि भई। बहुरि रामकृष्णादिकका एक स्वरूप कहै। सो बीचमैं इतने काल कहा रहे? जो ब्रह्मविषै रहे, तौ जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तौ जानिए है, ए ब्रह्मतै जुदे रहे है। एक रहे तौ राम ही कृष्ण भया सीता ही रुक्मणी

१—भागवत स्कध ५ अ० ६,७,११

२—विष्णु पु० अ० १३ श्लोक ४५ से ६० तक

ब्रह्मपुराण अ० २८६ और भागवत स्कध अ० १०-३०,४८

भई इत्यादि कैसै कहिए है। बहुरि रामावतारविषै तौ सीताकौ मुख्य करै अर कृष्णावतारविषै सीताकौ रुक्मणी भई कहै अर ताकौ प्रधान न कहै,राधिका कुमारी ताकौ मुख्य करै। वहुरि पूछै तब कहै राधिका भक्त थी, सो निजस्त्रीकौ छोरि दासीका मुख्य करना कैसै बनै? बहुरि कृष्णकै तौ राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी। ऐसे कार्यतौ महानिंद्य है। बहुरि रुक्मणीको छोरि राधाकौ मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनकौ भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधाहीविषै आसक्त न भया अन्य गोपिका कुब्जा*आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसे ही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहै—लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिककौ लक्ष्मी कहै सो ए तौ पृथ्वी आदि विषै जैसै पाषाण धूलि है तैसै ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिककौ मायाका स्वरूप कहै सो इनिविषै आसक्त भए तब मायाविषै आसक्त कैसै न भया। कहा ताईं कहिए जो निरूपण करै सो विरुद्ध करै। परन्तु जीवनिकौ भोगादिककी वार्ता सुहावै, तातै तिनिका कहना वल्लभ लागै है। ऐसे अवतार कहे है, इनिकौ ब्रह्मस्वरूप कहै है। बहुरि औरनिकों भी ब्रह्मस्वरूप कहै है। एक तो महादेवको ब्रह्मस्वरूप मानै है ताको योगी कहै है, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारै है, सो किस अर्थीधारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरैं है सो हाड़ाका छीवना भी निंद्य है ताकौ गलेमै किस अर्थि धारै है। सर्पादि सहित हैं सो यामैं

* भागवतस्कंध १० अ० ४८,-१-११

कौन बडाई है। आक धतूरा खाय है सो यामै कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखै है सो कौनका भय है। बहुरि पार्वती सग लिए भी है सो योगी होय स्त्री राखै सो ऐसा विपरीतपना काहेकौ किया। कामासक्त था तौ घर ही मे रह्या होता। बहुरि वानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्ही ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाही। बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताकौ ब्रह्मस्वरूप कहै।

बहुरि कृष्णकौ याका सेवक कहै, कबहूँ याकौ कृष्णका सेवक कहै, कबहू दोऊनिकौ एक ही कहै किछू ठिकाना नाही। बहुरि सूर्य्यादिककौ ब्रह्मका स्वरूप कहै। बहुरि ऐसा कहै जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषै सुवर्ण, वृक्षनिविषै कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूठ इत्यादिमे मै ही हूँ सो किछू पूर्वापर विचारै नाही। कोई एक अगकरि ससारी जाकौ महत मानै ताहीकौ ब्रह्मका स्वरूप कहै। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है ऐसा विशेष काहेकौ किया। अर सूर्यादिविषै वा सुवर्णादिविषै ही ब्रह्म है तौ सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिक भी उजाला करै है, सुवर्णवत् रूपालोहा आदि भी धन है इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषै भी हैं तिनिकौ भी ब्रह्म मानौ। बडा छोटा मानौ परन्तु जाति तौ एक भई। सो झूठी महतता ठहरावनेके अर्थि अनेकप्रकार युक्ति बनावै है।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवीनिको मायाका स्वरूप कहि हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै है सो माया तौ निंद्य है ताका पूजना कैसै सम्भवै? अर हिंसादिक करना कैसै भला होय। बहुरि गऊ सर्प्प आदि पशु अभक्ष्यभक्षणादिसहित तिनिकौ पूज्य

कहैं। अग्नि पवन जलादिककौ देव ठहराय पूज्य कहै। वृक्षादिककौ युक्ति बनाय पूज्य कहै। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिगी नाम सहित जे होंय तिनिविषै ब्रह्मकी कल्पना करै अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होय तिनिविषै मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावै है। इनिके पूजे कहा होयगा सो किछू विचार नाही। झूठे लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतकौ भ्रमावै है। बहुरि वै कहै है—विधाता शरीरकों घडै है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवै है, मूए पीछै मार्गविषै बहुतकाल लागै है, बहुरि तहाँ पुण्य पाप का लेखाकरै है, बहुरि तहाँ दडादिक दे है। सो ए कल्पित झूँठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनन्ते उपजै मरै तिनका युगपत् ऐसे होना कैसे सम्भवै ? अर ऐसै माननेका कोई कारण भी भासै नाही।

बहुरि मूए पीछै श्राद्धादिककरि याका भला होना कहै सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दु.खी होता दीसै नाही, मूए पीछै कैसै होइ। ए युक्ति मनुष्यनिको भ्रमाय अपने लोभ साधनेके अर्थि बनाई है। कीडी पतंग सिहादिक जीव भी तौ उपजै मरै है उनकौ तौ प्रलय के जीव ठहरावै। सो जैसै मनुष्यादिककै जन्म मरण होते देखिए है, तैसै उनके होते देखिए है। झूंठी कल्पना किए कहा सिद्धि है ? बहुरि वे शास्त्रनिविषै कथादिक निरूपै है तहाँ विचार किए विरुद्ध भासै।

## यज्ञमें पशुवधसे धर्म कल्पना

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावै है। सो तहाँ बडे जीवनिका होम करै है, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै है, तहाँ जीवघात हो

है सो उनहीके शास्त्रविषै वा लोकविषै हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय है किछू गिनै नाही। अर कहैं -- "यज्ञार्थं पशव सृष्टा" ए यज्ञ ही कै अर्थि पशु बनाए है। तहाँ घातकरनेका दोष नाहीं। बहुरि मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभके अर्थि राजादिकनिकौ भ्रमावै। सो कोई विषतै जीवना कहै, सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है तैसे हिंसा किए धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनिकी हिंसा करनी कही, तिनिकी तौ किछू शक्ति नाही उनकी काहूकौ पीर नाही। जो किसी शक्तिवान् वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तौ ठीक पडता। बहुरि पापका भय नाही, तातै पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषै तत्पर भए है।

बहुरि मोक्षमार्ग ज्ञानयोग भक्तियोग करि दोय प्रकार प्ररूपै है। अब ( अन्य मत के ) ज्ञानयोग करि मोक्षमार्ग कहै ताका स्वरूप कहिये है --

## ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परब्रह्मकौ जानना ताकौ ज्ञान कहै है सो ताका मिथ्यापना तौ पूर्वं कह्या ही है। बहुरि आपकौ सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिककौ भ्रम जानना ताकौ ज्ञान कहै है सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध है तौ मोक्षका उपाय काहेकौ करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहरचा, तब कर्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै काम क्रोधादिक होते देखिए अर शरीरादिकका सयोग देखिए है सो इनिका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनिका

सद्भाव मानना भ्रम कैसै भया ? बहुरि कहै है, मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसै जेवरी तौ जेवरी ही है ताकौ सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेंटे जेवरी ही है। तैसै आप तौ ब्रह्म ही है, आपकौ अशुद्ध जानैं था सो भ्रम था भ्रम मेटें आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताकौ अशुद्ध जानै तौ भ्रम, अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकौ अशुद्ध जानै तौ भ्रम कैसे होइ ? शुद्ध जानै भ्रम होइ झूंठा भ्रम-करि आपकौ शुद्ध ब्रह्म माने कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहैगा, ए काम क्रोधादिक तौ मनके धर्म है, ब्रह्म न्यारा तौ तुझकूं पूछिए है—मन तेरा स्वरूप है कि नाही। जो है तौ काम क्रोधादिकभी तेरे ही भए। अर नाही है तौ तू ज्ञानस्वरूप है कि जड है। जो ज्ञानस्वरूप है तौ तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रियद्वारा ही होता दीसै है। इनि विना कोई ज्ञान बतावै तौ ताकौ जुदा तेरा स्वरूप मानै, सो भासता नाही। 'मन ज्ञाने' धातुतै मन शब्दनिपजै है सो मन तौ ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताकौ बताय। सो जुदा कोऊ भासै नाही। बहुरि जो तू जड़ है तौ ज्ञान विना अपने स्वरूपका विचार कैसै करै है, यहु बनै नाही। बहुरि तू कहै है, ब्रह्म न्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्म तू ही है कि और है। जो तू ही है तौ तेरे 'मै ब्रह्म हू' ऐसा माननेवाला जो ज्ञान है सो तौ मनस्वरूप ही है,मनतै जुदा नाही। आपा मानना आपहीविषै होय। जाकौ न्यारा जानै तिसविषै आपा मान्यो जाय नाही। सो मनतै न्यारा ब्रह्म है तौ मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषै आपा काहेकौ मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तौ तू ब्रह्मविषै आपा काहेकौ मानै

तातैं भ्रम छोडि ऐसा मानि, जैसैं स्पर्शनादि इन्द्रिय तौ शरीरका स्वरूप है सो जड है,याकै द्वारिजो जानपनौ हो है सो आत्माका स्वरूप है, तैसैं ही ब्रह्म भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुञ्ज है सो शरीर हीका अंग है, ताके द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो है सो सर्व आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना जो जानपना तौ निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव है तिसकरि आत्मा अशुद्ध है। जब कालपाय क्रोधादिक मिटैंगे अर जानपनाकै मन इन्द्रियका आधीनपना मिटेगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसे ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लैनै जातै मन अर बुद्धयादिक एकार्थ है। अहंकारादिक है ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव है। इनिकौ आपतैं भिन्न जानना भ्रम है। इनकौ अपने जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितैं इनिका अभाव न होय सकै, अर अपनी महतता चाहै ते जीव इनिकौ अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्त्तै है। क्रोधादिक भावनिकौ बधाय विषय-सामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषै तत्पर हो है। बहुरि अहंकारा-दिक का त्यागकौ भी अन्यथा मानै है। सर्वकौ परब्रह्म मानना, कही आपो न मानना ताकौ अहंकारका त्याग बतावै सो मिथ्या है जातै कोई आप है कि नाही। जो है तौ आपविषै आपो कैसैं न मानिए, जो आप नही है तो सर्वकौ ब्रह्म कौन मानै है? तातैं शरीरादि पर विषै अहंबुद्धि न करनी, तहाँ करता न होना सो अहंकारका त्याग है। आप विषै अहंबुद्धि करनेका दोष नाही। बहुरि सर्वकौ समान जानना, कोई विषै भेद न करना ताकौ राग द्वेषका त्याग बतावै है सो भी

मिथ्या है। जातै सर्व पदार्थ समान है नाही। कोई चेतन है कोई अचेतन है, कोई कैसा है कोई कैसा है तिनिकौ समान कैसे मानिए? तातै परद्रव्यनिकौ इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जानने मैं तौ किछू दोष है नाही। ऐसै ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिकै अन्यथा कल्पना करै है। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवै है, अभक्ष्य भखै है, वर्णादि भेद नाही करै है, हीन क्रिया आचरै है इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्त्तै है। जब कोऊ पूछै तब कहै है, ए तौ शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसै हो है अथवा जैसै ईश्वरकी इच्छा हो है तैसै हो है। हमकौ तौ विकल्प न करना। सो देखो झूठ, आप जॉनि जाँनि प्रवर्त्तै ताकौं तौ शरीरका धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताकौ प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवे ताकौ ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प कर अर हमकौ तौ विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवने, तातै ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तौ हम याका कर्त्तव्य न मानै। जैसै आप ध्यान धरै तिष्ठै, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि आवै तहां आप किछू सुखी न भया, तहा तौ ताका कर्त्तव्य नाही सो सांच अर आप वस्त्रकौं अगीकारकरि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहाँ जो कर्त्तव्य न मानै सो कैसै बने। बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखरगा इत्यादि कार्य तौ परिणाम मिले बिना होते ही नाही। तहा अपना कर्त्तव्य कैसै न मानिए। तातै काम क्रोधादिका अभाव ही भया होय तौ तहाँ किसी क्रियानिविषै प्रवृत्ति सम्भवै ही नाही। अर

जो कामक्रोधादि पाईए है तौ जैसै ए भाव थोरे होय तैसे प्रवृत्ति करनी। स्वच्छन्द होय इनिकौ बधावना युक्त नाही।

## भक्तियोग मीमांसा

तहा भक्ति निर्गुण भेदकरि दोयप्रकार कहै है। तहाँ अद्वैत परब्रह्मकी भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसै करै है— तुम निराकार हो, निरजन हो, मन बचनकै अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्वके प्रतिपालक हो, अधमउधारण हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावै है। सो इनिविषै केई तौ निराकारादि विशेषण है सो अभावरूप है तिनिकौ सर्वथा मानै अभाव ही भासै। जातै आकारादि विना वस्तु कैसै होइ। बहुरि केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवी है सो तिनिका असम्भवपना पूर्वै दिखाया ही है। बहुरि ऐसा कहै—जीवबुद्धिकरि मै तिहारा दास हूँ, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अश हूँ, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मै हूँ' सो ए तीनौ ही भ्रम है। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड है। जो चेतन है तौ यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीकी है। जो ब्रह्मकी है तो मै दास हूँ ऐसा मानना तौ चेतनाहीके हो है सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरचा अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है। तहा दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसै बनै? दास स्वामीका सम्बन्ध तौ भिन्नपदार्थ होय तब ही बनै। बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तौ यहु अपनी चेतनाका धनी जुदा पदार्थ ठहरचा तौ मै अश हौ वा 'जो तू है सो मै हूँ' ऐसा कहना झूठा भया। बहुरि जो भक्ति करणहारा जड़ है

तौ जड़कै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसी बुद्धि कैसै भई। तातै 'मै दास हूँ' ऐसा कहना तो तब ही बनै जब जुदे-जुदे पदार्थ होय। अर 'तेरा मै अश हूँ' ऐसा कहना बनै ही नाही। जातै 'तू' अर 'मै' ऐसा तौ भिन्न होय तब ही बनै, सो अश अंशी भिन्न कैसै होय? अंगी तौ कोई जुदा वस्तु है नाही, अशनिका समुदाय सो ही अगी है। अर 'तू है सो मै हूँ' ऐसा वचन ही विरुद्ध है। एक पदार्थविषै आपो भी मानै अर पर भी मानै सो कैसै सम्भवै? तातै भ्रम छोडि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपै है सो जाका नाम जपै ताका स्वरूप पहचाने विना केवल नामहीका जपना कैसै कार्यकारी होय। जो तू कहैगा, नामहीका अतिशय है तौ जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका धरचा, तहाँ दोऊनिका नाम उच्चारणविषै फलकी समानता होय सो कैसै बनै। तातै स्वरूपका निर्णयकरि पीछै भक्तिकरनेयोग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसै निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहाँ क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताकौ सगुणभक्ति कहै है। तहाँ सगुणभक्तिविषै लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसै नायक नायिकाका करिए तैसै ठाकुरठकुरानीका वर्णन करै है। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी सयोगवियोगरूप सर्व-व्यवहार तहाँ निरूपै है। बहुरि स्नान करती स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना, दधि लूटना, स्त्रीनिके पगा पडना, स्त्रीनिके आगै नाचना इत्यादि जिन कार्यनिकौ ससारी जीव करते लज्जित होय तिनि कार्यनिका करना ठहरावै है। ऐसा कार्य अति काम पीडित भए ही बनै। बहुरि

युद्धादिक किए कहै तो ए क्रोध के कार्य है। अपनी महिमा दिखावनें के अर्थि उपाय किए कहै सो ए मान के कार्य है। अनेक छल किए कहै सो मायाके कार्य है। विषयसामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहै सो ए लोभके कार्य है। कोतूहलादिक किए कहै सो हास्यादिकके कार्य है। ऐसै ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनै। या प्रकार काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिकौ प्रगटकरि कहै, हम स्तुति करै है। सो काम क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तौ निंद्य कौन ठहरंगे। जिनकी लोकविषै, शास्त्रविषै अत्यन्त निन्दा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तौ हस्तचुगलकाही कार्य भया। हम पूछें है कोऊ किसीका नाम तौं कहै नाही अर ऐसे कायनिहीका निरूपण करि कहै कि किसीनै ऐसे कार्य किए है,तब तुम वाकौ भला जानौ कि बुरा जानौ। जो भला जानौ तौ पापी भले भए, बुरा कौन रह्या। बुरे जानौ तौ ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपातरहित न्याय करौ। जो पक्षपातकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निंद्यकार्य करनेमै कहा सिद्धी भई? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेके अर्थि किए तौ परस्त्री सेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमै आपकै वा अन्यकै कहा नफा भया। तातै ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भवै नाही। बहुरि जो ठाकुर कार्य नाही किए तुम ही कहो हौ, तौ जामै दोष न था ताकौ दोष लगाया, तातै ऐसा वर्णन करना तौ निंदा है, स्तुति नाही। बहुरि स्तुति करतै जिन गुणनिका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होय वा तिनिही विषै

अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करना आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादिविषै अनुरागी होय तौ ऐसे भाव तो भले नाही। जो कहोगे,भक्त ऐसा भाव न करै है तौ परिणाम भए बिना वर्णन कैसे किया। तिनिका अनुराग भए बिना भक्ति कैसे करी। सो ए भाव ही भले होय तौ ब्रह्मचर्यकौ वा क्षमादिककौ भले काहेकौ कहिए। इनिकै तौ परस्पर प्रतिपक्षीपना है। बहुरि सगुणभक्तिकरनेके अर्थि रामकृष्णादिककी मूर्ति शृङ्गारादि किएं वक्रवादिसहित स्त्रीआदि सग लिए बनावै है, जाकों देखतै ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवै बहुरि महादेवके लिगहीका आकार बनावै है। देखो विडम्बना, जाका नाम लिए ही लाज आवै, जगत् जिसको ढाँक्या राखै ताका आकारका पूजन करावै है। कहा अन्य अग वाकै न थे। परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नानाप्रकार विषयसामग्री भेली करै। बहुरि नाम तो ठाकुरका करै अर तिनिकौ आप भोगवै। भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकौ भोग लगाया कहै, पीछे आपही प्रसादकी कल्पनाकरि ताका भक्षणादि करै। इहा पूछिये है, प्रथम तौ ठाकुरकै क्षुधा तृषा पीडा होसी। न होइ तौ ऐसी कल्पना कैसै सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीडित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुःखी भया, औरका दुःख दूरि कैसै करै। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तौ उनकै अर्थि अर्पण करी,सो करो,पीछे प्रसाद तौ ठाकुर देवै तब होय,आपहीका तौ किया न होय जैसे कोऊ राजाका भेट करि पीछै राजा बक्सै तौ ताकौ ग्रहण करना योग्य अर आप राजा की भेंट करै अर राजा तौ किछू कहै

नाही, आप ही 'राजा मोकू बकसी' ऐसे कहि वाकौ अगीकार करै तौ यहु ख्याल ( खेल ) भया। तैसे इहाँ भी ऐसै किए भक्ति तौ भई नाही, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हो। दोय हो तौ भेट करी पीछै ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजै, आपही तै ग्रहण काहेकौ करै है। अर तू कहैगा ठाकुरकी तौ मूर्ति है तातै मै ही कल्पना करू हूँ, तौ ठाकुरका करनेका कार्य तै ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो, तौ भेट करनी,प्रसाद कहना झूठा भया। एक भए यहु व्यवहार सम्भवै नाही तातै भोजना-सक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरकै अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीष्म बसत आदि ऋतुनिविषै ससारीनिकै सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहाँ नाम तौ ठाकुरका लेना अर इन्द्रियनिकै विषय अपने पोषनै सो विषयाशक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की वा सोवना जागना हास्यादिककी कल्पना तहाँ करै है सो जैसैं लडकी गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कोतूहल करै,तैसै यहु कोतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाही। बहुरि लडके ठाकुरका स्वाग बनाय, चेष्टा दिखावै। ताकरि अपने विषय पोषै अर कहै यहु भी भक्ति, इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषै पाईए है। ऐसै दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कहै सो ताकौ मिथ्या दिखाया।

## पवनादि साधनद्वारा ज्ञानी होनेकी मान्यता

बहुरि कई जीव पवनादिका साधनकरि आपकौ ज्ञानी मानै है तहा

इडा पिंगल सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहाँ वर्णादिक भेदनि हीकौ पवन पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै है। ताका विज्ञानकरि किछू साधनतै निमित्तका ज्ञान होय तातै जगतकौ इष्ट अनिष्ट बतावै, आप महत कहावै सो यह तौ लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाही। जीवनिकौ इष्ट अनिष्ट बताय उनकै राग द्वेष बधावै अर अपने मान लोभादिक निपजावै, यामै कहा सिद्धि है ? बहुरि प्राणायामादिका साधन करै, पवनकौ चढ़ाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तौ जैसै नट साधनतै हस्तादिक क्रिया करै तैसै यहाँ भी साधनतै पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तौ शरीर ही के अग है। इनिके साधनत आत्महित कैसै सधै ? बहुरि तू कहैगा—तहाँ मनका विकल्प मिटै है,सुख उपजे है,यमके वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसै निद्राविषै चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है तैसे पवन साधनतै यहाँ चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है। तहाँ मनको रोकि राख्या है, किछू वासना तौ मिटी नाही। तातै मनका विकल्प मिट्या न कहिए अर चेतना विना सुख कौन भोगवै है तातै सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तौ इस क्षेत्रविषै भए है तिनि विषै कोई अमर दीसता नाही। अग्नि लगाएं ताका भी मरण होता दीसै है तातै यमके वशीभूत नाही, यहु झूठी कल्पना है। बहुरि जहाँ साधन विषै किछू चेतना रहै अर तहाँ साधनतै शब्द सुनै, ताकौ अनहद नाद बतावै। सो जैसै वीणादिकके शब्द सुननेतै सुख मानना तैसै तिसके सुननेतै सुख मानना है। इहा तौ विषयपोषण भया, परमार्थ तौ किछू नाही ठहर्या। बहुरि पवनका निकसनै पैठनैविषै "सोहं" ऐसे

शब्दकी कल्पनाकरि ताकौ **'अजया जाप'** कहै है। सो जैसै तीतरके शब्दविषै 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाही तैसै यहा **'सोहं'** शब्दकी कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाही। बहुरि शब्दके जपने सुननेतै ही तौ किछू फलप्राप्ति नाही, अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो **'सोहं'** शब्दका तौ अर्थ यह है 'सो हूँ छू', यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन ? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातै तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातै वस्तुका निर्णयकरि ताविषे अहंबुद्धि धारने विषै **'सोहं'** शब्द बनै। तहाँ भी आपकौ आप अनुभवै, तहाँ तौ **'सोहं'** शब्द सम्भवै नाही। परकौ अपने स्वरूप बतावनेविषै **'सोहं'** शब्द सम्भवै है। जैसै पुरुष आपकौ आप जानै, तहाँ 'सो हूँ छू' ऐसा काहेकौ विचारै। कोई अन्य जीव आपकौं न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाकौ कहिए **'जो ऐसा है सो मैं हूँ'** तैसै ही यहाँ जानना। बहुरि केई ललाट भौह अर नासिकाके अग्रभागके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदिका ध्यान भया कहि परमार्थ मानै, सो नेत्रकी पूतरी-फिरै मूर्तीक वस्तु देखी, यामै कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितै किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिविषै गमनादिककी शक्ति होय वा शरीरविषै आरोग्यतादिक होय तौ ए तौ सर्व लौकिक कार्य है। देवादिककै स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। इनितै किछू अपना भला तौ होता नाही, भला तौ विषयकषायकी

वासना मिटे होय। सो ए तौ विषयकषायपोषनेके उपाय है। तातै ए सर्व साधन किछू हितकारी है नाही। इनिविषै कष्ट मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाही। तातै ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाही। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषै लागै है। बहुरि काहूकौ बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावै है। काहूकौ सुगमपनै ही मोक्ष भया कहै। उद्धवादिककौ परम भक्त कहै, तिनकौ तौ तपका उपदेश दिया कहै; वेश्यादिककै विना परिणाम केवल नामादिकहीतै तरना बतावै, किछू थल है नाही। ऐसै मोक्षमार्गकौ अन्यथा प्ररूपै है।

## मोक्षके विभिन्न स्वरूप

बहुरि मोक्षस्वरूपकौ भी अन्यथा प्ररूपै है। तहाँ मोक्ष अनेक प्रकार बतावै है। एक तौ मोक्ष ऐसा कहै है—जो वैकुण्ठधामविषै ठाकुर ठकुराणीसहित नानाभोगविलास करै है तहाँ जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै,सो मोक्ष है। सो यहु तौ विरुद्ध है। प्रथम तौ ठाकुर भी ससारीवत् विषयाशक्त होय रह्या है। तौ जैसा राजादिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षकौ पाय तहाँ टहल किया करै तौ जैसै राजा की चाकरी करनी तैसै यहु भी चाकरी भई, तहाँ पराधीन भए सुख कैसै होय? तातै यहु भी बनै नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै है—ईश्वरके समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तौ बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरैगा। सबही ठहरै तौ भिन्न

इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तौ समानता न भई। न्यून है ताकै नीचापनैकरि उच्चता होनेकी आकुलता रही, तब सुखी कैसै होय ? जैसै छोटा राजाकै बडा राजा संसारविषै हो है तैसै छोटा बडा ईश्वर मुक्तिविषै भी भया सो बनै नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै है—जो वैकुण्ठविषै दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषै ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तौ मूर्त्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहाँ कैसै सम्भवै ? बहुरि ज्योतिमै ज्योति मिले यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है। जो रहै है तौ ज्योति बधती जायसी। तब ज्योतिविषै हीनाधिकपनौ होसी। अर विनशि जाय है तौ आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसै मानिए। तातै ऐसै भी बनै नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै है—जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु मायाका आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यो एक था कि जुदा था। जो एक था तौ ब्रह्म ही मायारूप भया अर जुदा था तौ माया दूरि भए ब्रह्मविषै मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाही। जो रहै है तौ सर्वज्ञकौ तौ याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतै मिल्या कहो; परन्तु परमार्थतै तो मिल्या नाही। बहुरि अस्तित्व नाही रहै है तौ आपका अभाव होना कौन चाहै, तातै यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षकौ ऐसा भी केई कहै है जो बुद्धिआदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अगभूत मन इन्द्रिय तिनिकै आधीन ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए ऐसै कहना तौ बनै

है अर तहाँ चेतनताका भी अभाव भया मानिए तौ पाषाणादि समान जड अवस्थाकौ भली मानिए। बहुरि भला साधन करतै तौ जानपना बधै है, बहुत भला साधन किए जानपनेका अभाव होना कैसै मानिए ? बहुरि लोकविषै ज्ञानकी महततातै जड़पनाकी महतता नाही तातै यहु बनै नाही। ऐसै ही अनेकप्रकार कल्पनाकरि मोक्षकौं बतावै सो किछू यथार्थ तौ जानै नाही, ससार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषै कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बोलै है। याप्रकार वेदातादि मतनिविषै अन्यथा निरूपण करै है।

## मुस्लिम मत विचार

बहुरि ऐसै ही मुसलमानोके मतविषै अन्यथा निरूपण करै है। जैसै वे ब्रह्मकौ सर्वव्यापी, एक, निरजन, सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै है तैसै ए खुदाकौ मानै है। बहुरि जैसै वे अवतार भए मानै है तैसै ए पैगम्बर भए मानै है। जैसै वे पुण्य पापका लेखा लेना, यथायोग्य दण्डादिक देना ठहरावै है तैसै ए खुदाकै ठहरावै है। बहुरि जैसै वे ईश्वरकी भक्तितै मुक्ति कहै है तैसै ए खुदाकी भक्तितै कहै है। बहुरि जैसै वे कही दया पोषै कही हिसा पोषै, तैसै ए भी कही मेहर करनी पोषै कही जिबह करना पोषैं। बहुरि जैसै वे कही तपश्चरण करना पोषै कही विषयसेवन पोषै तैसै ही ए भी पोषै है। बहुरि जैसै वे कही मास मदिरा शिकार आदिका निषेध करै, कही उत्तम पुरुषोकरि तिनिका अगीकार करना बतावै तैसै ए भी तिनिका निषेध वा अगीकार करना बतावै हैं। ऐसै अनेकप्रकारकरि समानता पाइए है। यद्यपि नामादिक और और है तथापि प्रयोजनभूत अर्थकी एकता

पाईए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूलश्रद्धानकी तौ एकता है अर उत्तरश्रद्धानविषै घने ही विशेष है। तहाँ उनतैं भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादि पापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतै विरुद्ध निरूपण करै है। तातै मुसलमानोका मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषैं जिनमतनिकी प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहाँ कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या है तौ बडे राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषै कैसै प्रवर्तै है ?

ताका समाधान—जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितै है सो इनिविषै मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तै है सो इनि विषै विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनि वा विद्यावानोका ऐसे धर्मविषैं विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तौ लोकनिद्यपनाकौ भी उलघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिकौ किया चाहै तिनि कार्यनिकौ करतै धर्म बतावै तौ ऐसे धर्मविषै कौन न लागै। तातै इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा—इनि धर्मनिविषै विरागता दया इत्यादि भी तौ कहै है, सो जैसै झोल दिये बिना खोटा द्रव्य चालै नाही, तैसे सांच मिलाए बिना झूंठ चालै नाही, परन्तु सर्वके हित प्रयोजन विषै विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसै गीताविषै उपदेश देय रारि ( युद्ध ) करावनेका प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषै शुद्ध निरूपणकरि स्वच्छन्द होनेका प्रयोजन दिखाया। ऐसे ही अन्य

जानने। बहुरि यहु काल तौ निकृष्ट है सो इसविषै तौ निकृष्ट धर्महीकी प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषै मुसलमान बहुत प्रधान हो गए, हिन्दू घटि गए। हिन्दूनिविषै और बधि गए, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसै इहाँ अवार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति बहुत पाइए है। अब पंडितपनाके बलतै कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए है तिनिविषै जे तत्त्वादिक मानिए है तिनिका निरूपण कीजिए है:—

## सांख्यमतविचार

तहाँ साख्यमतविषै पच्चीस तत्त्व मानै है[1] सो कहिए है—सत्त्व रज तमः ए तीन गुण कहै है। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चचलता हो है, तमोगुणकरि मूढता हो है इत्यादि लक्षण कहै है। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतै बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महतत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतै सोलहमात्रा हो है। तहाँ पाच तौ ज्ञानइन्द्रिय हो है—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय हो है—बचन, चरन, हस्त, लिग, पायु। बहुरि पाच तन्मात्रा हो है—रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतै अग्नि, रसतै जल, गधतै पृथ्वी, स्पर्शतै पवन, शब्दतै आकाश, ऐसै भया कहै है। ऐसै चौईस तत्त्व तौ प्रकृतिस्वरूप है।

---

१—प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशक.।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचभूतानि ॥—सांख्य का० १२

इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसैं पच्चीस तत्त्व कहै है सो ए कल्पित हैं जातैं राजसादिक गुण आश्रयविना कैसैं होय। इनका आश्रय तौ चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितैं बुद्धि भई कहै सो बुद्धि नाम तौ ज्ञानका है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थ-विषैं ए होते देखिए है। इनितैं ज्ञान भया कैसैं मानिए। कोई कहै— बुद्धि जुदी है, ज्ञान जुदा है तौ मन तौ आगैं षोड़शमात्राविषैं कह्या अर ज्ञान जुदा कहोगे तौ बुद्धि किसका नाम ठहरैगा। बहुरि तिसतैं अहंकार भया कह्या, सो परवस्तु विषैं 'मैं करूँ हूँ' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जानने करि तो अहंकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसैं कहिए है। बहुरि अहंकारकरि षोडश मात्रा कही, तिनिविषैं पाँच ज्ञानइन्द्रिय कही, सो शरीरविषैं नेत्रादि आकाररूप द्रव्येन्द्रिय है सो तौ पृथ्वी आदिवत् देखिए है, अर वर्णादिकके जाननेरूप भावइन्द्रिय है सो ज्ञानरूप है, अहंकार का कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूको देखै है। तहाँ अहंकारकरि निपजना कैसैं सम्भवै ? बहुरि मन कह्या, सो इन्द्रियवत् ही मन है। जातैं द्रव्य-मन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय कहै सो ए तौ शरीर के अंग हैं, मूर्तीक है। अहंकार अमूर्तीक तैं इनिका उपजना कैसैं मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पाँच ही तौ नाहीं। शरीरके सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तौ सर्व जीवाश्रित है, मनुष्या-श्रित ही तौ नाहीं, तातैं सूँडि पूंछ इत्यादि अंग भी कर्मइन्द्रिय हैं। पाँचहीकी संख्या काहेको कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पाँच तन्मात्रा कही, सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ए तौ परमाणूनिस्यों तन्मय

गुण है। ए जुदे कैसै निपजे कहिये। बहुरि अहकार तो अमूर्तीक जीव का परिणाम है। तातै ए मूर्तीकगुण कैसै निपजे मानिए। बहुरि इनि पाँचनितै अग्नि आदि निपजे कहै, सो प्रत्यक्ष झूठ है। रूपादिक अग्न्यादिककै तौ सहभूत गुण गुणी सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न है, वस्तुविषै भेद नाही। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाही, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए है। तातै रूपादिकरि अग्न्यादि निपजे कैसै कहिए। बहुरि कहनेविषै भी गुणीविषै गुण है, गुणतै गुणी निपज्या कैसै मानिए?

बहुरि इनितै भिन्न एक पुरुष कहै है, सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तौ कहा बूझै। नाही है, कहाँ है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है, सो बताय। जो बतावैगा ताहीमै विचार किए अन्यथापनौ भासैगा। ऐसै साँख्यमतकरि कल्पित तत्त्व मिथ्या जानने।

बहुरि पुरुषकौ प्रकृतितै भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहै है। सो प्रथम तौ प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाही। बहुरि केवल जाननेही तै तौ सिद्धि होती नाही। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय, सो ऐसै जाने किछू रागादिक घटै नाही। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेकौ आप रागादि घटावै। तातै यहु मोक्षमार्ग नाही है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहै है। सो पच्चीस तत्त्वनिविषै चौईस तत्त्व तौ प्रकृतिसम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तौ जुदे है ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनिविषै कह्या ही नाही। अर पुरुषहीकौ प्रकृतिसयोग भए जीव-

संज्ञा हो है तौ पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृतिसहित है, पीछैं साधनकरि कोई पुरुष प्रकृति रहित हो है, ऐसा सिद्ध भया—पुरुष एक न ठहर्‌या।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि कोई व्यतरीवत् जुदी ही है जो जीवकौं आनि लागैं है। जो याकी भूलि है, तौ प्रकृतितैं इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसैं मानिए। अर जुदी है तौ वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहर्‌या। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाही, तब काहेकौं उपदेश दीजिए है। ऐसैं यहु मोक्षमार्गपना मानना मिथ्या है। बहुरि तहाँ प्रत्यक्ष,अनुमान,आगम, ए तीन प्रमाण कहै है, सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रन्थनितैं जानना।

बहुरि इस सांख्यमतविषैं कोई ईश्वरकौं न मानैं है। कोई एक पुरुषकौं ईश्वर मानैं है। कोई शिवकौं कोई नारायणकौं देव मानैं है। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करैं है, किछू निश्चय है नाही। बहुरि इस मतविषैं केई जटा धारैं है, केई चोटी राखैं है, केई मुण्डित हो है, केई काथे वस्त्र पहरैं है, इत्यादि अनेकप्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महत कुहावै है। ऐसैं साख्यमतका निरूपण किया।

## नैयायिक मत विचार

बहुरि शिवमतविषैं दोय भेद है—नैयायिक, वेशेषिक। तहाँ नैयायिकमत विषैं सोलह तत्त्व कहै है। प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहाँ प्रमाण च्यारि प्रकार कहै है। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि

इत्यादि प्रमेय कहै है। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम सशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाकौ वादी प्रतिवादी मानै सो दृष्टांत है। दृष्टातकरि जाकौ ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पच अग ते अवयव है। सशय दूरि भए किसी विचारतै ठीक होय सो तर्क है। पीछै प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो नाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषै जो छल जाति आदि दूषरण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितडा है। साचे हेतु नाही, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास है। छललिए बचन सो छल है। सांचे दूषरण नाही ऐसे दूषरणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे, सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व है नाही। ज्ञानके निर्णय करनेकौ वा वादकरि पाडित्य प्रगट करनेकौ कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहे, सो इनितें परमार्थ कार्य कैसै होइ ? काम क्रोधादि भावकौ मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तौ इहाँ प्रयोजन किछू दिखाया ही नाही। पडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है, तातै ये तत्त्वभूत नाही। बहुरि कहोगे इनिकौ जाने विना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकै, तातै ए तत्त्व कहे है। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरणवाले भी कहै है। व्याकरण पढे अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै है कि भोजन किए शरीरकी स्थिरता भए तत्त्व-निर्णय करनेकौ समर्थ होय, सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाही। बहुरि जो कहोगे, व्याकरण भोजनादिक तौ अवश्य तत्त्वज्ञानकौ कारण नाही,

लौकिक कार्य साधनेको भी कारण है, सो जैसैं ये है, तैसैं ही तुम तत्व कहे, सो भी लौकिक कार्य साधने को कारण हो है। जैसैं इन्द्रियादिक के जाननेकौ प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे, वा स्थाणु पुरुषादिविषै संशयादिकका निरूपण किया। तातैं जिनिको जानैं अवश्य काम क्रोधादि दूरि होय, निराकुलता निपजै, वे ही तत्त्व कार्यकारी है। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषै आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तौ सर्व ही वस्तु है। प्रमितिका विषय नाही, ऐसा कोई भी नाही, तातैं प्रमेय तत्त्व काहेकौ कह्या। आत्मा आदि तत्त्व कहने थे। बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया, सो पक्षपातरहित विचार किए भासे है। जैसैं आत्माके भेद दोय कहै है—परमात्मा, जीवात्मा। तहाँ परमात्माकौ सर्वका कर्त्ता बतावै है। तहाँ ऐसा अनुमान करै है जो यह जगत् कर्त्ताकरि निपज्या है, जातैं यह कार्य है। जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसैं घटादिक। सो यह अनुमानाभास है। जातैं यहाँ अनुमानान्तर सम्भवै है। यह जगत् सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाही जातैं याविषै कोई अकार्यरूप पदार्थ भी है। जो अकार्य है, सो कर्त्ताकरि निपज्या नाही, जैसैं सूर्य्यबिम्बादिक। जातैं अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषै कोई पदार्थ कृत्रिम है सो मनुष्यादिककरि किए होय है, कोई अकृत्रिम है सो ताका कर्त्ता नाही। यह प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर है तातैं ईश्वरकौ कर्त्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माकौ प्रतिशरीर भिन्न कहै है सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भए पीछैं भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वे कह्या ही है। ऐसैं ही अन्य तत्त्वनिकौ मिथ्या प्ररूपै है। बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै है, सो जैनग्रन्थनितैं

परीक्षा किए भासै है। ऐसै नैयायिकमतविषै कहे कल्पित तत्त्व जानने।

## वैशेषिक मत विचार

बहुरि वैशेषिकमतविषै छह तत्त्व कहे है। द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय। तहाँ द्रव्य नवप्रकार-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहाँ पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न भिन्न है। ते परमाणु नित्य है। तिनिकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितै विरुद्ध है। ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु अग्निरूप होते देखिए है। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वै परमाणु जाते रहै है, और ही परमाणु तिनिरूप हो है सो प्रत्यक्षकौ असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तौ ऐसै ही मानैं, परन्तु केवल कहेतै ही तौ ऐसै ठहरै नाही। तातै सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कही जुदा शरीर ठहरावै है, सो मिथ्या ही है। जातै वाका कोई प्रमाण नाही। अर पृथ्वी आदि तौ परमाणुपिड है। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाही तातै यहु मिथ्या है। बहुरि जहाँ पदार्थ अटकै नाही, ऐसी जो पोलि ताकौ आकाश कहै है। क्षण पल आदिकौ काल कहै है। सो ए दोन्यो ही अवस्तु है। सत्तारूप ए पदार्थ नाही। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणामनादिकका पूर्वापरविचार करनेके अर्थि इनिकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू है ही नाही। आकाशविषै

खड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहै है, सो पूर्वं निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाही। भावमन तौ ज्ञानरूप है, सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिड है सो शरीरका अग है। ऐसैं ए द्रव्य कल्पित जानने। बहुरि गुण चौईस कहै है—स्पर्श, रस, गध, वर्ण, शब्द, सख्या, विभाग, सयोग, परिमाण, पृथक्त्व,परत्व,अपरत्व बुद्धि,सुख, दु ख, इच्छा, धर्म, अधम, प्रयत्न, सस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषै स्पर्शादिक गुण तौ परमाणूनिविषै पाईए है। परन्तु पृथ्वी को गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान् कहना इत्यादि मिथ्या है,जातै कोई पृथ्वी विषै गधकी मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितै विरुद्ध है। बहुरि शब्दकौ आकाशका गुण कहै सो मिथ्या है। शब्द तौ भीति इत्यादितै रुकै है,तातै मूर्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी है। भीतिविषै आकाश रहे शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसें बनै ? बहुरि सख्यादिक है सो वस्तुविषै तौ किछू है नाही, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनाधिक जाननेकौ अपने ज्ञानविषै संख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि है सो आत्माका परिणमन है। तहाँ बुद्धि नाम ज्ञानका है तौ आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तौ मन तौ द्रव्यनिविषै कह्या ही था, यहाँ गुण काहेकौं कह्या। बहुरि सुखादिक है सो आत्माविषै कदाचित् पाईए है, आत्माके लक्षणभूत तौ ए गुण है नाही,अव्याप्तनेतै लक्षणाभास है। बहुरि स्निग्धादि पुद्गलपरमाणुविषै पाईए है सो स्निग्धगुरुत्व इत्यादि तौ स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातै स्पर्शगुणविषै गर्भित भए, जुदे काहेकौ कहे। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषै कह्या, सो ऐसै तौ

अग्निआदिविषै ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाईए है। कै तौ सर्व कहने थे, कै सामान्यविषैं गर्भित करने थे। ऐसैं ए गुण कहे ते भी कल्पित है। बहुरि कर्म पांचप्रकार कहै है—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तौ शरीरकी चेष्टा है। इनिकौ जुदा कहनेका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तो होती नही, चेष्टा तौ घनी ही प्रकारकी हो है। बहुरि जुदी ही इनकौ तत्त्वसंज्ञा कही; सौ कै तो जुदा पदार्थ होय तौ ताकौ जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटनेकौ विशेष प्रयोजनभूत होय तौ तत्व कहना था; सो दोऊ ही नाही। अर ऐसैं ही कहि देना तौ पाषाणादिककी अनेक अवस्था हो है सो कह्या करो, किछू साध्य नाही। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है—पर अपर। सो पर तौ सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादि है। बहुरि नित्यद्रव्य-विषै प्रवृत्ति जिनिकी होय ते विशेष है। बहुरि अयुतसिद्ध सम्बन्धका नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तौ बहुतनिकौ एकप्रकारकरि वा एकवस्तुविषै भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेकरि अपने विचारहीविषै हो है, कोई जुदे पदार्थ तौ नाही। बहुरि इनिके जाने कामक्रोधादि मेटनेरूप विशेष प्रयोजनकी सिद्धि नाही, तातैं इनिकौ तत्त्व काहैकौ कहे। अर ऐसे ही तत्त्व कहने थे तौ प्रमेयत्वादि वस्तुके अनतधर्म है वा सम्बन्ध आधारादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषै सम्भवै है। कै तौ सर्व कहने थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातैं ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसैं वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जानने। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण मानै है—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका

निर्णय जैन न्यायग्रथनितें❀ जानना।

बहुरि नैयायिक तौ कहै है—विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दु ख, इनका अभावतैं आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै है—चौईस गुणनिविषै बुद्धि आदि नवगुण तिनिका अभाव सो मुक्ति है। सो इहाँ बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तौ ज्ञानका अधिकरणपना आत्माका लक्षण कह्या था, अब ज्ञानका अभाव भए लक्षणका अभाव होतैं लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसे रही, अर जो बुद्धि नाम मनका है, तौ भावमन तो ज्ञानरूप है ही, अर द्रव्यमन शरीररूप है सो मुक्त भए द्रव्यमनका सम्बन्ध छूटै ही है। सो द्रव्य-मन जड ताका नाम बुद्धि कैसै होय ? बहुरि मनवत् ही इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभाव होय सो स्पर्शादि विषयनिका जानना मिटै है. तौ ज्ञान काहेका नाम ठहरैगा। अर तिनि विषयनिका ही अभाव होयगा तौ लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कहा सो सुखहीके अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहाँ अभाव होय सो उपादेय कैसे होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहै, तौ यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तौ तहाँ सम्पूर्ण सम्भवै है तातैं सुखका अभाव नाही। बहुरि शरीर दु.ख द्वेषादिकका यहाँ अभाव कहै सो सत्य ही है।

बहुरि शिवमतविषै कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताकौ देव मानै

---

❀ देवागम, युक्त्यनुशासन, अष्ट सहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसग्रह, तत्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थो से जानना चाहिये।

है। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि यहाँ भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेष हो है सो आचारादि भेदतै च्यारि प्रकार है—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित है तातै सुलिग नाही। ऐसै शिवमतका निरूपण किया।

## मीमांसकमत विचार

अब मीमांसक मतका स्वरूप कहिए है। मीमांसक दोय प्रकार है—ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहाँ ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म हैं, दूसरा कोई नाही ऐसा वेदान्तविषै अद्वैत ब्रह्मको निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषै लय होना सो मुक्ति कहै है। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वै दिखाया है, सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्य-पना प्ररूपै ह, सो इन क्रियानिविषै रागादिकका सद्भाव पाईए है, तातै ए कार्य किछू कार्यकारी नाही। बहुरि तहाँ 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति है। तहाँ भट्ट तौ छह प्रमाण मानै है-प्रत्यक्ष, अनु-मान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पाच ही प्रमाण मानै है। सो इनिका सत्यासत्यपना जैन-शास्त्रनितै जानना। बहुरि तहाँ षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्र अन्नादिके त्यागा, गृहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट है। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञोपवीतरहित विप्र अन्नादिकके ग्राही, भागवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार के है—कुटीचर, बहूदक, हस, परमहस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए है, परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनकै पाईए है। तातै ए भेष कार्यकारी नाही।

## जैमिनीयमत विचार

बहुरि यहाँ ही जैमिनीयमत सम्भवै है, सो ऐसैं कहै है—

सर्वज्ञदेव कोई है नाही। नित्य वेद बचन है, तिनितैं यथार्थनिर्णय हो है। तातैं पहलैं वेदपाठकरि क्रियाप्रति प्रवर्त्तना सो तौ नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म, ताका साधन करना। जैसैं कहै है "**स्वःकामोऽग्निं यजेत्**" स्वर्ग अभिलाषी अग्निकौ पूजै, इत्यादि निरूपण करै है।

यहाँ पूछिए है—शैव, साख्य, नैयायिकादिक सर्व ही वेदकौं मानैं है, तुम भी मानौ हौ। तुम्हारैं वा उन सबनिकै तत्त्वादिनिरूपणविषै परस्पर विरुद्धता पाईए है सो कहा? जो वेदहीविषैं कही किछू कही किछू निरूपण किया है, तौ वाकी प्रमाणता कैसैं रही? अर जो मतवाले ही कही किछू कही किछू निरूपण करै है तौ तुम परस्पर झगरिनिर्णय करि एककौं वेदका अनुसारी अन्यकौ वेदतैं पराङ्मुख ठहरावो। सो हमकौ तौ यह भासै है, वेदहीविषैं पूर्वापर विरुद्धतालिए निरूपण है। तिसतैं ताका अपनी अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहणकरि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए है। सो ऐसे वेदकौ प्रमाण कैसैं कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजै स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतैं उत्तम कैसैं मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसै होय। ऐसैं ही अन्य वेदबचन प्रमाण विरुद्ध है। बहुरि वेदविषैं ब्रह्मा कह्या है, सर्वज्ञ कैसे न मानै है। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

## बौद्धमत विचार

अब बौद्धमतका स्वरूप कहिए है—

बौद्धमतविषै च्यारिआर्यसत्य† प्ररूपै है। दुःख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहाँ ससारीकै स्कधरूप सो दुःख है। सो पाच प्रकार‡ है—विज्ञान, वेदन, सज्ञा, सस्कार, रूप। तहाँ रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दु.ख का अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ्या था सो याद करना सो सस्कार है, रूपका धारना सो रूप है‡‡। सो यहाँ विज्ञानादिककौ दुःख कह्या सो मिथ्या है। दुःख तौ क्रोधादिक है। ज्ञान दुःख नाही। यह तौ प्रत्यक्ष देखिए है। काहूकै ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत है सो दु.खी है। काहूकै ज्ञान बहुत है, काम क्रोधादि स्तोक है वा नाही है सो सुखी है। तातै विज्ञा-नादिक दु ख नाही है। वहुरि आयतन बारह कहे है। पाँच तौ इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पाच विषय, अर एक मन, एक धर्मायतन। सो

---

†—दुःखमायतन चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ ३६ ॥

‡—दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीर्तिताः।
विज्ञान वेदना संज्ञा सस्कारोरूपमेव च ॥ ३७ ॥—वि० वि०

‡‡—रूप पचेन्द्रियाण्यर्थाः पचाविज्ञप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयः॥ ७ ॥

वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
सस्कारस्कंधश्चतुर्भ्योन्ये संस्कारास्त इमे त्रयः॥१५॥

विज्ञानं प्रति विज्ञप्ति .. ...।

अ० को

ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबकौ कहै, इनिका कहा प्रयोजन है ? बहुरि जातै रागादिकका कारण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदाय है। तहाँ अहरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक माने इनिका भी कहनेका किछू प्रयोजन नाही। बहुरि सर्व सस्कार क्षणिक है, ऐसी वासना सो मार्ग है। सो प्रत्यक्ष बहुतकाल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए है। तू कहैगा एक अवस्था न रहै है, तौ यहु हम भी मानै है। सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है। बहुरि तिस वस्तुहीका नाश मानै यहु तौ होता न दीसै है, हम कैसै मानै ? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषै एक आत्मा का ही अस्तित्व भासै है। जो एक नाही तौ पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्ता कैसे मानै है। जो तू कहैगा संस्कारतै है, तौ सस्कार कौनके हैं। जाके है सो नित्य है कि क्षणिक है। नित्य है तौ सर्व क्षणिक कैसे कहै है। क्षणिक है तौ जाका आधार ही क्षणिक तिस सस्कारकी परम्परा कैसै कहै है। बहुरि सर्वक्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया। तू ऐसी वासनाको मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलकौ आप तौ पावै ही नाही, काहेकौ इस मार्गविषै प्रवर्तै। बहुरि तेरे मतविषै निरर्थक शास्त्र काहेकौ किए। उपदेश तौ किछू कर्त्तव्यकरि फल पावै तिसके अर्थ दीजिए है। ऐसै यहु मार्ग मिथ्या है। बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासनाका उच्छेद जो निरोध, ताकौ मोक्ष कहै है। सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै है। अर रागादिकका अभाव होना तौ हम भी मानै है। अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तौ आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसै हितकारी होय। हिताहितका

विचार करनेवाला तौ ज्ञान ही है। सो आपका अभावकौ ज्ञान हित कैसे मानै। बहुरि बौद्धमतविषै दोय प्रमाण मानै है—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितै जानना। बहुरि जो यहु दोय ही प्रमाण है, तौ इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तौ जीव आप ही करि लेगे, तुम शास्त्र काहेकौ किए। बहुरि तहाँ सुगतकौ देव मानै है ताका स्वरूप नग्न वा विक्रिया रूप स्थापै है सो विडम्बनारूप है। बहुरि कमडल रक्तांबरके धारी पूर्वाह्नविषै भोजन करै इत्यादि लिगरूप बौद्धमतके भिक्षुक है, सो क्षणिककौ भेष धरनेका कहा प्रयोजन? परन्तु महंतताकै अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसै बौद्ध है, ते च्यारि प्रकार है—वैभाषिक, सौत्रातिक, योगाचार, मध्यम। तहाँ वैभाषिक तौ ज्ञानसहित पदार्थकौ मानै है। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है, परै किछू नाही ऐसा मानै है। योगाचारनिकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम है ते पदार्थका आश्रय बिना ज्ञानहीको मानै है। सो अपनी अपनी कल्पना करै है। विचार किएं किछू ठिकानाकी बात नाही। ऐसै बौद्धमतका निरूपण किया।

## चार्वाकमत

अब चार्वाकमत कहिये है—

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाहीं वा पुण्य पाप का फल नाही वा परलोक नाही; यह इन्द्रियगोचर जितना है सो ही लोक है ऐसै चार्वाक कहै है; सो तहाँ वाकौ पूछिए है—सर्वज्ञदेव

इस कालक्षेत्र विषै नाही कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्र-विषै तौ हम भी नाही मानै है। अर सर्वकालक्षेत्रविषै नाही ऐसा सर्वज्ञ विना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ, अर न जान है तौ निषेध कैसै करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोक-विषे प्रसिद्ध है। जो ए कल्पित होय तौ सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसे होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही मे सुखी दुखी हो है। इनिकौ कसै न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषे आवे है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन है, काहूकै अधिक है तौ जानिए हे काहूकै इनिको नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादिक गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै हे, सो ,जानिए है काहूकै सम्पूर्ण भी होते होसी। ऐसै जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पापका फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै तौ भी दरिद्री रहै। कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तौ भी रोगी रहै। काहूके विना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है सो याका कारण कोई तौ होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतै भासै है। व्यतरादिक है ते अवलोकिए है। मै अमुक था सो देव भया हू। बहुरि तू कहैगा यहु तौ पवन है सो हम तौ 'मै हूँ' इत्यादि चेत-नाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीकौ आत्मा कहै है, सो तू वाका नाम पवन कहि, परन्तु पवन तौ भीति आदिकरि अटकै है आत्मा मू द्या (बद) हुआ भी अटकै नाही,तातै पवन कैसै मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितना ही लोक कहै है। सो तेरी इन्द्रियगोचर तौ

थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थौरासा अतीत अनागत काल ऐसा क्षेत्रकालवर्ती भी पदार्थ नाही होय सकै। अर दूरि देशकी वा बहुतकालकी बातैं परम्परातैं सुनिए ही है, तातैं सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसै कहै है ?

बहुरि चार्वाकमतविषै कहै है कि पृथ्वी,अप,तेज,वायु,आकाश मिलें चेतना होय आवै है। सो मरतैं पृथ्वी आदि यहाँ रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषै पृथ्वी आदि तौ भिन्न भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तौ लोहू उश्वासादिककै जुदी जुदी ही चेतना ठैरै। बहुरि हस्तादिक काटे जैसै वाकी साथि वर्णादिक रहै तैसैं चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तौ चेतनाकै है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तौ यहाँ ही रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषै पूर्वपर्याय का अहंपना मानना देखिए है सो कैसै हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषै खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिका उपदेश है सो ऐसै तौ जगत् स्वयमेव ही प्रवर्त्तै है। तहाँ शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावनेके अर्थि उपदेश दिया तौ इनि कार्यनि विषैं तौ कषाय घटनेतैं आकुलता घटै है तातैं यहाँ ही सुखी होना हो है। बहुरि यश आदि हो है, तू इनिकौ छुडाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीविनिकौ सुहावती बातैं कहि अपना

वा औरनिका बुरा करने का भय नाही, स्वछन्द होय विषय सेवने के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसैं चार्वाकमतका निरूपण किया।

## अन्य मत निरसन में राग द्वेषका अभाव

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत है ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए है। तिनिका श्रद्धानादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है। सर्वज्ञ, वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए है। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे है। सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव है। बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु है। सो इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगै विशेष लिखेगे सो जानना।

यहाँ कोऊ कहै—तुम्हारे राग-द्वेष है, तातै तुम अन्यमतका निषेध करि अपने मतकौ स्थापो हो, ताकौ कहिए है—

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करनेविषै राग-द्वेष नाही। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै, तौ रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाही है तौ अन्यमत बुरे जैनमत भला ऐसा कैसै कहो हो। साम्यभाव होय तो सर्वकौ समान जानौ, मतपक्ष काहेकौ करो हौ।

याकौ कहिए है—बुराको बुरा कहै है भलाको भला कहै है, यामै रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा भलाकौं समान जानना तौ अज्ञानभाव है, साम्यभाव नाही।

बहुरि वह कहै है—जो सर्वमतनिका प्रयोजन तौ एक ही है, तातै

सर्वकौं समान जानना ।

ताकौ कहिए है—प्रयोजन एक होय तौ नानामत काहेकौ कहिए। एक मतविषै तौ एक प्रयोजन लिएं अनेक प्रकार व्याख्यान हो है, ताकौ जुदा मत कौन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न है, सो दिखाईए है—

## अन्य मतों से जैनमतकी तुलना

जैनमतविषै एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथनिविषै वा लोकादिका निरूपण विषै वा आचरणविषै वा तत्त्वनिविषै जहाँ तहाँ वीतरागताकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषै सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातै कल्पित रचना कषायी जीव ही करै सो अनेक युक्ति बनाय कषायभावहीकौ पोषै। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वकौ ब्रह्म माननेकरि, अर सांख्यमति सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपकौं शुद्ध अकर्त्ता माननेकरि, अर शिवमति तत्त्व जाननेहीतें सिद्धि होनी माननेकरि, मीमासक कषायजनित आचरणकौ धर्म माननेकरि, बौद्ध क्षणिक माननेकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेकरि, विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषै स्वच्छन्द होना ही पोषै है। यद्यपि कोई ठिकानैं कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करै, तौ उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करै है। जैसे गृह कार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया, अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनकै आश्रय अपने विषय कषाय पोषै। बहुरि जैनधर्मविषैं देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतरागताहीकौ पोषै है, सो यहु प्रगट है। हम कहा कहै, अन्यमति भर्तृहरि

ताहूने वैराग्यप्रकरण विषैं* ऐसा कह्या है—

**एको+ रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,**
**नीरोगेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्परः ।**
**दुर्वारस्मरवाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,**
**शेषःकामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः॥१॥**

याविषै सरागीनिविषै महादेवकौ प्रधान कह्या अर वीतरागी-निविषै जिनदेवकौ प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभाव-निविषै परस्पर प्रतिपक्षीपना है, सो ये दोऊ भले नाही। इनिविषै एक ही हितकारी है, सो वीतराग भाव ही हितकारी है जाके होतै तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना सर्व कहै। सरागभाव होतै तत्काल आकुलता होय निदनीक होय, आगामी बुरा होना भासै तातै जामै वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमे सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए है ऐसे अन्य-मत अनिष्ट है। इनिकौ समान कैसै मानिए। बहुरि वह कहै है—यहु तौ साच, परन्तु अन्यमतकी निन्दा किए अन्यमती दुःख पावै,

---

* यह पद्य वैराग्यप्रकरणमें नाही किन्तु शृङ्गारप्रकरणम न० ९७ पर मिलता है।

+ रागी पुरुषो मे तो एक महादेव शोभित होता है, जिसने अपनी प्रियतमा पार्वतीको आधे शरीरमें धारण कर रक्खा है और वीतरागियोमें जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोका सग छोडनेवाला दूसरा कोई नही है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोके विषसे मूर्च्छित हुये हैं जो कामकी विडम्बनाम न तो विषयोको भली भाति भोग ही सकते हैं और न छोड ही सकते हैं।

विरोध उपजै, तातै काहेकौ निन्दा करिए। तहाँ कहिए है—जो हमी कषायकरि निन्दा करै वा औरनिकौ दु:ख उपजावै तौ हम पापी ह हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ़ होय, तातै संसारविषै जीव दु:खी होय, तातै करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई विनादोष ही दु ख पावै, विरोध उपजावै तौ हम कहा करै। जैसें मदिराकी निन्दाकरतै कलाल दु:ख पावै, कुशीलकी निन्दा करतै वेश्यादिक दुःख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतै ठग दु ख पावै तौ कहा करिए। ऐसै जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तौ जीवनिका भला कैसै होय ? ऐसा तौ कोई उपदेश नाही, जाकरि सर्व ही चैन पावै। बहुरि वह विरोध उपजावै, सो विरोध तौ परस्पर हो है। हम लरै नाही. वे आप ही उपशाँत होय जांयगै। हमकौ तौ हमारे परिणामोका फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किएं मिथ्यादर्शनादिक हो है, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसैं मिथ्यादर्शनादिक होय ?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषै विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासे.यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै, तौ वीतरागभाव भए ही महतपनौ भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाही, अर अपनी महतता चाहै, तिनिने सरागभाव होतै महतता मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकर अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपणकरि जीव अजीवका अर स्वच्छन्दवृत्ति पोषनैकरि आस्रव

सवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनैकरि मोक्षका अयथार्थ श्रद्धानकी पोषै है। तातै अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै, तौ तत्त्वश्रद्धानविषै रुचिवत होय, उनको युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्यमतनिका निरूपण किया।

## अन्यमत के ग्रन्थोद्धरण से जैनधर्मकी प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकीही साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है—

बडा योगवाशिष्ठ छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहाँ अहंकार निषेध अध्यायविषै वशिष्ठ अर रामका सवादविषै ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा* ॥ १ ॥"

या विषै रामजी जिनसमान होनेकी इच्छाकरी तातै रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया, अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषै कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः॥"

---

* अर्थात् मैं राम नाही हूँ, मेरी कुछ इच्छा नही है और भावो वा पदार्थो में मेरा मन नही हैं। मैं तो जिनदेवके समान अपनी आत्मामे ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूँ।

यहाँ भगवत का नाम जैनमार्गविषै रत अर जैन कह्या, सो यामैं जैनमार्गकी प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई । बहुरि 'वैशपायनसहस्र-नाम' विषै कह्या है—

**"कालनेमिर्म्महा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः ।"**

यहाँ भगवान्‌का नाम जिनेश्वर कह्या,तातैं जिनेश्वर भगवान् है । बहुरि दुर्व्वासाऋषिकृत 'महिम्नस्तोत्र' विषै ऐसा कह्या है—

**तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी ।**
**कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः" ॥१॥**

यहाँ 'अरहंत तुमहो' ऐसैं भगवंत की स्तुति करी, तातैं अरहंतकै भगवतपनौ प्रगट भयो । बहुरि हनुमन्नाटकविषैं ऐसे कह्या है—

**"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः**
**बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।**
**अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः**
**सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथोःप्रभुः‡॥१॥"**

यहा छहो मतविषै ईश्वर एक कह्या, तहाँ अरहतदेवकै भी ईश्वरपना प्रगट किया ।

---

‡ यह हनुमन्नाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है । इसमे बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर नयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कहकर, उपासना करते हैं, वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथो को सफल करे ।

यहाँ कोऊ कहै, जैसैं यहाँ सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसैं तुम भी मानौ।

ताकौ कहिए है– तुमने यह कह्या है, हम तौ न कह्या। तातैं तुम्हारे मतविषै अरहतकै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषै भी ऐसैं ही कहै तौ हम भी शिवादिककौ ईश्वर मानैं। जैसै कोई व्यापारी साचा रत्न दिखावै, कोई झूठा रत्न दिखावै। तहाँ झूठा रत्नवाला तौ सर्व रत्नोका समान मोल लेनेके अर्थि समान कहै। साचा रत्नवाला कैसे समान मानैं? तैसें जैनी साचा देवादिकौ निरूपे, अन्यमती झूठा निरूपै, तहाँ अन्यमती अपनी समान महिमाके अर्थि सर्वकौ समान कहै—जैनी कैसे मानैं? बहुरि 'रुद्रयामलतत्र' विषै भवानी-सहस्रनामविषै ऐसैं कह्या है—

**"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।**
**जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥१॥"**

यहाँ भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातैं जिनका उत्तमपना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण' विषै ऐसैं कह्या है—

**"जैनं पशुपतं सांख्यं।"**

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषै ऐसा कह्या है—

**"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति १।"**

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषै जैन निरूपण है, तातैं जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवतका पंचमस्कंधविषै ऋषभावतार

---

१—प्ररूपयन्ति 'स्याद्वादिनः' इति खरडा प्रतौ पाठः।

का वर्णन है ॐ। तहाँ यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रम मकरि पूजित कह्या है, ताकै अनुसारि अरहत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहै है। सो जैसै रामकृष्णादि अवतारनिके अनुसारि अन्यमत, तैसै ऋषभावतारके अनुसारि जैनमत, ऐसै तुम्हारे मतहीकरि जैन प्रमाण भया। यहाँ इतना विचार और किया चाहिये—कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्तिहो है। ऋषभावतारके अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहाँ दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्रविषै—"**बद्ध्वा पद्मासन यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे**" इत्यादि बुद्धा वतारका स्वरूप अरहंत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तौ अरहतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखंडविषै देवदास राजानै सम्बोधि राज्य छुडायो। तहाँ नारायण तौ विनयकीर्त्ति यती भया, लक्ष्मीकौ विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़कौ श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहाँ सम्बोधन करना भया, तहाँ जैनी भेष बनाया। तातै जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है—

**भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।**
**तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः॥१॥"**

---

ॐ भागवत स्कध ५ अ०, ५ २६

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्व पापप्रणाशकः ।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः" ॥३॥

यहाँ वामनकौ पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतैं कोटीयज्ञका फल कह्या सो ऐसा नेमिनाथका स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै है, सो प्रमाण ठहर्‌या। बहुरि प्रभासपुराणविषै कह्या है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥१॥"

यहाँ नेमिनाथकौ जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानको ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या, अर युगादिके स्थानकौ भी ऐसाही कह्या, तातैं उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' विषै भवावतारहस्यविषै ऐसा कह्या है—

"अकारादिहकारन्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ।
नादविन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥१॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥"

यहाँ 'अर्हं' ऐसे पदकौ परमतत्त्व कह्या। याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही, सो 'अर्हं' पद जैनमतं उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषै कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥ १ "

यहाँ कृतयुगविषै दश ब्राह्मणोंकौ भोजन करानेका जेता फल कह्या, तेता फल कलियुगविषै अर्हंतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या तातै जैनीमुनि उत्तम ठहरे । बहुरि 'मनुस्मृति' विषै ऐसा कह्या है-

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलावाहनः ।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ २ ॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥३॥

यहाँ विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषै कुलकरनिके नाम कहे है अर यहाँ प्रथमजिन युगकी आदिविषै मार्गकादर्शक अर सुरासुरपूजित कह्या, सो ऐसै ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतें है अर प्रमाणभूत कैसै न कहिए । बहुरि ऋगवेदविषै ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्नं येपां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि ।

बहुरि यजुर्वेदविषै ऐसा कह्या है:-

ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय, बहुरि ऐसा कह्या है—

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति। अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात स्वाहा। ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायुवलायुर्वा शुभजातायु ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा*।

यहाँ जैनतीर्थंकरनिके जे नाम है तिनका पूजना कह्या। बहुरि यहाँ यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। ऐसैं अन्यमतनिकी साक्षीतैं भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ भई। अर जिनमत कौं देखैं वे मत कल्पित ही भासैं। तातैं जो अपना हितका इच्छुक होय तो पक्षपात छोरि साँचा जैनधर्म कौ अगीकार करो। बहुरि अन्यमतनिविषै पूर्वापरविरोध भासै है। पहले अवतार वेद का उद्धार किया। तहाँ यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धावतार यज्ञका निंदक होय, हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्रीरमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया।

* यजुर्वेद अ० २५ म० १९ अष्ठ १६ अ० ६ वर्ग १

सो अब यह संसारी कौनका कह्या करै, कौनके अनुसारि प्रवर्त्तै अर इन सब अवतारनिकौ एक बतावै सो एक ही कदाचित् कैसै कदाचित् कैसै कहै वा प्रवर्त्तै तौ याकै उनके कहने की वा प्रवर्त्तनेकी प्रतीति कैसे आवै ? बहुरि कही क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करै. कही लरनेका वा बिषयादिसेवनका उपदेश दे। तहाँ प्रारब्ध बतावै सो विना क्रोधादि भए आपहीतै लरना आदि कार्य होंय तौ यहु भी मानिए सो तौ होंय नाही। बहुरि लरना आदि कार्य होतैं क्रोधादि भए मानिए तौ जुदे ही क्रोधादि कौन है, तिनका निषेध किया। तातै बनै नाही, पूर्वापर विरोध है। गीताविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश किया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावै, सो ऐसा क्रोध किएं निद्यपना कैसै न भया ? इत्यादि जानना। बहुरि "**अपुत्रस्य गतिनास्ति**" ऐसा भी कहै अर भारतविषै ऐसा भी कह्या है—

**अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम् ।**
**दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥ १ ॥**

यहां कुमारब्रह्मचारीनिकौ स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै तौ ऐसा कह्या है—

**मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम् ।**
**ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तवः ॥१॥**
**वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः ।**

वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥२॥
चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥३॥

इन विषै मद्यमासादिकका वा रात्रिभोजनका वा चौमासेमैं विशेषपनै रात्रिभोजनका वा कदफलभक्षणका निषेध किया । बहुरि बडे पुरुषनिकै मद्यमासादिकका सेवन करना कहै, व्रतादिविषैं रात्रिभोजन स्थापै वा कदादिभक्षण स्थापै, ऐसैं विरुद्ध निरूपै है । ऐसैं ही अनेक पूर्वापर विरुद्धबचन अन्यमतके शास्त्रविष है। सो करैं कहा। कही तौ पूर्वपरम्परा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कही विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कह्या । सो जहाँ पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसै करिए। इहाँ जो अन्यमत-निविषै क्षमा शील सन्तोषादिकको पोषते वचन है सो तौ जैनमत-विषै पाइए है अर विपरीत वचन है सो उनका कल्पित है । जिनमत अनुसार वचनका विश्वासतै उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातै अन्यमतका कोऊ अग भला देखि भी तहाँ श्रद्धानादिक न करना। जैसै विषमिश्रित भोजन हितकारी नाही, तैसै जानना। बहुरि जो कोई उत्तमधर्मका अग जिनमतविषै न पाईए अर अन्यमत में पाईए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अंग जैनमतविषै पाईए अर अन्यत्र न पाईए, तौ अन्यमतकौ आदरौ सो सर्वथा होय नाही। जातैं सर्वज्ञका ज्ञानतै किछू छिपा नाही है । तातै अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ श्रद्धानादिक करना । बहुरि कालदोषतै कषायी जीवनिकरि जिनमतविषै भी कल्पितरचना करी है,सो ही दिखाईए है—

## श्वेताम्बर मत विचार

श्वेताम्बरमतवाले काहूनै सूत्र बनाए, तिनिकौ गणधरके किए कहे है। सो उनकौ पूछिए है—गणधरनै आचारांगादिक बनाए है सो तुम्हारै अवार पाईए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तौ तुम्हारे शास्त्रनिविषै आचारागादिर्कानिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो । पदका प्रमाण कहा ? जो विभक्तिका अतकौ पद कहोगे, तौ कहे प्रमाणत बहुत पद होय जायगे, अर जो प्रमाणपद कहोगे, तौ तिस एकपदके साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक है। सो ए तौ बहुत छोटे शास्त्र है, सो बनै नाही । बहुरि आचारागादिकतै दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै बधता है सो कैसै बनै ' बहुरि कहोगे, आचारागादिक बड़े थे, कालदोष जानि तिनहीमैंसौ केतेक सूत्र काढि ए शास्त्र बनाए है। तौ प्रथम तौ टूटकग्रन्थ प्रमाण नाही । बहुरि यह नियम है, जो बड़ा ग्रंथ बनावै तौ वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिए करै अर छोटा ग्रन्थ बनाव तौ तहाँ सक्षेपवर्णन करै, परन्तु सम्बन्ध टूटै नाही । अर कोई बड़ा ग्रन्थ मै थोरासा वथन काढि लीजिए, तौ तहाँ सम्बन्ध मिलै नाही—कथनका अनुक्रम टूटि जाय । सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तौ कथादिकका भी सम्बन्ध मिलता भासै है- टूटकपना भासै नाही । बहुरि अन्य कवीनितै गणधरकी तौ बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमैं थोरे शब्दमै बहुत अर्थ चाहिए सो तौ अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाही । बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसै धरै नाही, 'जो

अमुक कहै है', 'मै कहूँ हूँ' ऐसा कहै । सो तुम्हारे सूत्रनिविषै 'हे गोतम' वा 'गोतम कहै है' ऐसे वचन है। सो ऐसे वचन तौ तब ही सम्भवै, जब और कोई कर्त्ता होय । तातै यह सूत्र गणधरकृत नाही, औरके किए है। गणधरका नामकरि कल्पितरचनाकौ प्रमाण कराया चाहै है। सो विवेकी तौ परीक्षाकरि मानै, कह्या ही तौ न मानै।

बहुरि वह ऐसा भी कहै है—जो गणधरसूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है। ताने ए सूत्र बनाए है। तहाँ पूछिए है—जो नए ग्रन्थ बनाए थे,तौ नवा नाम धरना था, अंगादिकके नाम काहेकौ धरे। जैसै कोई बडा साहूकार की कोठीका नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसे यह कार्य भया ॐ। साचेकौ तौ जेसै दिगम्बरविषै ग्रन्थनिके और नाम धरे अर अनुसारी पूर्वग्रन्थनिका कह्या, तैसे कहना योग्य था। अंगादिकका नाम धरि गणधरदेवका भ्रम काहेकौ उपजाया। तातै गणधरके वा पूर्वधारीके वचन नाही। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास अनावनेके अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तौ साच है ही, दिगम्बर भी तैसे ही कहै है। बहुरि जो कल्पितरचना

---

ॐ निम्न पंक्तियाँ खरडा प्रति में नही पाई जाती पर श्री प० नाथूरामजी 'प्रेमी' की जो प्रति प्राप्त हुई थी उसमें निहित हैं। अतएव फुटनोट में उद्धृत की जाती हैं। 'यह साच तौ तब होता, जैसे दिगम्बर आचार्यनिने अनेक ग्रन्थ रचे, तौ सर्व गणधर करि भाषित अग प्रकीर्णक ताके अनुसार रचे अर तिनि सबनि में ग्रन्थकर्ताका नाम सर्व आचार्यनिने अपना भिन्न भिन्न रक्खा अर तिनि ग्रन्थनि के नाम हू भिन्न भिन्न रक्खे, किसी ग्रन्थका नाम अंगादि नही रक्खा अर न यह लिख्या, जो ए गणधरदेवने रचे हैं।'

करी है, तामैं पूर्वापरविरुद्धपनौ वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमैं विरुद्धपनौ भासै है, सो ही दिखाईए है—

## अन्यलिंगसे मुक्तिका निषेध

अन्य लिगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चांडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिकी प्राप्ति होनी मानै है, सो बनै नाही। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है। सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तौ ऐसा कहै है—

**अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुमाहणो गुरुणो।**
**जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहिए ॥ १ ॥**

सो अन्य लिगीकै अरहंतदेव, साधु गुरु, जिनप्रणीत तत्त्वका मानना कैसै सम्भवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तौ मोक्ष कैसै होय। जो कहोगे अंतरग के श्रद्धान होनेतैं सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिगधारककी प्रशसादिक किए भी सम्यक्त्वकौ अतीचार कह्या है सो साँचा श्रद्धान भए पीछै आप विपरीतलिगका धारक कैसै रहै। श्रद्धान भए पीछै महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिगविषै कैसै बनै ? जो अन्यलिगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तौ जैनलिग अन्यलिग समान भया तातै अन्यलिगीकौ मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थकौ मोक्ष कहै सो हिंसादिक सर्व सावद्यका त्याग किए सम्यक्चारित्र होय सो सर्वसावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनौ कैसे सम्भवै ? जो कहोगे—अंतरगका त्याग भया है तौ यहाँ तौ तीनूं योगकरि त्याग करै है, कायकरि त्याग कैसैं भया ? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखें भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषैं

तौ बाह्यत्याग करनेकी प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय। महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न होय सकै है, तो तब मोक्ष कैसैं होय ? तातैं गृहस्थकौ मोक्ष कहना मिथ्या वचन है।

## स्त्री मुक्तिका निषेध

बहुरि स्त्रीकौ मोक्ष कहै, सो जातैं सप्तम नरक गमन योग्य पाप न होय सकै, ताकरि मोक्षका कारण शुद्धभाव कैसै होय सकै ? जातैं जाके भाव दृढ होय, सो ही उत्कृष्ट पाप व धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशक एकातविषै ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाही। जो कहोगे, एक समयविषै पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुसकवेदीकौ सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातैं स्त्रीकौ मोक्ष मानिए है। सो यहाँ भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाव वेदी है तो हम मानै ही है। द्रव्य वेदी है तौ पुरुषस्त्रीवेदी तौ लोकविषै प्रचुर दीसै है, नपुसक तौ कोई विरला दीसै है। एक समयविषै मोक्ष जानेवाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवै ? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनै नाही। बहुरि जो कहोगे, नवमगुणस्थानताई वेद कहे है,सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेदअपेक्षा होय तौ चौदहवाँ गुणस्थानपर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

## शूद्र मुक्तिका निषेध

बहुरि शूद्रनिकौ मोक्ष कहै। सो चाडालादिककौ गृहस्थ सन्मानादिककरि दानादिक कैसै दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोके उत्तम परिणाम न होय सकै। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तौ पचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढे विना मोक्ष कैसै

होय । जो कहोगे—संयम धारे पीछै वाकै उच्चगोत्रका उदय कहिए, तौ सयम धारने का वा नधारनेकी अपेक्षातैं नीच उच्चगोत्रका उदय ठहरया । ऐसे होतै असयमी मनुष्य तीर्थकर क्षत्रियादिककै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै । जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय कहोगे तौ चाडालादिककै भी कुल अपेक्षा ही नीचगोत्रका उदय कहो । ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पचम गुणस्थान पर्यत ही कह्या है । सो कल्पित कहनेमै पूर्वापरविरुद्ध होय ही होय । तातै शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है ।

ऐसे तिनहूनै सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही, सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना,मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पितमत की प्रवृत्ति करनी । परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है ।

## अछेरोंका निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै है । सो कहै है— हुण्डावसर्प्पिणीके निमित्ततै भए है,इनकौ छेडने नाही । सो कालदोषतैं केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तौ न होय । जो प्रमाणविरुद्ध भी होय, तौ आकाशके फूल, गधेके सीग इत्यादिका होना भी बनै सो सम्भवै नाही । तातै वे तौ अछेरा कहै सो प्रामाण विरुद्ध है । काहेतै सो कहिए है—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषै रहे,पीछै क्षत्रियाणी के गर्भविषै बधे, ऐसा कहै है । सो काहूका गर्भ काहूकै धरया प्रत्यक्ष भासै नाही, उन्मानादिकमै आवै नाही । बहुरि तीर्थकरके भया कहिए, तौ गर्भकल्याणक काहूके घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके

धरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्ट्यादिक काहूके घर भए, केतेक दिन काहूके घरि भए। सोलह स्वप्न किसीको आए, पुत्र काहू कै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तौ दोय भई अर पिता तौ एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया,अन्य कल्पित पिताका सन्मान किया। सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है। सर्वोत्कृष्टपद के धारककै ऐसे बचन सुनने भी योग्य नाही। बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई, तौ सर्वत्र ही अन्यस्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै, तौ वैष्णव जैसै अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावै है, तैसै यहु कार्य भया। सो ऐसे निकृष्ट कालविषै तौ ऐसै होय नाही, तहाँ होना कैसै सम्भवै ? तातै यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लितीर्थंकरकौ कन्या कहै है। सो मुनि देवादिककी सभा विषै स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भवै, वा स्त्रीपर्यायहीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै। बहुरि तीर्थंकरकै नग्नलिग ही कहै है, सो स्त्रीकै नग्नपनौ न सम्भवै। इत्यादि विचार किए असम्भव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियाँकौ नरक गया कहै। सो बधवर्णन विषै तौ भोगभूमियाँकै देवगति देवायुहीका बध कहै नरक कैसै गया। सिद्धान्तविषै तौ अनन्तकालविषै जो बात होय, सो भी कहै। जैसैं तीसरै नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, भोगभूमियाकै नरक आयु गतिका बध न कह्या, सो केवली भूलै तौ नाही। तातै यहु मिथ्या है। ऐसै सर्व अछेरे असम्भव जानने। बहुरि वे कहै है, इन कौ

छेडने नाही सो झूंठ कहनेवाला ऐसैं ही कहै।

बहुरि जो कहोगे—दिगम्बरविषै जैसैं तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तिका मान भग इत्यादि कार्य कालदोषतै भया कहै है, तैसै ए भी भए। सो ये कार्य तौ प्रमाणविरुद्ध नाही। अन्यकै होते थे सो महतनिकै भए तातै कालदोष कह्या है। गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितै विरुद्ध, तिनकै होना कैसै सम्भवै? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै है। जैसै कहै है, सर्वार्थसिद्धिके देव मनहीतै प्रश्न करै है, केवली मनहीतै उत्तर दे है। सो सामान्य जीवके मनकी बात मनःपर्ययज्ञानी बिना जानि सकै नाही। केवलीके मनकी सर्वार्थसिद्धिके देव कैसै जानै? बहुरि केवलीकै भावमनका तौ अभाव है, द्रव्यमन जड आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया। तातै मिथ्या है। ऐसै अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए है, तातै तिनके आगम कल्पित ही जानने।

## केवली के आहार नीहारका निराकरण

बहुरि श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपै है। तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहै। सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहेतै, क्षुधादिक दोष होतै आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसै बनै? बहुरि जो कहोगे, शरीरकौ क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तौ क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेको ग्रहण किया कहो हौ। क्षुधादिकरि पीड़ित होय, तब ही आहार ग्रहण करै। बहुरि कहोगे, जैसै कर्मोदयतै विहार हो है, तैसै ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तो विहायोगति प्रकृतिका उदय ते हो है,

अर पीडाका उपाय नाही, अर विना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतै नाही, क्षुधाकरि पीडित भए ही ग्रहण करै है। बहुरि आत्मा पवनादिककौ प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातै विहारवत् आहार नाही। जो कहोगे — सातावेदनीयके उदयतै आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाही। जो जीव क्षुधादिकरि पीडित होय, पीछै आहारादिक ग्रहणतै सुख मानै, ताकै आहारादिक साताके उदयतै कहिए। आहारादिक सातावेदनीयका उदयतै स्वयमेव होय, ऐसै तौ है नाही। जो ऐसै होय तौ सातावेदनीयका मुख्यउदय देवनिकै है,ते निरन्तर आहार क्यो न करै। बहुरि महामुनि उपवासादि करै, तिनकै साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालौकै असाताका भी उदय सम्भवै। तातै जैसै विना इच्छा विहायोगतिके उदयतै विहार सम्भवै, तैसै विना इच्छा केवल सातावेदनीयहीके उदयतै आहारका ग्रहण सम्भवै नाही।

बहुरि वह कहै है, सिद्धान्तविषै केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहे है,तातै तिनकै क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है। बहुरि आहारादिक विना तिनकी उपशातता कैसै होय, तातै तिनकै आहारादिक मानै है।

ताका समाधान — कर्मप्रकृतिनिका उदय मद तीव्र भेद लिए हो है। तहाँ अतिमद होतै तिसका उदयजनित कार्यकी व्यक्तता भासै नाही। तातै मुख्यपनै अभाव कहिए,तारतम्यविषै सद्भाव कहिए। जैसै नवम गुणस्थानविषै वेदादिकका उदय मन्द है, तहाँ मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाही, तातै तहाँ ब्रह्मचर्य्य ही कह्या। तारतम्यविषै मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसै केवलीकै असाताका उदय अतिमंद है। जातै

एक एक कांडकविषै अनन्तवै भाग अनुभग रहै, ऐसे बहुत अनुभाग-कांडकनि करि वा गुणसक्रमणादिककरि सत्ताविषै असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मद भया, ताका उदयविषै क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाही जो शरीरको क्षीण करै। अर मोहके अभावतै क्षुधादिकजनित दु:ख भी नाही,तातै क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषै तिनका सद्भाव कहिए है। बहुरि तै कह्या—आहारादिक विना तिनकी उपशातता कस होय, सो आहारादिकरि उपशात होने योग्य क्षुधा लागै तौ मन्द उदय काहेका रह्या ? देव भोगभूमियॉ आदिककै किंचित् मद उदय होतै ही बहुत काल पीछै किंचित् आहार ग्रहण हो है तौ इनकै तौ अतिमद उदय भया है, तातै इनकै आहारका अभाव सम्भवै है।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोका तौ शरीर ही ऐसा है, जाकौ भूख थोरी वा घनेकाल पीछै लागै; इनिका तौ शरीर कर्मभूमिका औदारिक है। तातै इनिका शरीर आहार विना देशोनकोड़ि पूर्वपर्यन्त उत्कृष्टपनै कैसै रहै ?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मकेही निमित्ततै है। यहाँ केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाकी भूख प्रगट होती ही नाही। जैसै केवलज्ञान भए पहलै केश नख बध थे सो बधै ( बढै ) नाही। छाया होती थी सो होती नाही। शरीर विषै निगोद थी, ताका अभाव भया। बहुत प्रकारकरि जैसै शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसै आहार विना भी शरीर जैमाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई। प्रत्यक्ष देखौ; औरनिकौ जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनिका आयुका

अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय। तातै अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता सम्भवै नाही। बहुरि जो तू कहैगा—देवादिककै आहार ही ऐसा है, जाकरि बहुतकालकी भूख मिटे, इनिकै भूख काहे तै मिटी अर शरीर पुष्ट कैसै रह्या ? तौ सुनि, असाताका उदय मद होनेतै मिटी, अर समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणाका ग्रहण हो है सो वह तौ कर्म आहार है सो ऐसी ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है, जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाही वा शरीर शिथिल होय नाही। सिद्धान्त-विषै याहीकी अपेक्षा केवलीके आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तौ शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाही। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै,शरीर पुष्ट बहुत होय, कोऊ बहुत आहार ग्रहै,शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत कालताँई आहार न ले, शरीर पुष्ट रह्या करै वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करै, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तौ सर्वोत्कृष्टपना है,उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तौ कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसै आहारकौ जाय, कैसै याचै।

बहुरि वे आहारकौ जाय, तब समवशरण खाली कैसै रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहरावोगे तौ कौन ल्याय दे, उनके मनकी कौन जानै। पूर्वं उपवासादिककी प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसै निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्वप्रतिभासै, कैसै आहार ग्रहै ? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वह कहै है—आहार ग्रहै है, परन्तु काहूकौ दीसै नाही। सो आहार ग्रहणकौ निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषै लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या, अर और न देखै है तौ कहा भया। ऐसें अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातैं सुनो—केवलीकै नीहार कहै है, रोगादिक भया कहै है अर कहै, काहूने तेजोलेश्या छोरी, ताकरि वर्द्धमानस्वामीकै पेठूगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार निहार होने लागा। सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तौ इंद्रादिकरि पूज्यपना कैसै सोभै। बहुरि नीहार कैसै करै, कहा करै, कोऊ सभवती बातै नाहीं। बहुरि जैसै रागादि करि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसै केवलीकै क्रिया ठहरावै है। वर्द्धमानस्वामीका उपदेशविषै 'हे गौतम' ऐसा बारबार कहना ठहरावै है, सो उनकै तौ अपना कालविषै सहज दिव्यध्वनि हो है, तहां सर्वकौ उपदेश हो है, गौतमकौ संबोधन कैसै बनै? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावै है,सो अनुराग बिना वदना सभवै नाही। बहुरि गुणाधिककौ वंदना संभवै, उन सेती कोई गुणाधिक रह्या नाही। सो कैसै बनै ? बहुरि हाटिविषै समवसरण उतर्‌या कहैं, सो इद्रकृत समवसरण हाटिविषै कैसै रहै ? इतनी रचना तहां कैसै समावै। बहुरि हाटिविषै काहेकौ रहै ? कहा इद्र हाटि सारिखी रचना करनेकौ भी समर्थ नाही, जातै हाटि का आश्रय लीजिए। बहुरि कहै—केवली उपदेशदेनेकौ गए। सो घरि जाय उपदेश देना अतिरागतै होय, सो मुनिकै भी सभवै नाही। केवलीकै कैसै बनै? ऐसै ही अनेक विपरीतिता तहां प्ररूपै है। केवली शुद्धकेवलज्ञानदर्शनमय रागादिरहित भए है, तिनकै अघातिकर्मनिके उदयतै सभवती क्रिया कोई हो है। केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है तातै उपयोगमिले क्रिया होय सकै, सो सभवै नाही। पापप्रकृति का अनु-

भाग अत्यत मंद भया है। ऐसा मद अनुभाग अन्य कोईकै नाही। तातै अन्यजीवनिकै पापउदयतै जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै न होय। ऐसै केवली भगवानकै सामान्य मनुष्यकीसी क्रिया का सद्‌भाव कहि देवका स्वरूपकौ अन्यथा प्ररूपै है।

## मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरूका स्वरूपकौ अन्यथा प्ररूपै है। मुनिके वस्त्रादिक चौदह उपकरण* कहै हैं। सो हम पूछै है कि मुनिकौ निर्ग्रंथ कहै अर मुनिपद लेते नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अगीकार करै, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह है कि नाही। जो है तो त्याग किए पीछै काहेकौ राखै, अर नाही है तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखै ताकौ भी परिग्रह मति कहौ। सुवर्णादिकहीकौ परिग्रह कहौ। बहुरि जो कहोगे, जैसै क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसै शीतउष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है। सो मुनिपद अगीकार करतै आहारका त्याग किया नाही, परिग्रह का त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तौ सग्रह करना परिग्रह है,भोजन करने जाय सो परिग्रह नाही। अर वस्त्रादिकका सग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषै प्रसिद्ध है। बहुरि कहोगे, शरीरकी स्थितिके अर्थि

---

* १ पात्र २ पात्रबन्ध ३ पात्र केसरिकर ४ पटलिकाएं ५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०-११ एक ऊनी कपडा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो बृहत्क० सू० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक।

वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाही है,तातैं इनिकौ परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषैं तौ जब सम्यग्दृष्टी भया तबही समस्त परद्रव्यविषैं ममत्वका अभाव भया। तिस अपेक्षा तौ चौथा गुणस्थान ही परिग्रहरहित कह्यौ। अर प्रवृत्तिविषैं ममत्व नाही, तौ कैसैं ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटैगा, तब ही नि परिग्रह होगा। बहुरि कहोगे—वस्त्रादिककौ कोई लेय जाय तौ क्रोध न करै, क्षुधादिक लागैं तौ वे बेचैं नाही वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करैं नाही, परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधैं है तातैं ममत्व नाही। सो बाह्य क्रोध मति करौ परन्तु जाका ग्रहण विषैं इष्ट बुद्धि होय, ताका वियोगविषैं अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई, तौ ताके अर्थि याचना काहेकौ करिए है? बहुरि बेचते नाही, सो धातु राखनेतैं अपनी हीनता जानि नाही बेचिए है। जैसैं धनादि राखन तैसैं ही वस्त्रादि राखने। लोकविषैं परिग्रहके चाहक जीवनिकैं दोउनि-की इच्छा है। ताते चोरादिकके भयादिकके कारन दोऊ समान है। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधनहीतैं परिग्रहपना न होय। जो काहूकौ बहुत शीत लागेगा सो सोड़ि राखि परिणामनिकी थिरता करैगा, अर धर्मसाधैगा तौ वाकौ भी निःपरिग्रह कहो। ऐसैं गृहस्थधम मुनिधर्मविषैं विशेष कहा रहेगा। जाकैं परीषह सहनेकी शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधैं ताका नाम गृहस्थधर्म; अर जाकैं परि-णाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय, सो परिग्रह न राखैं अर धर्म साधैं ताका नाम मुनिधर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे,शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसैं न होय। सो व्याकुलता तौ

मोहके उदयके निमित्ततैं है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषै तीन चौकड़ीका उदय नाही। अर सज्वलनके सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाही। देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाही। जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिकैं सम्यक्‌मोहनीय का उदय है, सो सम्यक्त्वकौं घात न करि सकै, तैसे देशघाती सज्वलनका उदय परिणामनिकौं व्याकुल करि सकै नाही। अहो मुनिनिकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाही। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है। तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होय तैसे उनकै कदाचित् न होय। तातैं जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय ते गृहस्थ ही रहै अर जिनकै देशघाती का उदय होय ते मुनिधर्म अगीकार करै। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होय तातैं वस्त्रादिक राखै नाही। बहुरि कहोगे—जैन शास्त्रनिविषै चौदह् उपकरण मुनि राखै, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारेही शास्त्रनिविषै कह्याहै, दिगम्बर जैनशास्त्रनिविषै तौ कहे नाही। तहाँ तौ लगोटमात्र परिग्रह रहै भी ग्यारही प्रतिमा का धारक श्रावक ही कह्या। सो अब यहाँ विचारौ, दोऊनिमै कल्पित वचन कौन है? प्रथम तौ कल्पित रचना कषायी होय सो करै। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनौ प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बरविषै वस्त्रादि राखे धर्म होय ही नाही, ऐसा तौ न कह्या परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बरविषै मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जानैं नीची क्रिया होतैं, उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है। इस कल्पित कहनेकरि आपकौ वस्त्रादि राखतैं भी लोक मुनि मानने लागै, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिकौ सुगमक्रियाविषै उच्चपद का होना दिखाया, तातैं घने लोक

लगि गए। जे कल्पित मत भए है, तें ऐसैं हीं भए हैं। तातैं कषायी होइ वस्त्रादि होतैं मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त युक्तिकरि विरुद्ध भासै है। तातैं ए कल्पितवचन है, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे— दिगम्बरविषैं भी शास्त्र पीछी आदि मुनिकैं उपकरण कहे है, तैसें हमारे चौदह उपकरण कहे है।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहाँ शीतादिककी वेदना दूरि करनेतैं उपकरण ठहराईए, तौ सर्वपरिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषैं इनिका कहा प्रयोजन ? ए तौ पापके कारण है। धर्मविषैं तौ धर्मका उपकारी जे होय तिनिका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानकौ कारण, पीछी दयाकौ, कारण कमडलु शौचकौ कारण,सो ए तौ धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसैं धर्मके उपकारी होय? वे तो शरीरका सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनौ जो शास्त्र राखि महंतता दिखावै,पीछीकरि बुहारी दे,कमडलुकरि जलादिक पीवैं वा मैलउतारै,तौ शास्त्रादिक भी परिग्रह ही है। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाही। तातैं धर्मके साधनकौ परिग्रह संज्ञा नाही। भोगके साधनकौ परिग्रह संज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे— कमंडलुतैं तौ शरीरहीका मल दूरि करिए है,सो मुनि मल दूरि करनेकी इच्छाकरि कमडलु नाही राखैं हैं। शास्त्र बाचना आदि कार्य करैं अर मललिप्त होय तौ तिनिका अविनय होय, लोकनिंद्य होय, तातैं इस धर्मके अर्थि कमडलु राखिए है। ऐसैं पीछी आदि उपकरण सम्भवैं, वस्त्रादिकौ उपकरण संज्ञा सम्भवैं नाही। काम अरति आदि मोहका उदयतैं विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जांय

तातैं विकार ढांकनेकौ वा शीतादि मिटावनेंकौ वस्त्रादिक राखै अर मानके उदयतै अपनी महतता भी चाहैं तातै कल्पितयुक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावै है। सो प्रथम तौ यहु पूछिए है, याचना धर्मका अग है कि पापका अग है। जो धर्मका अग है, तौ मागनेवाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अग है, तौ मुनिकै कैसे सम्भवै ?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचै तौ पाप होय, यहु तौ धर्म साधनके अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहै है तातै आहारादिक याचै है।

ताका समाधान—आहारादिककरि धर्म होता नाही, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखके अर्थि अतिलोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता तो आप काहेकौ मागता। वे ही देते तौ देते, न देते तौ न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहाँ ही पाप भया, तब मुनिधर्म नष्ट भया, और धम कहा साधैगा। अब वह कहै है—मनविषै तौ आहारकी इच्छा होय अर याचै नाही तौ मायाकपाय भया अर याचनेमै हीनता आवै है सो गर्वकरि याचै नाही तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मागि लिया। यामै अतिलोभ कहा भया अर यातै मुनिधर्म कैसै नष्ट भया, सो कहौ। याकौ कहिए है—

जैसै काहू व्यापारीकै कुमावनेकी इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तौ बैठै अर मनविषै व्यापारकरनेकी इच्छा भी है, परन्तु काहूकौ वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाही करै हैं। स्वयमेव कोई आवै तौ अपनी विधि मिले व्यापार करै है तौ ताकै लोभका

मंदता है, माया वा मान नाही है। माया मानकषाय तौ तब होय, जब छलकरनेके अर्थि वा अपनी महतताके अर्थि ऐसा स्वाग करै। सो भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाही तातै वाकै माया मान न कहिए। तैसै मुनिनकै आहारदिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेकौ आवै अर मनविषै आहारलेनेकी इच्छा भी है, परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाही करे है। स्वयमेव कोई दे तौ अपनी विधि मिले आहार ले है तौ उनकै लोभकी मदता है, माया वा मान नाही है। माया मान तौ तब होय जब छल करनेके अर्थि वा महतताके अर्थि ऐसा स्वाग करै। सो मुनिनकै ऐसै प्रयोजन है नाही तातै इनिकै माया मान नाही है। जो ऐसै ही माया मान होय तौ जे मनहीकरि पाप करै, वचनकायकरि न करै, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति अगीकार नाही करै है, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसें अनर्थ होय ! बहुरि तै कह्या—"आहार मागनमै अतिलोभ कहा भया ? सो अतिकषाय होय तब लोकनिद्य कार्य अगीकारकरिकै भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सो मांगना लोकनिद्य है, ताकौ भी अगीकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातै यहाँ अतिलोभ भया। बहुरि तै कह्या—"मुनिधर्म कैसै नष्ट भया," सो मुनिधर्मविषै ऐसी तीव्रकषाय सम्भवै नाही। बहुरि काहूका आहारदेनेका परिणाम न था, यानै वाका घरमै जाय याचना करी। तहाँ वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिद्य होनेका भय भया तातै वाकौ आहार दिया। सो वाका अन्तरग प्राण पीड़नेतै हिसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमै न जाते,उसहीकै देनेका

उपाय होता,तौ देता, वाकै हर्ष होता। यहु तौ दबायकरि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है, सो पापरूप है। सो यहाँ असत्यवचन भी भया। बहुरि वाकै दैनेकी इच्छा नथी, यानै याच्या, तब वानै अपनी इच्छातै दिया नाही—सकुचिकरि दिया। तातै अदत्त-ग्रहण भी भया। बहुरि गृहस्थके घरमैं स्त्री जैसै तैसै तिष्ठै थी, यहु चल्या गया। तहाँ ब्रह्मचर्यकी बाडिका भंग भया। बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या। आहारादि के राखनेकौ पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया। ऐसै पाच महाव्रतनिका भग होनेतै मुनिधर्म नष्ट हो है तातै याचनाकरि आहार लेना मुनिकौ युक्त नाही।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषै याचनापरीषह कही है, सो मागेविना तिस परीषहका सहना कैसै होय ?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचनापरीषह नाही है। याचना न करनी, ताका नाम याचनापरीषह है। जातै अरति करनेका नाम अरतिपरीषह नाही, अरति न करनेका नाम अरतिपरीषह है, तैसै जानना। जो याचना करना परीषह ठहरै, तौ रकादि घनी याचना करै है, तिनकै घना धर्म होय। अर कहोगे, मान घटावनेतै याकौ परीषह कहै है तौ कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई कषाय छोरे भी पापी ही होय। जैसै कोई लोभके अर्थि अपना अपमानकौ भी न गिनै, तौ वाकै लोभकी तीव्रता है। उस अपमान करावनेतै भी महापाप होय है। अर आपकै इच्छा किछू नाही, कोई स्वयमेव अपमान करै है, तौ वाकै महाधर्म है। सो यहाँ तौ भोजनका लोभके अर्थि याचना

करि अपमान कराया तातै पाप ही है, धर्म नाही। बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग नाही है, शरीरसुखका कारण है। तातै पूर्वोक्तप्रकार ताका निषेध जानना। अपना धर्मरूपउच्चपदकौ याचनाकरि नीचा करै है सो यामैं धर्मकी हीनता हो है। इत्यादि अनेकप्रकारकरि मुनिधर्मविषै याचना आदि नाही सम्भवै है। सो ऐसी असम्भवती क्रियाके धारक साधु गुरू कहै है। तातै गुरूका स्वरूप अन्यथा कहै है।

## धर्म का अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपै है। सो ही कहिए है—

तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तौ प्रधानता नाही। आप जैसै अरहंत देव साधु गुरु दया धर्मकौ निरूपै है, तिनका श्रद्धानकौ सम्यग्दर्शन कहै है। सो प्रथम तौ अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहै। बहुरि इतने ही श्रद्धानतै तत्त्वश्रद्धान भए विना सम्यक्त्व कैसै होय, तातै मिथ्या कहै है। बहुरि तत्त्वनिकाभी श्रद्धानकौ सम्यक्त्व कहै है तौ प्रयोजनलिए तत्त्वनिका श्रद्धान नाही कहै है। गुणस्थान मार्गणादिरूप जीवका, अणुस्कंधादिरूप अजीवका, पुण्यपापके स्थाननिका, अविरति आदि आश्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होनेके लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसै उनके शास्त्रविषै कह्या है, तैसै सीखि लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसै तत्त्वार्थश्रद्धानकरि

सम्यक्त्व भया मानै है। सो हम पूछै है, ग्रैवेयिक जानेवाला द्रव्यलिगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाही। जो हो है, तौ वाकौ मिथ्यादृष्टी कहेको कहो। अर न हो है, तौ वानै तौ जैनलिंग धर्मबुद्धि करि धरचा है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसै नाही भई? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है, सो वानै जीवादिके भेद कैसे न जाने। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमैं नाही, ताकै अरहतवचनकी कैसैं प्रतीति नाही भई। तातै वाकै ऐसा श्रद्धान तौ होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियाँ तिर्यचआदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाही अर तिनिकै बहुत कालपर्यंतसम्यक्त्व रहै है। तातै वाकै ऐसा श्रद्धान नाही हो है,तौ भी सम्यक्त्व भया। तातै सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाही। साचा स्वरूप है, सो आगै वर्णन करैगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताकौं सम्यग्ज्ञान कहै है। सो द्रव्यलिगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतै भी मिथ्याज्ञान कह्या, असयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताकौ सम्यग्ज्ञान कह्या। तातै यहु स्वरूप नाही, साचा स्वरूप आगै कहैगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने करिसम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तौ व्रतादिकास्वरूप अन्यथा कहै, सो किछू पूर्वै गुरुवर्णनविषै कह्या है। बहुरि द्रव्यलिगीकै महाव्रत होतै भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मतके अनुसारि गृहस्थादिक कै महाव्रत आदि विना अंगीकार किए भी सम्यक्चरित्र हो है, तातै यह स्वरूप नाही। साचास्वरूप अन्य है, सो आगै कहैगे।

यहाँ वे कहै है—द्रव्यलिंगीकै अतरगविषै पूर्वोक्त श्रद्धानादिक

न भए, सो बाह्य ही भए, तातै सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अतरग नाही अर बाह्य धारै, सो तौ कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय, तौ ग्रैवेयक कैसै जाय, नरकादि विषै जाय। बध तौ अतरग परिणामनितै हो है। सो अतरग जिनधर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाही। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतै देवका बध मानै अर याहीकौ मोक्षमार्ग मानै, सो बंध-मार्ग मोक्षमार्गकौ एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहारधर्म-विषै अनेक विपरीत निरूपै है। निदककौ मारनेमै पाप नाही,ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निदक तीर्थकरादिकके हीतै भी भए, तिनकौ इन्द्रा-दिक मारे नाही। सो पाप न होता,तौ इन्द्रादिक क्यो न मारे। बहुरि प्रतिमाकै आभरणादि बनावै है. सो प्रतिबिम्ब तौ वीतरागभाव बधावनेकौं कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाए, अन्यमत की मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ ताई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करै है। या प्रकार श्वेताम्बरमत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शनका अन्यथा निरूपणतै मिथ्यादर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातै याका श्रद्धानादि न करना।

## ढूंढक मत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषै ही ढूंढिया प्रगट भए है, ते आपकौं सांचे धर्मात्मा मानै है, सो भ्रम है। काहेतै सो कहिए है—

केई तौ भेष धारि साधु कहावै है, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदिका साधन नाही भासै है। बहुरि मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग करने की प्रतिज्ञा

करै, पीछै पालै नाही। बालककौ वा भोलाकौ वा शूद्रादिककौ ही दीक्षा दे। सो ऐसै त्याग करै अर त्याग करतै ही किछू विचार न करै, जो कहा त्याग करू हूँ। पीछै पालै भी नाही अर ताकौ सर्व साधु मानै। बहुरि यह कहै—पीछै धर्म्म बुद्धि हो जाय, तब तौ याका भला हो है। सो पहलेही दीक्षा देनेवालेनै प्रतिज्ञा भग होती जानि प्रतिज्ञाभंग कराई, बहुरि यानै प्रतिज्ञा अगीकारकरि भग करी, सो यहु पाप कौनको लाग्या। पीछै धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा। बहुरि जो साधुका धर्म अगीकारकरि यथार्थ न पालै, ताकौ साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए, तौ जे साधु मुनि नाम धरावै है अर भ्रष्ट है, तिन सबनिकौ साधु मानौ। न मानिए, तौ इनकै साधुपना न रह्या। तुम जैसे आचरणते साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ बिरलाकै पाईए है। सबनिकौ साधु काहेकौ मानो हो।

यहाँ कोऊ कहै—हम तौ जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकौ साधु मानैंगे औरकौ न मानैंगे। ताको पूछिए है—

एक सघ विषै बहुत भेषी है। तहाँ जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो यह औरनिकौ साधु मानै है कि न मानै है। जो मानै है, तौ तुमतै भी अश्रद्धानी भया, ताकौ पूज्य कैसै मानो हो। अर न मानै है, तो उनसेती साधुका व्यवहार काहेकौ वर्त्तै है। बहुरि आप तो उनकौ साधु न मानै अर अपने संघविषै राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकौ अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकौ करै। बहुरि तुम जाकौ साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिकौ भी ऐसा ही उपदेश

करोगे, इनकौं साधु मति मानौ, ऐसें धर्म्मपद्धतिविषै विरुद्ध होय। अर जाकौं तुम साधु मानो हो तिसतैं भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातैं वह वाकौं साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो. वह भी यथार्थ मुनिधर्म्म नाही पालै है।

कोऊ कहै—अन्य भेषधारीनितैं तौ घने अच्छे है तातैं हम मानै है। सो अन्यमतीनिविषै तौ नानाप्रकार भेष सम्भवै, जातैं तहाँ रागभावका निषेध नाही। इस जैनमतविषै तौ जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु सज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै—शील संयमादि पालै है, तपश्चरणादि करै है, सो जेता करै तितना ही भला है।

ताका समाधान— यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला है। परन्तु प्रतिज्ञा तौ बडे धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तौ तहाँ प्रतिज्ञाभगतैं महापाप हो है। जैसैं कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तौ वाकै बहुतबार भोजनका सयम होतैं भी प्रतिज्ञाभगतैं पापी कहिए। तैसैं मुनिधर्मकी प्रतिज्ञा करि कोई किंचित् धर्म्म न पालै, तौ वाकौं शीलसयमादि होतैं भी पापी ही कहिए। अर जैसैं एकतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै, तौ धर्मात्मा ही है तैसें अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करै, तौ धर्मात्मा ही है। यहाँ तौ ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतैं पापीपना सम्भवै है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करतैं तौ पापीपना होता नाही। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहाँ कोऊ कहै—पचमकालका अन्तपर्यन्त चतुर्विधि सघका सद्भाव

कह्या है। इनिकौं साधु न मानिए, तौ किसकौ मानिए ?

ताका उत्तर—जैसै इस कालविषै हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषै हस नाही दीसै है, तौ औरनिकौ तौ हस माने जाते नाही, हसकासा लक्षणमिले ही हस माने जाय। तैसै इस कालविषै साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविष साधु न दीसै है, तौ औरनिकौ तो साधु माने जाते नाही, साधु लक्षणमिले ही साधु माने जाय। बहुरि इनका भी प्रचार थौरे ही क्षेत्रविषै दीसै है, तहाँतै परै क्षेत्रविषै साधुका सद्भाव कैसै मानै ? जो लक्षण मिले मानै, तौ यहाँ भी ऐसै मानौ। अर विना लक्षण मिले ही मानै, तौ तहाँ अन्य कुलिगी है तिनिहीकौ साधु मानौ। ऐसै विपरीति होय, तातै बनै नाही। कोऊ कहै—इस पंचमकालमै ऐसै भी साधुपद हो है, तौ ऐसा सिद्धातका वचन बताओ। विना ही सिद्धात तुम मानो हो, तौ पापी होवोगे। ऐसै अनेक युक्तिकरि इनिकै साधुपना बनै नाही है। अर साधुपना विना साधु मानि गुरु माने मिथ्यादर्शन हो है। जातै भले साधुकौ ही गुरु मानै ही सम्यग्दर्शन हो है।

## प्रतिज्ञाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता

बहुरि श्रावकका धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावै है। त्रसकी हिसा स्थूल मृषादिक होतै भी जाका किछू प्रयोजन नाही, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकौ देशव्रती भया कहै। सो वह त्रसघातादिक जामै होय ऐसा कार्य करै। सो देशव्रत गुणस्थानविषै तौ ग्यारह अविरति कहे है.तहाँ त्रसघात कैसै सम्भवै ? बहुरि ग्यारह प्रतिमा श्रावकके भेद है, तिन विषै दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तौ कोई होता नाही

अर साधु होय। पूछे, तब कहै—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाही। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम-ऐसा विरुद्ध भाषै है। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारककै थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावै, सों सम्भवता नाही। बहुरि कहै, ए प्रतिमा तौ थौरे ही काल पालि छोड़ि दीजिए है। सो ए कार्य उत्तम है, तौ धर्म्मबुद्धि ऊँची क्रियाकौ काहेकौ छोरै। अर नीचे कार्य है, तौ काहेकौ अगीकार करै। यहु सम्भवै ही नाही। बहुरि कुदेव बदना, कुगुरुकौ नमस्कारादिक करतै भी श्रावकपना बतावै। कहै, धर्म्मबुद्धि-करि तौ नाही बदै है, लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धांतविषै तौ तिनिकी प्रशसा स्तवनकौ भी सम्यक्त्वका अतिचार कहै अर गृहस्थनिका भला मानवनैके अर्थि बदना करतै भी किछू न कहै। बहुरि कहोगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि बदै है; तौ इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करतै भी पाप मति कहौ, अतरंगविषै पाप जान्या चाहिए। ऐसै सर्व आचारनविषै विरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापापकी प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तौ मुख्यता नाहीं अर पवनकायकी हिसा ठहराय उघारे मुख बोलना छुडावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभंग उपदेश है। बहुरि धर्म्मके अग अनेक है, तिनविषै एक परजीवकी दया ताकौ मुख्य कहै है, ताका भी विवेक नाही। जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना. हिसादिकरूप व्यापार न करना इत्यादि याके अगनिकी तौ मुख्यता नाही।

## मुँहपत्तिका निषेध

बहुरि पाटीका बांधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि

की मुख्यता करै हैं। सो मैलयुक्त पाटीकै थूकका सम्बन्धतै जीव उपजै तिनका तौ यत्न नाही अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावै। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तौ यत्न करते ही नाही। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तौ सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहै—भूलि जाइए। तो इतनी भी याद न रहै, तौ अन्य धर्मसाधन कैसे होगा? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो सम्भवता शौच तौ मुनि भी करै है। तातै गृहस्थकौ अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसगमादिकरि शौच किए विना सामायिकादि क्रिया करनेतै अविनय, विक्षिप्तताआदि करि पाप उपजै। ऐसै जिनकी मुख्यता करै, तिनका भी ठिकाना नाही अर केई दयाके अग योग्य पालै है, हरितकायका त्याग आदि करै, जल थोरा नाखै, इनका हम निषेध करते नाही।

## मूर्तिपूजा निषेधका निराकरण

बहुरि इस अहिंसाका एकात पकडि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै है। सो उनहीके शास्त्रनिविषै प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताकौ आग्रहकरि लोपै है। भगवतीसूत्रविषैं ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहाँ मेरुगिरि आदिविषै जाय 'तत्थ चेययाइं वंदई" ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु- तहाँ चैत्यनिकौ बदै है। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै है—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै है, सो अन्य अर्थ है, प्रतिमाका अर्थ नाही। याकौ पूछिए है—मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषै जाय जाय

तहाँ चैत्यवदना करी, सो वहाँ ज्ञानादिककी वंदना करने का अर्थ कैसे सम्भवै ? ज्ञानादिक की वदना तौ सर्वत्र सम्भवै । जो वंदने योग्य चैत्य वहाँ ही सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवै, ताकौ तहाँ बदनाकरनेका विशेष सम्भवै, सो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम सभवै है। याकौ हठकरि काहेकौ लोपिए।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषै जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करै है, ताका व्याख्यान उनकै जहाँ तहाँ पाईए है। बहुरि लोकविषै जहाँ तहाँ अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। सो या रचना अनादि है, यह भोग कुतूहलादिकके अर्थ तौ है नाही। अर इन्द्रादिकनिके स्थाननविषै नि.प्रयोजन रचना सम्भवै नाही। सो इन्द्रादिक तिनकौ देखि कहा करै है। कै तौ अपने मदिरनिविषै नि·प्रयोजन रचना देखि, उसतैं उदासीन होते होगे, तहाँ दु ख होता होगा, सो सम्भवै नाही। कै आछी रचना देखि विषय पोषते होगे, सो अर्हत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै यह भी सम्भवै नाही। तातै तहाँ तिनकी भक्ति-आदिक ही करै है.यहु ही सम्भवै है। सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहाँ प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याकौ लोपनेके अर्थि कहै है, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्तव्यका तौ फल होय ही होय। सो तहाँ धर्म्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म्म हो है, तौ अन्यत्र पाप होता था, यहाँ धर्म्म भया। याकौ औरनिके सदृश कैसे कहिए ? यहु तौ योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तौ तहाँ **'णमोत्थुणं'** का पाठ पढ़या, सो पापके ठिकानै ऐसा पाठ काहेकौ पढ्या। बहुरि एक विचार यहाँ यहु आया, जो

**'णमोत्थणं''** के पाठविषै तो अरहतकी भक्ति है। सो प्रतिमाजीके आगै जाय यहु पाठ पढ्या, तातै प्रतिमाजीके आगै जो अरहत भक्तिकी क्रिया है, सो करनी युक्त भई। बहुरि जो वे ऐसा कहै—देवनिकै ऐसा कार्य है, मनुष्यनिकै नाही, जातै मनुष्यनिकै प्रतिमाआदि बनावनेविषै हिंसा हो है। तौ उनहीके शास्त्रविषै ऐसा कथन है, द्रोपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसे सूर्याभदेव किया, तैसै करती भई। तातै मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है। यहाँ एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तौ द्रोपदी कैसैं प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति थी, तौ बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे। जो धर्मात्मा थे तौ गृहस्थनिकौ ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे तौ तहाँ भोगादिकका प्रयोजन तौ था नाही, काहेकौ बनाया। बहुरि द्रोपदी तहा **'णमोत्थुणं'** का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया, तौ महापापिणी भई। धर्मविषै कुतूहल कहा। अर धर्म किया, तौ औरनिकौ भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है।। बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै है—जैसै इन्द्रकी स्थापनातै इन्द्रका कार्य सिद्ध नाही, तैसै अरहत प्रतिमा करि कार्य सिद्ध नाही। सो अरहत आप काहूकौ भक्त मानि भला करते होय, तौ ऐसे भी माने। सो तौ वे भी वीतराग है। यहु जीव भक्ति रूप अपने भावनितै शुभफल पावै है। जैसै स्त्रीका आकार रूप काष्ठ पाषाणकीमूर्ति देखि, तहाँ विकाररूप होय अनुरागकरै, तौ ताकै पाप बध होय। तैसै अरहतका आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति देखि धर्म-

बुद्धितै तहा अनुराग करै, तौ शुभकी प्राप्ति कैसै न होइ । तहा वह कहै है, विना प्रतिमा ही हम अरहतविषै अनुरागकरि शुभ उपजावैगे । तौ इनिकौ कहिए है—आकार देखै जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किए होय नाही । याहीतै लोकविषै भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावै है । तातै प्रतिमा आलबनकरि भक्ति विशेष होनेतै विशेष शुभकी प्राप्ति हो है ।

बहुरि कोऊ कहै—प्रतिमाकौ देखो,परतु पूजनादिक करनेका कहा प्रयोजन है ?

ताका उत्तर—जैसे कोऊ किसी जीवका आकार बनाय, रुद्रभावनितै घात करै, तौ वाकै उस जीवकी हिसा किए का सा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेषबुद्धितै वाकी बुरी अवस्था करै, तौ जाका आकार बनाया, वाकी बुरी अवस्था किए का सा फल निपजै । तैसै अरहतका आकार बनाय राग बुद्धितै पूजनादि करै,तौ अरहतके पूजनादि किए का सा शुभ निपजै वा तैसा ही फल होय । अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतै आकार वनाय पूजनादि करिए है । इस धर्मानुरागतै महापुण्य उपजै है ।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै है—जो वाकै जिस वस्तुका त्याग होय, ताकै आगै तिस वस्तुका धरना हास्य करना है । तातै बदनादिकरि अरहंतका पूजन युक्त नाही ।

ताका समाधान—मुनिपद लेते ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था, केवलज्ञान भए पीछै तीर्थंकरदेवकै समवशरणादि वनाए, छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी । हास्य करी, तौ इन्द्र

महापापी भया,सो बने नाही। भक्ति करी,तौ पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थकै आगै त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातै वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाकै आगै अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाही। उनकै विक्षिप्तता होती नाही। धर्मानुरागतै जीवका भला होय।

बहुरि वे कहै है—प्रतिमा बनावने विषैं, चैत्यालयादि करावनेविषैं, पूजनादि करावनेविषै हिसा होय अर धर्म अहिसा है। तातैं हिसाकरि धर्म माननेतै महापाप हो है, तातै हम इन कार्यनिकौं निषेधै हैं।

ताका उत्तर उनही के शास्त्रविषै ऐसा वचन है—

**सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।**

**उभय पि जाणए सुच्चा जं सेय तं समायर॥ १॥**

यहाँ कल्याण पाप उभय ए तीन, शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिले होय, ऐसा कार्यका भी होना ठहरचा। तहा पूछिए है—केवल धर्म्मतै तौ उभय घाटि है ही, अर केवल पापतै उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तौ यामै तौ किछू कल्याणका अश मिल्या, पापतै बुरा कैसे कहिए। भला है, तो केवल पाप छोड ऐसा कार्य करना ठहरचा। बहुरि युक्तिकरि भी ऐसै ही सम्भवै है। कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाही करावै है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्तै है। ताको तौ छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावै, तिसतै तौ चैत्या-

लयादि करावनेवाला हीन नाहीं। हिसा तौ भई, परन्तु ताकै लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई; याकै लोभ छूटया, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतै पूजनादि कार्य करना हीन नाही। वहाँ तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसै जे त्यागी न होंय, अपने धनकौ पापविषैं खरचते होंय तिनकों चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषैं उपयोगकौ नाहीं लगाय सकैं, तिनकौं पूजनादि करना निषेध नाही।

बहुरि तुम कहौगे, निरवद्य मामायिक कार्य ही क्यो न करै, धर्म विषै काल गमावना तहां ऐसे कार्य काहेकौ करै ?

ताका उत्तर—जो शरीर करि पाप छोरै ही निरवद्यपना होय, तौ ऐसैही करै सो तौ है नाही। परन्तु परिणामनितै पाप छूटै निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषै जाका परिणाम लागै नाही सो पूजनादिकर तहाँ अपना उपयोग लगावै है। तहाँ नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जायहै। जो तहाॅ उपयोग को न लगावै, तौ पापकार्यनिविषै उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातैं तहाॅ प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हो–धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तौ महा पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है। सो यह प्रथम तौ सिद्धान्तका वचन नाही अर युक्तितै भी मिलै नाही। जातैं ऐसे मानै इन्द्र जन्मकल्याणकविषै बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरणविषैं देव पुष्प वृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै है, सो

ये महापापी होय । जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तौ क्रियाका फल तौ भए बिना रहता नाही । जो पाप है,तौ इन्द्रादिक तौ सम्यग्दृष्टी है, ऐसा कार्य काहेकौ करै अर धर्म्म है तौ काहेकौ निषेध करोहो । बहुरि भला तुमहीकौ पूछै है—तीर्थंकर वंदनाकौ राजादिक गए वा साधवदनाकौ दूरि भी जाईए है,सिद्धात सुनने आदि कार्यनिकौ गमनादि करिये है, तहा मार्गविषै हिंसा भई । बहुरि साधर्म्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका सस्कार करिये है, साधु होतै उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है । सो यहाँ भी हिसा हो है । सो ये कार्य्य तो धर्म्महीके अर्थ है, अन्य कोई प्रयोजन नाही । जो यहाँ महापाप उपजै है, तौ पूर्वै ऐसे कार्य क्यो किये तिनका निषेध करो । अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करै है, तिनका त्याग करो । बहुरि जो धर्म्म उपजै है तौ धर्मके अर्थि हिसाविषै महापाप बताय काहेकौ भ्रमावो हो । तातै ऐसै मानना युक्त है—जैसे थोरा धन ठिगाए बहुत धनकालाभ होय तौ वह कार्य करना,तैसै थोरा हिसादिक पाप भये बहुत धर्म्म निपजै तौ वह कार्य्य करना । जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै तौ मूर्ख है । तैसे थोरी हिंसाका भयतै बडा धर्म्म छोरै, तौ पापी ही होय । बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तौ वह मूर्ख ही है । तैसै बहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अरभक्ति आदि धर्मविषैथोरा प्रवर्त्तै वा न प्रवर्त्तै तौ वह पापी ही है । बहुरि जैसै बिना ठिगाए ही धनका लाभ होतै ठिगावै, तौ मूर्ख है । तैसै निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतै सावद्य धर्म्मविषै उपयोग लगावना युक्त नाही । ऐसैं अनेक परि-

णामनिकरि अवस्था देखि भला होय सो करना। एकांतपक्ष कार्यकारी नाही। बहुरि अहिसा ही केवल धर्म्मका अंग नाही है। रागादिकनिका घटना धर्म्मका अंग मुख्य है । तातै जैसे परिणामनिविषै रागादिक घटै सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिकौ अणुव्रतादिकका साधन भए विना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावै है। सो सामायिक तौ रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठ मात्र पढे वा उठना बैठना किए ही तौ होइ नाही। बहुरि कहोगे, अन्य कार्य करता, तातैं तौ भला है। सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठ विषै प्रतिज्ञा तौ ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यकौ न करूँगा, न कराऊँगा अर मनविषै तो विकल्प हुआ ही करै । अर वचनकायविषै भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहाँ प्रतिज्ञाभग होय । सो प्रतिज्ञाभग करनेतै न करनी भली। जातै प्रतिज्ञाभंगका महापाप है।

बहुरि हम पूछै है—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषापाठ पढै है, ताका अर्थ जानि तिसविषै उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकौ तो नीके पालै नाही, अर प्राकृतादिकका पाठ पढ़ै, ताके अर्थका आपकौ ज्ञान नाही, बिना अर्थ जाने तहाँ उपयोग रहै नाही, तब उपयोग अन्यत्र भटकै । ऐसै इन दोऊनिविषै विशेष धर्मात्मा कौन ? जो पहलेकौ कहोगे, तौ ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए । दूसरेकौ कहोगे, तौ प्रतिज्ञा भगका पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहरचा। पाठादिकरनेके अनुसारि ठहरचा । तातै अपना उपयोग जैसै निर्मल होय सो कार्य करना । सधै सो प्रतिज्ञा

करनी। जाका अर्थ जानिए,सो पाठ पढना। पद्धतिकरि नाम करावनेे मै नफा नाही। बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करनेका है। सो 'मिच्छामि दुक्कडं' इतना कहे ही तौ दुष्कृत मिथ्या न होय, कियादु.कृत मिथ्या होनेयोग्य परिणाम भए दु.कृत मिथ्या होय। तातै पाठ ही कार्यकारी नाही। बहुरि पडिकमणोका पाठविषै ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिकविषै जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय। सो व्रत धारै विना ही तिनका पडिकमणा करना कैसै सम्भवै ? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषै लाग्या दोषका निराकरण करै, तौ असम्भवपना होय। तातै यह पाठ पढना कौन प्रकार बनै ? बहुरि पोसहविषै भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाही पालै है। तातै पूर्वोक्त ही दोष है। बहुरि पोसह नाम तौ पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछै पोसहधारी होय। सो जेतै काल बनै तेतेकाल साधनका तौ दोष नाही। परन्तु पोसहका नाम करिए, सो युक्त नाही। सम्पूर्ण पर्वविषै निरवद्य रहै ही पोसह होय। जो थोरा भी कालतै पोसह नाम होय,तौ सामायिककौ भी पोसह कहो, नाही तौ शास्त्रविषै प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है। सा बडा नाम धराय लोगनिकौं भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासैहै। बहुरि आखडी लेनेका पाठ तौ और पढै, अंगीकार और करै। सो पाठविषै तौ "मेरे त्याग है" ऐसा वचन है,-तातै जो त्याग करै सो ही पाठ पढै, यह चाहिए। जो पाठ न आवै,तौ भाषाहीतै कहै। परन्तु पद्धतिके अर्थ यह रीति है। बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करने करानेकी तौ मुख्यता अर यथाविधि पालनेकी शिथिलता वा भावनिर्मल होनेका विवेक

नाहीं । आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादि करै, तहाँ धर्म्म मानै । सो फल तौ परिणामनितैं हो है । इत्यादि अनेक कल्पित बातैं करै है, सो जैनधर्म्मविषै सम्भवै नाही । ऐसे यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है । तातैं मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है । सांचा जिनधर्म्मका स्वरूप आगै कहै है । ताकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तना योग्य है । तहाँ प्रवर्त्तें तुम्हारा कल्याण होगा ।

**इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषैं अन्यमतनिरूपण पाँचवाँ अधिकार समाप्त भया ।।५।।**

ॐ नमः

# छठा अधिकार

## (कुदेव कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध)

### दोहा

**मिथ्या देवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव।**
**तज तिनकौं सांचे भजौ, यह हितहेतु उपाव ॥१॥**

अर्थ—अनादितै जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताकौ कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषै प्रवृत्ति होय। तातै इनका निरूपण कीजिए है।

### कुदेव सेवा का प्रतिषेध

तहाँ जे हितका कर्त्ता नाही अर तिनकौ भ्रमतै हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव हैं। तिनका सेवन तीनप्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कही तौ मोक्षका प्रयोजन है। कही परलोकका प्रयोजन है। कही इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तौ सिद्ध होय नाही। किछू विशेष हानि होय। तातै तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है—

अन्यमतविषै जिनके सेवनतै मुक्ति होनी कही है, तिनकौ केई जीव मोक्षके अर्थ सेवन करै हे, सो मोक्ष होय नाही। तिनका वर्णन पूर्वै अन्यमत अधिकारविष कह्या ही है, बहुरि अन्यमतविषै कहे देव, तिनकौ केई परलोकविष सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए सेवै है। सो ऐसी सिद्धि तौ पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो है।

सो आप तौ पाप उपजावै है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा। तौ तहां अन्याय ठहर्या। काहूकौ पापका फल दे,काहूकौ न दे,सो ऐसैं तौ है नाही। जैसा अपना परिणाम करेगा, तैसा ही फल पावेगा। काहू का बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाही। बहुरि तिन देवनिका सेवन करतै तिन देवनिका तौ नाम करै, अर अन्य जीवनिकी हिंसा करै वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषै, सो पाप परिणामनिका फल तौ लागे विना रहने का नाही। हिंसा विषय कषायनिकौ सर्व पाप कहै है। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानै है। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषै हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातै कुदेवनिका सेवनतै परलोकविषै भला न हो है।

## लौकिक सुखेच्छासे कुदेव-सेवा

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिक की प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिएं कुदेवनिका सेवन करै है। बहुरि हनुमानादिकौ पूजै है। बहुरि देवीनिकौ पूजै है। बहुरि गणगौर साभी आदि बनाय पूजै है। चौथि शीतला दिहाडी आदिकौ पूजै है। बहुरि अऊत पितर व्यंतरादिककौ पूजै है। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिको पूजै है। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिकौ पूजै है। बहुरि गऊ घोटकादि तिर्यंचनिकौ पूजै है। अग्नि जलादिककौ पूजै है। शस्त्रादिककौ पूजै है। बहुत कहा कहिए,रोडी इत्यादिकको भी पूजै है। सो ऐसैं कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टितै हो है। काहेते, प्रथम तो

जिनका सेवन करै सो केइ तो कल्पनामात्र ही देव है। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसैं होय। बहुरि केई व्यंतरादिक है, सो ए काहूका भला बुरा करनेकौ समर्थ नाही। जो वे ही समर्थ होय, तौ वे ही कर्त्ता ठहरै। सो तौ उनका किया किछू होता दीसता नाही। प्रसन्न होय धनादिक देय सकै नाही। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाही।

इहाँ कोऊ कहै—दुःख तौ देते देखिए है, मानेतैं दुःख देते रहि जाय है।

ताका उत्तर—याकै पापका उदय होय,तब ऐसी ही उनकै कुतूहल बुद्धि होय ताकरि वे चेष्टा करै, चेष्टा करतै यहु दुःखी होय। बहुरि वे कुतूहलतै किछू कहै, यहु कह्या न करै तब वे चेष्टा करनेतैं रहि जाय। बहुरि याकौ शिथिल जानि कुतूहल किया करै। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तौ किछू कर सकते नाही। सो भी देखिए है— कोऊ जीव उनकौ पूजै नाही वा उनकी निन्दा करै वा वे भी उसतै द्वेष करै परन्तु ताकौं दुःख देई सकै नाही। वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमकौ मानै नाही, सो उसतै किछु हमारा वश नाही। तातै व्यन्तरादिक किछू करनेकौ समर्थ नाही। याका पुण्य पापहीतै सुख-दुःख हो है। उनके माने पूजे उलटा रोग लागै है। किछू कार्यसिद्धि नाही। बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव है, तिनका भी कही अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यंतरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषै उनका सेवक था, पीछै मरि व्यन्त-रादि भया, तहा ही कोई निमित्ततै ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषै तिनिके सेवने की प्रवृत्ति करावने के अर्थि कोई चमत्कार दिखावै है।

जगत् भोला, किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषै लग जाय है। जैसें जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होता सुनिए वा देखिए है; सो जिनकृत नाही, जैनी व्यंतरादिकृत हो है। तैसै ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यंतरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना। बहुरि अन्यमतविषै भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहै है। तहा केई तौ कल्पित बातं कही है। केई उनके अनुचरी व्यंतरादिककरि किए कार्यनिकौं परमेश्वर के किए कहै है। जो परमेश्वर के किए होंय तौ परमेश्वर तौ त्रिकालज्ञ छै। सर्वप्रकार समर्थ छै। भक्तकौ दुःख काहेकौ होने दे। बहुरि अबहू देखिए है। म्लेच्छ आय भक्तनिकौ उपद्रव करै है, धर्मविध्वस करै है, मूर्तिको विघ्न करै है सो परमेश्वरकौ ऐसे कार्य का ज्ञान न होय तौ सर्वज्ञपनो रहै नाही। जाने पीछै सहाय न करै तौ भक्तवत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया। बहुरि साक्षी-भूत रहै है तौ आगै भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूंठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे—वैसी भक्ति नाही है। तो म्लेच्छनितै तौ भले है वा मूर्ति आदि तौ उनही की स्थापना थी, तिनिका विघ्न तौ न होने देना था। बहुरि म्लेच्छपापीनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाहीं। जो परमेश्वरका किया है, तौ निंदकनिकौ सुखी करै, भक्तनिकौं दुखदायक करै, तहाँ भक्तवत्सल-पना कैसे रह्या? अर परमेश्वर का किया न हो है, तौ परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया। तातै परमेश्वरकृत कार्य नाही। कोई अनुचरी व्यंतरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही निश्चय करना।

## व्यंतर बाधा

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि कोई व्यतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षकौ बताय दे,कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप बचन कहै वा औरनिकौ अन्यथा परिणमावै, औरनिकौ दु खदे, इत्यादि विचित्रता कैसे है ?

ताका उत्तर—व्यतरनिविषै प्रभुत्व की अधिकता हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषै वासादिक बताय हीनता दिखावै है सो तौ कुतूहलतै वचन कहै है। व्यतर बालकवत् कुतूहल किया करे। सो जैसे बालक कुतूहलकरि आपको हीन दिखावै, चिड़ावै, गाली सुनै, बार पाडै*, पीछे हसने लगि जाय, तैसै ही व्यतर चेष्टा करै है। जो कुस्थानहीके वासी होय, तौ उत्तम स्थानविषै आवै है तहाॅ कौनके ल्याए आवै है। आपहीतै आवै है, तौ अपनी शक्ति होतै कुस्थानविषै काहेको रहै ? तातै इनिका ठिकाना तौ जहाँ उपजै है, तहा इस पृथ्वीके नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिये चाहै सो कहै है। बहुरि जो इनकौ पीड़ा होती होय तौ रोवते-रोवते हँसने कैसै लगि जाॅय है। इतना है, मन्त्रादिककी अचित्यशक्ति है सो कोई साचा मन्त्रकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तौ वाकै किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दु ख उपजै वा कोई प्रबल वाकौं मनै करै, तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि न हो है। मन्त्र वाला जलाया कहै, बहुरि बह प्रगट होय जाय जातै वैक्रियिक शरीरका जलावना

---

* ऊँचे स्वरसे रोवै

आदि सम्भवै नाही। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोकक्षेत्र-काल जाननेका है, काहूकै बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तौ अप्रत्यक्षकौ पूछै ताका उत्तर दे, तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तौ अन्य महत्ज्ञानीको पूछि आय करि जवाब दे। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तौ पूछै ताका उत्तर न दे, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिककै उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछै ताका स्मरण मात्र रहै है तातै तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तौ करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातै कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै, तौ अवधि तौ थोरा, विना जाने कैसै कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकै,वा इच्छा न होय,तहाँ मान कुतूहलादिकतै उत्तर न दे वा झूठ बोलै,ऐसा जानना। बहुरि देवनिमै ऐसी शक्ति है,जो अपने वा अन्यके शरीरकौ वा पुद्गल स्कधकौ जैसी इच्छा होय तैसे परिणमावै। तातै नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नानाचरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवके शरीर कौ रोगादियुक्त करै। यहाँ इतना है—अपने शरीरकौ वा अन्य पुद्गल स्कधनिकौ तौ जेती शक्ति होय तितने ही परिणमाय सकै, तातै सर्व कार्य करने की शक्ति नाही। बहुरि अन्य जीवके शरीरादिककौ वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकै। वाकै पुण्य उदय होय, तौ आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै। अर पाप उदय होय, तौ वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसै व्यतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—इतनी जिनकी शक्ति पाईए,तिनके मानने पूजने-मे दोष कहा ?

ताका उत्तर—आपकै पाप उदय होतैं सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतें दु ख न देय सकै, बहुरि तिनके पूजनेतैं कोई पुण्यबध होय नाही, रागादिककी वृद्धि होतैं पाप ही हो है। तातैं तिनका मानना पूजना कार्यकारी नाही—बुरा करने वाला है। बहुरि व्यतरादिक मनावै है, पुजावै है, सो कुतूहल करैं है, किछू विशेष प्रयोजन नाही राखै है। जो उनकौ मानै पूजै,तिस सेती कोतूहल किया करै। जो न मानै पूजै, तासो किछू न कहै। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तौ न मानने पूजने-वालेकौ घना दु खी करै। सो तौ जिनकै न मानने पूजने का अवगाढ है,तासो किछू भी कहते दीसते नाही। बहुरि प्रयोजन तौ क्षुधादिककी पीडा होय तौ होय, सो उनकै व्यक्त होय नाही। जो होय, तौ उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताको भी ग्रहण क्यो नकरै, वा औरनिके जिमावने आदि करनेहीकौ काहेकौ कहै। तातैं उनकै कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपकौ उनके कुतूहलका ठिकाना भए दु·ख होय, हीनता होय तातैं उनकौ मानना पूजना योग्य नाही।

बहुरि कोऊ पूछै कि व्यतर ऐसैं कहै है—गया आदि विषै पिड-प्रदान करो तौ हमारी गति होय, हम बहुरि न आवै, सो कहा है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका सस्कार तौ रहै ही है। व्यतरनिकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतैं विशेष संस्कार है। तातैं पूर्व-भवविषै ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषै पिडप्रदानादि किए गति हो है तातैं ऐसे कार्य करनेको कहै है। जो मुसलमान आदि मरि व्यतर हो है, ते तौ ऐसैं कहै नाही, वे तौ अपने सस्कार रूप ही वचन कहै। तातैं सर्व व्यतरनिकी गति तैसैं ही होती होय तौ सर्व ही समान

प्रार्थना करै सो है नाही, ऐसैं जानना। ऐसै व्यंतरादिकनिका स्व-रूप जानना।

## सूर्य चन्द्रमादि गृह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी है, तिनकौ पूजै है सो भी भ्रम है। सूर्यादिककौ परमेश्वरका अंश मानि पूजै है। सो वाकै तौ एक प्रकाशका ही आधिक्य भासै है। सो प्रकाशवान् अन्यरत्ना-दिकभी हो है। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाही, जातै वाकौ परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिककौ धनादिककी प्राप्तिके अर्थ पूजै है। सो उसके पूजनेतै ही धन होता होय, तौ सर्व दरिद्री इस कार्य कौ करै। तातै ए मिथ्याभाव है। बहुरि ज्योतिषके विचारतै खोटा ग्रहादिक आए, तिनिका पूजनादि करै है, ताके अर्थ दानादिक दे हैं। सो जैसै हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करै है, पुरुषकै दाहिणे बावैं आए सुख दुःख होनेका आगामी ज्ञानको कारण हो है, किछू सुख दुःख देनेकौ समर्थ नाही। तैसें ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करै है। प्राणीकैं यथासम्भव योगकौ प्राप्त होतै सुख दुःख होने का आगामी ज्ञानकौ कारण हो है, किछू सुख दुःख देनेकौ सामर्थ नाही। कोई तौ उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय तातै तिनका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहां कोऊ कहै—देना तौ पुण्य है, सो भला ही है।

ताका उत्तर—धर्मके अर्थिदेना पुण्य है। यहु तौ दुःखका भयकरि वा सुखका लोभकरि दे हैं, तातैं पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकारकरि ज्योतिषी देवनिकौ पूजैं हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाडी आदि है, ते केई तौ व्यतरी वा ज्योतिषिणी है, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करै है। कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करै है। ऐसैं व्यतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाडी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतकौ अनुसरै है, तिनके पूजनादि करने मै तौ दोष नाही।

ताका उत्तर—जिनमतविषै सयम धारैं पूज्यपनौ हो है। सो देवनिकै सयम होता ही नाही। बहुरि इनकौ सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमै सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाही। जो सम्यक्त्वकरिही पूजिए तौ सर्वार्थसिद्धिके देव, लौकातिकदेव तिनकौही क्यो न पूजिए। बहुरि कहोगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रकै है वा सम्यग्दृष्टी भी है। वाकौ छोरि इनकौ काहेकौ पूजिए। बहुरि जो कहौगे, जैसे राजाकै प्रतीहारादिक है,तैसै तीर्थकरकै क्षेत्रपालादिक है। सो समवसरणादिविषै इनिका अधिकार नाही। यह झूठी मानि है। बहुरि जैसै प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यो मिलिए,तैसै ये तीर्थंकरकौ मिलावते नाही। वहाँ तौ जाकै भक्तिहोय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करौ। किछू किसीके आधीन नाही। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिए रौद्रस्वरूप जिनिका, तिनकी गाय गाय भक्ति करै। सो जिनमतविषै भी रौद्ररूप पूज्य भया, तौ यहुभी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषै ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो

है। ऐसै क्षेत्रपालादिककौ भी पूजना योग्य नाही।

## गौ सर्पादिककी पूजाका निराकरण

बहुरि गऊ सर्प्पादि तिर्यंच है, ते प्रत्यक्ष ही आपतै हीन भासै है। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए है। इनकी निद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर है, ते तिर्यंचनिहूतै अत्यन्त हीन अवस्थाकौ प्राप्त देखिये है। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन है,सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष देखिए है, पूज्यपनैका उपचार भी सम्भवै नाही। तातै इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनकौ पूजै प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि भी किछू फल प्राप्ति नाही भासै है तातै इनकौ पूजना योग्य नाही। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोकविषै तौ आपतै नीचेकौ नमतै आपको निद्य मानै अर मोहित होय रोड़ीपर्यंतकौ पूजता भी निद्यपनो न मानै। बहुरि लोकविषै तौ जातै प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीकी सेवा करै अर मोहित होय कुदेवनितै मेरा प्रयोजन कैसै सिद्ध होगा; ऐसा विना विचारै ही कुदेवनिका सेवन करै। बहुरि कुदेवनिका सेवन करते हजारो विघ्न होय ताकौ तौ गिनै नाही अर कोई पुण्यके उदयतै इष्ट कार्य होय जाय ताकौ कहै, इसके सेवनतै यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवनिका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होय, तिनकौ तौ गिनै नाही अर कोई अनिष्ट होय तौ कहै, याका सेवन न किया तातै अनिष्ट भया। इतना नाही विचारै है, जो इनिही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय, तौ जे पूजै तिनकै इष्ट होइ, न तिनकै पजै अनिष्ट होय। सो तौ दीखता नाही। जैसै काहूकै शीतलाको

बहुत मानै भी पुत्रादि मरते देखिए है। काहूकै बिना माने भी जीवते देखिए है। तातै शीतलाका मानना किछू कार्यकारी नाही। ऐसै ही सर्व कुदेवनिका मानना किछू कार्यकारी नाही।

इहाँ कोऊ कहै—कार्यकारी नाही, तौ मति होहु, किछू तिनके माननेतै बिगार भी तौ होता नाही।

ताका उत्तर—जो बिगार न होय, तौ हम काहेको निषेध करै। परन्तु एक तौ मिथ्यात्वादि दृढ होनेतै मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बडा बिगार है। एक पापबंध होनेतै आगामी दुःख पाईए है, यहु बिगार है।

यहाँ पूछै कि मिथ्यात्वादिभाव तौ अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय है अर पापबंध खोटे कार्य किए होय है, सो तिनके माननेतै मिथ्यात्वादिक वा पापबंध कैसै होय ?

ताका उत्तर—प्रथम तौ परद्रव्यनिकौ इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है। जातै कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाही। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाईए है, तौ ताका कारण पुण्य-पाप है। तातै जैसै पुण्यबंध होय, पापबंध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोगका उपाय करै। सो कुदेवके माननेतै इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाही। केवल वृद्धिकौ प्राप्त हो है। बहुरि पुण्य बंध भी होता नाही, पाप बंध हो है। बहुरि कुदेव काहूकौं धनादिक देते खोसते देखे नाही। तातै ए बाह्य कारण भी नाही। इनका मानना किस अर्थ कीजिए है। जब अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञानका अंश भी

न होय अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तब जे कारण नाही तिनकौ भी इष्ट अनिष्टका कारण मानै। तब कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा भी तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

## कुगुरु सेवाका निषेध

आगै कुगुरुके श्रद्धानादिककौ निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तौ परिणमै अर मानादिकतैं आपकौ धर्म्मात्मा मनावैं, धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावै, अथवा किंचित् धर्म्मका कोई अंग धारि बडे धर्म्मात्मा कहावै, बडे धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावै; ऐसै धर्म्मका आश्रयकरि आपकौ बड़ा मनावै, ते सर्व कुगुरु जानने। जातै धर्म्मपद्धतिविषै तौ विषयकषायादि छूटै जैसा धर्म्मकौ धारै तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

## कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहाँ केई तौ कुलकरि आपकौं गुरु मानै है। तिनविषैं केई ब्राह्मणादिक तौ कहै हैं, हमारा कुल ही ऊँचा है तातै हम सर्वके गुरु है। सो उस कुलकी उच्चता तौ धर्म्मसाधनतै है। जो उच्च कुलविषै उपजि हीन आचरन करै, तौ वाकौं उच्च कैसै मानिए। जो कुलविषै उपजनेहीतै उच्चपना रहै, तौ मांसभक्षणादि किए भी वाकौं उच्च ही मानौं। सो बनै नाही। भारतविषै भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे है। तहाँ "जो ब्राह्मण होय चाँडालकार्य करै, तःकों चांडाल ब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतै उच्चपना होय तौ ऐसी हीनसंज्ञा काहेकौं दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषै ऐसा भी कहै—वेदव्यासादिक मछली आदिकतै उपजे। तहाँ कुलका अनुक्रम कैसै रह्या? बहुरि मूलउत्पत्ति तौ ब्रह्मातै कहै हैं। तातै सर्वका एक कुल है, भिन्नकुल कैसै रह्या? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीकै नीचकुलके पुरुषतै वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतै संगम होतै संतति होती देखिए है। तहाँ कुलका प्रमाण कैसै रह्या? जो कदाचित् कहोगे, ऐसै है, तौ उच्च नीचकुलका विभाग काहेकौ मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषै तौ असत्य भी प्रवृत्ति संभवै, धर्म्मकार्य्यविषै तौ असत्यता संभवै नाही। तातै धर्म्मपद्धतिविषै कुलअपेक्षा महतपना नाही संभवै है। धर्म्मसाधनहीतै महतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषै महतता है, सो धर्म्म प्रवृत्तितै है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति कौ छोडि हिंसादिक पापविषै प्रवर्त्तै महतपना कैसै रहै? बहुरि केई कहैं—जो हमारे बडे भक्त भए है, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनकी संततिविषै है, तातै हम गुरु है। सो उन बडेनिके बड़े तौ ऐसे थे नाही। तिनकी संततिविषै उत्तमकार्य किये उत्तम मानो हो तौ उत्तमपुरषकी संततिविषै जो उत्तमकार्य न करै, ताकौ उत्तम काहेकौ मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषै वा लोकविषैं यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदकौ पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदकौ पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदकौं पावै, पुत्र शुभ कार्यकरि उच्चपदकौ पावै। तातै बडेनकी अपेक्षा महत मानना योग्य नाही। ऐसै कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनौ मानै है। कोई पूर्वै महंत पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहा तिन विषैं

तिस महतपुरुषकेसे गुण न होत भी गुरुपनौ मानिए, जो ऐसें ही होय तौ उस पाटविषै कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करेगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिकौं प्राप्त होगा, सो संभवे नाही। अर वह पापी है, तौ पाटका अधिकार कहाँ रह्या ? जो गुरुपदयोग्य कार्य करै सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलै तौ स्त्री आदिके त्यागी थे, पीछै भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी सतति आपको गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछै गुरुपना कैसे रह्या ? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनकौ मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसै मानै ? बहुरि केई अन्य तौ सर्व पापकार्य करै, एक स्त्री परणै नाहीं, इसही अंगकरि गुरुपनो मानै है। सो एक अब्रह्म ही तौ पाप नाही, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप है, तिनिकौं करतै धर्म्मात्मा गुरु कैसे मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितै विवाहादिकका त्यागी नाही भया है। कोई आजीवका वा लज्जाआदि प्रयोजन कौं लिए विवाह न करै है। जो धर्म्मबुद्धिहोती, तौ हिंसादिककौ काहेकौं बधावता। बहुरि जाकै धर्म्मबुद्धि नाही, ताकै शीलकी दृढता रहै नाही। अर विवाह करै नाही, तब परस्त्रीगमनादि महापापकौ उपजावै। ऐसी क्रिया होतैं गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकारकरि भेषधारनेतै गुरुपनौ मानै हैं। सो भेष धारै कौन धर्म्म भया, जातै धर्म्मात्मा गुरु मानै है। तहा केई टोपी दे है, केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै है, केई चादर ओढै है, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै हैं, केई भगवा राखै हैं. केई टाट पहरै है, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै हैं, इत्यादि अनेक स्वाँग बनावै हैं।

सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटै थी, तौ पाग-जामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक त्याग काहेकौ किया ? उनको छोरि ऐसै स्वाग बनावने मै कौन धर्मका अंग भया। गृहस्थनिकौ ठिगनेके अर्थि ऐसे भेष जानने। जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वाँग राखे, तौ गृहस्थ कैसै ठिगावै। अर याकौ उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना,तातै ऐसे स्वाँग बनावै है। जगत भोला, तिस स्वांगकौ देखि ठिगावे अर धर्म्म भया मानै, सो यहु भ्रम है। सोई कह्या है—

**जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं।**
**तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं ॥ १ ॥**

( उपदेश सि० र० ५ )

याका अर्थ—जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिककौ मुसावतौ हुवा भी हर्ष मानै है, तैसे मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म धनकौ नाही जानै है। भावार्थ—यहु मिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रुषा आदितै अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाही, मिथ्याबुद्धि तै हर्ष करै हैं। तहाँ केई तौ मिथ्याशास्त्रनिविषै भेष निरूपण किये है, तिनकौ धारै हैं। सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगमक्रिया-कियेतै उच्चपद प्ररूपणतै मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्गविषै बहुत लागै, इस अभिप्रायतै मिथ्या उपदेश दिया। ताकी परपराकरि विचाररहित जीव इतना तौ विचारै नाही, जो सुगमक्रियातै उच्चपद होना बतावै है, सो इहाँ किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषै प्रवर्त्तै है। बहुरि केई शास्त्रनिविषै तौ मार्ग कठिन

निरूपण किया सो तौ सधै नाहीं अर अपना ऊंचा नाम धराएं बिना लोक मानै नाहीं, इस अभिप्रायतै यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक सन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तौ ऊचा धरावै हैं अर इनिका आचारनिकौ नाही साधि सकै हैं तातै इच्छानुसारि नाना भेष बनावै है। बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तौ नवीन नाम धरावै है अर इच्छानुसारि ही भेष बनावै हैं। ऐसें अनेक भेष धारनेतैं गुरुपनौ मानै है, सो यहु मिथ्या है।

इहाँ कोऊ पूछै कि भेष तौ बहुत प्रकारके दीसै, तिन विषै साचे झूठे भेषकी पहचानि कैसै होय ?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषैं विषयकषायका किछू लगाव नाही, ते भेष सांचे हैं। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुड़विषै कुंदकुंदाचार्यकरि कह्या है—

**एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु।**
**अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि ॥**

—( द० पा० १८ )

याका अर्थ—एक तौ जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसईं ग्यारही प्रतिमा का धारक श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिका लिंग, ऐसें ए तीन लिंग तौ श्रद्धानपूर्वक है। बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाही है। भावार्थ—यहु इन तीनलिंग विना अन्यलिंगकौं मानै सो श्रद्धानी नाही, मिथ्यादृष्टी है। बहुरि इन भेषीनिविषै केई भेषी अपने भेष की प्रतीति करावनेके अर्थि किंचित् धर्मका अंगकौ भी

पालै है। जैसे खोटा रुपैया चलावनेवाला तिस विषै किछू रूपा का भी अंश राखै है, तैसे धर्म्मका कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावै है।

इहा कोऊ कहै कि जो धर्म्म साधन किया, ताका तौ फल होगा।

ताका उत्तर— जैसे उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै, तौ पापी है। अर एकत का ( एकासनका ) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तौ भी धर्म्मात्मा है। तैसे उच्चपदवीका नाम धराय तामैं किंचित् भी अन्यथा प्रवर्त्तै, तौ महापापी है। अर नीचीपदवीका नाम धराय, किछू भी धर्म्म साधन करै, तौ धर्म्मात्मा है। तातै धर्म्मसाधन तौ जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाही। परन्तु ऊंचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किए महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुडविषै कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

**जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।**
**जइ लेइ अप्प-बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१॥**

—( सूत्र प्रा० १८ )

याका अर्थ—मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतै था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषै तिलतुषमात्र भी ग्रहण न करै। बहुरि कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तौ तिसतै निगोद जाय। सो इहा देखो, गृहस्थ-पनेमैं बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै,तौभी स्वर्ग मोक्षका अधि-कारी हो है अर मुनिपनेमैं किंचित् परिग्रह अंगीकार किए भी निगोद जाने वाला हो है। तातै ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाही।

देखो, हुँडावसर्प्पिणी कालविषै यहु कलिकाल प्रवर्त्तै है। ताका दोष-करि जिनमतविषै भी मुनिका स्वरूप तौ ऐसा जहां बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहका लगाव नाहीं, केवल अपनी आत्माकौ आपो अनुभवते शुभा-शुभभावनितैं उदासीन रहै है अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारैं, तहां सर्वसावद्यका त्यागी होय पंचमहाव्रतादि अंगी-कार करै। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिकौ ग्रहै, वा भोजनादिविषैं लोलुपी होय, वा अपनी पद्धति बधावनेकौ उद्यमी होय, वा केई धनादिक भी राखै, वा हिंसादिक करैं, वा नाना आरभ करैं। सो स्तोक परिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, तौ ऐसे पापनिका फल तौ अनंत ससार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताकौ तौ पापी कहै अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञाभंग करते देखैं. बहुरि तिनकौ गुरु मानै, मुनिवत् तिनका सन्मानादि करैं। सो शास्त्रविषै कृतकारित अनुमोदनाका फल कह्या है तातैं इनकौ भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेनेका तौ क्रम यह है—पहलै तत्त्वज्ञान होय, पीछें उदासीन परिणाम होय, परिष-हादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहे। तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अगीकार करावै। यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञान-रहित विषयकषायासक्त जीव तिनकौ मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछें अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बडा अन्याय है। ऐसैं कुगुरुका वा तिनके सेवनका निषेध किया। अब इस कथन के दृढ करनेकौ शास्त्रनिकी साखि दीजिए है। तहा उपदेशसिद्धान्त-रत्नमाला विषै ऐसा कह्या है—

**गुरुणो भट्टा जाया मद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।**
**दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि बुड्ढंति ॥३१॥**

कालदोषतें गुरु जे है, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुति करिकैं दानादि ग्रहै है । सो इस दुखमा कालविषै दोऊ ही दातार वा पात्र ससारविषै डूबै है। बहुरि तहाँ कह्या है—

**सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ ।**
**जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं ॥ ३६ ॥**

याका अर्थ—सर्पकौ देखि कोऊ भागै, ताकौ तौ लोक किछू भी कहै नाही। हाय हाय देखो, जो कुगुरुसर्पकौ छोरै है, ताहि मूढ दुष्ट कहै, बुरा बोलै ।

**सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।**
**तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं ॥ ३७ ॥**

अहो सर्पकरि तौ एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनतमरण दे है—अनंतबार जन्ममरण करावै है। तातै हे भद्र, साँपका ग्रहण तौ भला अर कुगुरुका सेवन भला नाही। और भी गाथा तहा इस श्रद्धान दृढ़ करनेकौ कारण बहुत कही है सो तिस ग्रन्थतै जानि लैनी । बहुरि संघपट्टविषै ऐसा कह्या है—

**क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्**
**कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।**
**चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति**
**स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्व वराकीयति ॥**

याका अर्थ—देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीचैत्यालयादिविषै दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता सता आचार्य पदकौ प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषै अपने गृहवत् प्रवर्त्तै है, निजगच्छविषै कुटुम्बवत् प्रवर्त्तै है, आपकौ इन्द्रवत् महान् मानैं है, ज्ञानीनिकौं बालकवत् अज्ञानी मानै है, सर्वगृहस्थनिकौ रंकवत् मानै है सो यहु बडा आश्चर्य भया है बहुरि '**यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो**' इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा है—जिनकरि जन्म न भया, वध्या नाही, मोल लिया नाही, देणदार भया नाही, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाहीं, अर गृहस्थनिको वृषभवत् बहावै, जोरावरी दानादिक लें, सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है। काई न्याय पूछनेवाला नाहीं।

यहां कोऊ कहै, ए तौ श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेकौं दई?

ताका उत्तर—जैसै नीचा पुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तमपुरुषकै तौ सहज ही निषेध भया। तैसै जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाका निषेध करें, तौ दिगम्बरधर्म्म विषै तौ ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगम्बरग्रथनिविषै भी इस श्रद्धानके पोषक वचन है। तहा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुड़विषैं (दर्शनपाहुडमें) ऐसा कह्या है—

**दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेहिं सिस्साणं।**
**तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो॥ २॥**

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म

उपदेश्या है। ताकौ सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानौ–सम्यक्त्व-रहित जीव वदनेयोग्य नाही। जे आप कुगुरु ते कुगुरु का श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसै होय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म विना वदने योग्य कैसे होय। बहुरि कहै है—

**जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठाय।**
**एदे भट्ठविभट्ठा सेसंपि जणं विणासति ॥ ८॥**

जे दर्शनविषै भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषै भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट है, ते जीव भ्रष्टतै भ्रष्ट है, और भी जीव जो उनका उपदेश मानै है, तिन जीवनिका नाश करै है, बुरा करै हैं। बहुरि कहै हैं—

**जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।**
**ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥**

जे आप तौ सम्यक्ततै भ्रष्ट हैं अर सम्यक्त्वधारकनिकौ अपने पगौ पडाया चाहै है, ते लूले गूगे हो है, भाव यहु—स्थावर हो है। बहुरि तिनकै बोध की प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

**जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण।**
**तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥ १३ ॥**

—( द० पा० )

जो जानता हुवा भी लज्जागारव भयकरि तिनके पगां पडै है, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाही है। कैसे है ए जीव, पापकी अनुमोदना करते है। पापीनिका सन्मानादि किए तिस पापकी अनुमोदनाका फल लागै है। बहुरि ( सूत्र पाहुड मे ) कहैं है—

**जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स ।**
**सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥१९॥**

—( सूत्र पा० )

जिस लिगकै थोरा वा बहुत परिग्रहका अगीकार होय सो जिन वचनविषै निदा योग्य है । परिग्रहरहित ही अनगार हो है । बहुरि ( भावपाहुडमे ) कहै है—

**धम्मम्मि णिप्पिवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो ।**
**णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥ ७१**

( भाव पा० )

याका अर्थ—जो धर्म्मविषै निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है । भाँडवत् भेषधारी है । सो नग्न भए भाँडका दृष्टांत संभवै है । परिग्रह राखै, तौ यह भी दृष्टांत बनें नाहीं ।

**जे पावमोहियमई लिंगं घत्तूण जिणवरिंदाणं ।**
**पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥**

—( मो० पा० )

याका अर्थ—पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिग धारि पाप करै है, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषै भ्रष्ट जानने । बहुरि ऐसा कह्या है —

**जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला ।**
**आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥**

—( मो० पा० )

याका अर्थ—जे पचप्रकार वस्त्रविषै आशक्त हैं, परिग्रहके ग्रहणहारे है, याचनासहित है, अधःकर्म्म आदि दोषनिविषै रत है, ते मोक्षमार्गविषै भ्रष्ट जानने । और भी गाथासूत्र तहाँ तिस श्रद्धानके दृढ़ करनेकौ कारण कहे है ते तहाँतै जानने । बहुरि कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिंगपाहुड है, ताविषै मुनिलिगधारि जो हिसा आरभ यत्रमत्रादि करै है; ताका निषेध बहुत किया है । बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासन विषै ऐसा कह्या है—

**इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगाः ।**
**वनाद्वसन्त्युपग्रामं कलौ कष्ट तपस्विनः ॥१९७॥**

याका अर्थ—कलिकालविषै तपस्वी मृगवत् इधर उधरतै भयवान् होय बनतै नगरके समीप बसै है, यहु महाखेदकारी कार्य भया है । यहाँ नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तौ नगरविषै रहना तौ निषिद्ध भया ही ।

**वर गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः ।**
**सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥ २०० ॥**

याका अर्थ—अबार होनहार है अनतससार जातै ऐसे तपतै गृहस्थपना ही भला है । कैसा है वह तप, प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य सपदा जाकी, ऐसा है । बहुरि योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशविषै ऐसा कह्या है—

दोहा—

**चिल्ला चिल्ली पुत्थयहिं, तूसइ मूढ णिभतु ।**
**एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहहेउ मुणंतु ॥२१४॥**

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ सतुष्ट हो है । भ्राति सहित ऐसें ही है। बहुरि ज्ञानी बधका कारण इनकौ जानतो सता इनिकरि लज्जायमान हो है।

**केणवि अप्पउ वंचियउ, सिर लुंचि वि छारेण।**
**सयलु वि संग ण परहरिय, जिणवरलिंगधरेण ।२१६॥**

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या । सो कौन, जिह जीव जिनवरका लिग धारचा अर राखकरि माथाका लौचकरि समस्तपरिग्रह छांड्या नाही ।

**जे जिणलिंग धरेवि मुण इट्ठपरिग्गह लिंति।**
**छद्दिकरेविणु ते वि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति ॥२१७॥**

याका अर्थ—हे जीव ! जे मुनि जिनलिग धारि इष्टपरिग्रहकौं ग्रहैं है, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकूं बहुरि भखै है । भाव यहु—निंदनीय है इत्यादि तहाँ कहै है। ऐसें शास्त्रनिविषै कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूतआदि छयालीस दोष आहारादिविषै कहे है, तहां गृहस्थनिके बालकनिकौ प्रसन्न करना, समाचार कहना, मत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लैना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब काल दोषतै इनही दोषनिकौ लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया है, तिन हीका लक्षणनिकौ धरै है। इतना विशेष—वे द्रव्यां तौ नग्न रहै है, ए नानापरिग्रह राखै है। बहुरि तहाँ मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार

लेनेकी विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीडि आहारादि ग्रहै है। बहुरि ग्रहस्थधर्म्मविषै भी उचित नाही वा अन्याय लोकनिद्य पापरूप कार्य तिनको करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तौ अविनय करै है। बहुरि आप तिनतै भी महतता राखि ऊचा बैठना आदि प्रवृत्तिकौ धारै है। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासै अर आपकौ मुनि मानै, मूलगुणादिकके धारक कहावै। ऐसै ही अपनी महिमा करावै। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशसादिककरि ठिगे हुए धर्म्मका विचार करै नाही। उनकी भक्तिविषै तत्पर हो है। सो बडे पापकौ बडा धर्म्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसे अनतसंसार न होय। एक जिनवचन कौ अन्यथा मानें महापापी होना शास्त्रविषै कह्या हैं। यहा तौ जिन-वचनकी किछू बात राखी ही नाही। इस समान और पाप कौन है?

अब यहाँ कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै है, तिनका निराकरण कीजिए है। तहाँ वह कहै है,—गुरुविना तौ निगुरा होय, अर वैसे गुरु अबार दीसै नाही। तातै इनहीकौ गुरु मानना।

ताका उत्तर—निगुरा तौ वाका नाम है, जो गुरु मानै ही नाही। बहुरि जो गुरुको तौ मानै अर इस क्षेत्रविषै गुरुका लक्षण न देखि काहूकौ गुरु न मानै, तौ इस श्रद्धानतै तौ निगुरा होता नाही। जैसैं नास्तिक्य तौ वाका नाम है, जो परमेश्वरकौ मानैं ही नाहीं। बहुरि जो परमेश्वरकौ तौ मानैं अर इस क्षेत्रविषै परमेश्वरका लक्षण न देखि काहूकौं परमेश्वर न मानै, तौ नास्तिक्य तौ होता नाहीं। तैसैं ही यहु जानना।

बहुरि वह कहै है, जैनशास्त्रनिविषै अबार केवलीका तौ अभाव कह्या है, मुनिका तौ अभाव कह्या नाही।

ताका उत्तर—ऐसा तौ कह्या नाही, इनि देशनिविषै सद्भाव रहेगा। भरत क्षेत्रविषै कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तौ बहुत बडा है। कही सद्भाव होगा, तातै अभाव न कह्या है। जो तुम रहो हो, तिस ही क्षेत्र विषैं सद्भाव मानोगे, तौ जहां ऐसे भी गुरु न पावोगे,तहा जावोगे तब किसकौ गुरु मानोगे। जैसै हंसनिका सद्भाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाही, तौ औरः पक्षीनिकौ तौ हसपना मान्या जाता नाही। तैसैं मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाही, तौ औरनिकौ तौ मुनि मान्या जाय नाही।

बहुरि वह कहै है, एक अक्षर का दाताकौ गुरु मानै हैं। जे शास्त्र सिखावै वा सुनावै, तिनिकौ गुरु कैसै न मानिए?

ताका उत्तर—गुरु नाम बडेका है। सो जिस प्रकार की महंतता जाकै सभवै, तिस प्रकार ताकौ गुरुसज्ञा संभवै। जैसै कुल अपेक्षा मातापिताकौ गुरु संज्ञा है, तैसै ही विद्या पढ़ावनेवालेकौ विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहां तौ धर्म्मका अधिकार है। तातै जाकैं धर्म्म अपेक्षा महंतता संभवै, सो ही गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्तं खलु धम्मो' ऐसा शास्त्रविषै कह्या है। तातै चारित्रका धारकहीकौ गुरु संज्ञा है। बहुरि जैसै भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहां देवका श्रद्धानविषै अरहतदेवहीका ग्रहण है तैसै और निका भी नाम गुरु है; तथापि इहां श्रद्धानविषै निर्ग्रंथहीका ग्रहण

❀ प्रवचनसार १-७

है। सो जिनधर्म्म विषै अरहत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न—जो निर्ग्रंथ बिना और गुरु न मानिए,सो कारण कहा?

ताका उत्तर—निर्ग्रंथविना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महतता नाही धरै है। जैसै लोभी शास्त्रव्याख्यान करै,तहाँ वह वाकौं शास्त्र सुनावने-तै महत भया। वह वाकौ धनवस्त्रादि देनेतै महत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महत रहै, तथापि अन्तरग लोभी होय, सो दाता कौं उच्च मानै अर दातार लोभीकौ नीचा मानै, तातै वाकै सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तौ आहार ले हैं।

ताका उत्तर—लोभी होय दातारकी सुश्रूषाकरि दीनतातै आहार न ले है। तातै महतता घटै नाही। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसे ही अन्य जीव जानने। तातै निर्ग्रन्थ ही सर्वप्रकार महततायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रन्थ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाही। तातै गुणनिकी अपेक्षा महतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब नि.शक स्तुति करी जाय नाही। बहुरि निर्ग्रन्थ बिना अन्य जीव जसा धर्म्म साधन करै, तैसा वा तिसतै अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकै। तहा गुरु सज्ञा किसकौ होय ? तातै बाह्य अभ्यतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ऐसे गुरु तौ अबार यहाँ नाही, तातै जैसै अरहंत की स्थापना प्रतिमा है, तैसै गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी हैं—

ताका उत्तर—जैसै राजा की स्थापना चित्रामादिककरि करै तौ राजा का प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकौं राजा

मनावै,तौ तिसका प्रतिपक्षी होइ। तैसें अरहंतादिककी पाषाणादिविषैं स्थापना बनावै, तौ तिनका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकौ मुनि मनावै, तौ वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया। ऐसैं ही जो स्थापना होती होय, तौ आपकौ अरहंत भी मनावो। बहुरि उनकी स्थापना होय, तौ बाह्य तौ ऐसैं ही भए चाहिए। वे निर्ग्रन्थ, ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कैसैं बनै ?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तौ जैसे सम्भवै, तैसैं नाहीं। तातैं जैसे श्रावक तैसे मुनि।

ताका उत्तर—श्रावकसंज्ञा तौ शास्त्रविषै सर्व गृहस्थ जैनीकौ है। श्रेणिक भी असयमी था, ताकौ उत्तरपुराणविषै श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषै श्रावक कहे, तहां सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधारी होते, तौ असंयत मनुष्यनिकी जुदी संख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै है। अर मुनिसंज्ञा तौ निर्ग्रन्थ विना कहीं कही नाहीं। बहुरि श्रावककै तौ आठ मूलगुण कहे है। सो मद्य मांस मधु पंचउदबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तौ सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण है, सो भेषीनिकै दीसते ही नाहीं। तातैं मुनिपनो काहू प्रकार करि सम्भवै नाहीं। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषै तौ पूर्वैं जम्बूकुमारादिक बहु हिंसादिककार्य किए सुनिए है। मुनि होयकरि तौ काहूने हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाहीं, तातैं ऐसी युक्ति कारजकारी नाहीं। बहुरि देखो, आदिनाथजी के साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनकौं कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा

प्रवर्त्तोगे तौ हम दंड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय,सो तुम जानो। तातै जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तै,ते तौ दंड योग्य है। वंदनादि योग्य कैसै होय? अब बहुत कहा कहिए,जे जिनमत विषै कुभेष धारै है,ते महापाप उपजावैहै। अन्य जीव इनकी सुश्रूषा आदि करै हैं, ते भी पापी हो हैं। पद्मपुराणविषै यह कथा है—जो श्रेष्ठी धर्म्मात्मा चारण मुनिनिकौ भ्रमतै भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तौ प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनकौ दानादिक देना कैसे सम्भवै?

यहाँ कोऊ कहै,हमारै अंतरंग विषै श्रद्धान तौ सत्य है,परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करै है, सो फल तौ अंतरंग का होगा?

ताका उत्तर—षट्पाहुडविषै लज्जादिकरि वंदनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वै ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुड़ावै, तब तौ यह सम्भवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतै नमस्कारादि करै, तहां अन्तरंग कैसे न कहिए। जैसे कोई अंतरंग विषै तौ मांसकौ बुरा जानै अर राजादिकके भला मनावनेकौं मांस भक्षण करै, तौ वाकौ व्रती कैसे मानिए? तैसैं अंतरंगविषै तौ कुगुरुसेवनकौं बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेकौ सेवन करै, तौ श्रद्धानी कैसै कहिए। तातै बाह्यत्याग किए ही अंतरंग त्याग सम्भवै है। तातै जे श्रद्धानी जीव है, तिनकौं काहू प्रकारकरि भी कुगुरूनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाही। या प्रकार कुगुरूसेवनका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीकौ कुगुरु सेवनतै मिथ्यात्व कैसै भया?

ताका उत्तर—जैसै शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत रमण क्रिया सर्वथा करै नाही,तैसैं तत्त्व श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाही। काहेतैं, यह तौ जीवादितत्त्वनिका श्रद्धानी भया है। तहाँ रागादिककौं निषिद्ध श्रद्दहै है,वीतरागभाव को श्रेष्ठ मानै है, तातैं तिनकै वीतरागता पाईए। वैसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकै रागादिक पाइए, तिनकौ निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाही।

कोऊ कहै—जैसै राजादिककौ करै, तैसे इनकौं भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्म्मपद्धतिविषै नाही। गुरूका सेवन धर्म्म पद्धतिविषै है। सो राजादिकका सेवन तौ लोभादिकतैं हो है। तहाँ चारित्रमोह हीका उदय सम्भवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकौ सेए, यहाँ तत्त्वश्रद्धानके कारण गुरू थे, तिनतैं प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानैं कारणविषै विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषै दृढ़ता कैसैं सम्भवै? तातैं तहाँ दर्शनमोहका उदय सम्भवै है। ऐसैं कुगुरुनिका निरूपण किया।

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है—

जहाँ हिंसादिकषाय उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहाँ यज्ञादिक क्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावै, बड़े जीवनिका घात करै, अर तहा इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषै दुष्टबुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्रलोभतैं औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहाँ धर्म मानैं सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषैं वा अन्यत्र स्नानादि

कार्य करे, तहाँ बडे छोटे घने जीवनिकी हिंसा होय। शरीरको चैन उपजै, तातै विषयपोषण होय, तातैं कामादिक बधै, कुतूहलादिककरि तहाँ कषायभाव बधावै बहुरि तहां धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतिपातादिक विषै दान दे, वा खोटा ग्रहादिकके अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिकौ दान दे, बहुरि दानविषै सुवर्ण हस्ती घोडा तिल आदि वस्तुनिकौं दे,सो संक्रांतिआदि पर्व धर्मरूप नाही। ज्योतिषी सचारादिककरि सक्रांतिआदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, तहाँ भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातै तहाँ दान देनेमैं धर्म नाही। बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाही। जातै लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै है। किछू भला करते नाही। भला तौ तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै। सो वह तौ उलटा पापरूप प्रवर्तै। पापका सहाईका भला कैसै होय? सो ही रयणसार शास्त्रविषैं कह्या है—

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणां फलाण सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा मवस्स जाणेह ॥ २६ ॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिकौ दान देना, कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है, शोभा भी है अर सुखदायक भी है। बहुरि लोभी पुरुषनिकौं दान देना जो होय, सो शव जो मरद्या ताका विमान जो चक्रडोल ताकी शोभा समान जानहु। शोभा तौ होय, परन्तु धनीकौ परम दु:खदायक हो है। तातै लोभी पुरुषनिकौ दान देनेमै धर्म नाही। बहुरि द्रव्य तौ ऐसा दीजिए,जाकरि वाकै धर्म बधै। सुवर्ण हस्तीआदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजैं वा मान लोभादिक बधै। ताकरि

महापाप होय । ऐसी वस्तुनिका देने वालाकौं पुन्य कैसैं होय । बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषैं पुन्य ठहरावैहैं । सो प्रत्यक्ष कुशीलादिक पाप जहाँ होय, तहाँ पुण्य कैसैं होय । अर युक्ति मिलावनेकौं कहै जो वह स्त्री सन्तोष पावै है । तौ स्त्री तौ विषयनसेवन किए सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेकौं दिया । रतिसमय विना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्तैं, दुःख पावै । सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं । ऐसै ही दयावान वा पात्रदान विना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है ।

## मिथ्या व्रतादिकोंका निषेध

बहुरि व्रतादिककरिकै तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है । सो व्रतादिक तौ तिनकौं घटावनेके अर्थि कीजिए है । बहुरि जहाँ अन्नका तौ त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहाँ हिंसा विशेष भई—स्वादादिकविषय विशेष भए । बहुरि दिवसविषै तौ भोजन करैं नाही, अर रात्रिविषै करै । सो प्रत्यक्ष दिवसभोजनतैं रात्रिभोजनविषै हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय । बहुरि व्रतादिकरि नाना शृङ्गार बनावै, कुतूहल करै, जूवाआदि रूप प्रवर्तै, इत्यादि पापक्रिया करै । बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकौ चाहै, तहा कषायनिकी तीव्रता विशेष भई । ऐसै व्रतादिकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है ।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषै हिंसादिक पाप बधावै, वा गीत नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिकौं पोषैं, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्तै । तहाँ पाप तौ बहुत उपजावै अर

धर्मका किछू साधन नाही, तहा धर्म मानै सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरकौं तौ क्लेश उपजावै अर तहाँ हिंसादिक निपजावै वा कषायादिरूप प्रवर्त्तैं। जैसे पंचाग्नि तापै, सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलै, हिंसादिक बधै, यामै धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख भूलै, ऊर्ध्वबाहु राखै, इत्यादि साधन करै तहाँ क्लेश ही होय। किछू ए धर्म के अग नाही। बहुरि पवन साधन करै, तहा नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषै जलादिक करि हिसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातै मानादिक बधै, किछू तहा धर्मसाधन नाही। इत्यादि क्लेश करै, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करै नाही। अंतरगविषै क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

## अपघात कुधर्म है

बहुरि केई इस लोक विषै दुःख सह्या न जाय या परलोकविषैं इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढ़ावनेके अर्थि वा कोई क्रोधादिककरि अपघात करै। जैसे पतिवियोगतै अग्निविषै जलकरि सती कुहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित मारी ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै है। सो अपघातका तौ बड़ा पाप है। शरीरादिकतै अनुराग घटया था, तौ तपश्चरणादि किया होता। मरि जाने में कौन धर्म का अग भया। तातै अपघात करना कुधर्म है। ऐसै ही अन्य भी घने कुधर्मके अग है। कहाँ ताईं कहिए, जहा विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानने।

देखो कालका दोष, जैनधर्मविषै भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषै जे धर्मपर्व कहे हैं, तहाँ तौ विषयकषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है। ताकौं तौ आदरै नाही। अर व्रतादिकका नाम

धराय तहां नाना शृङ्गार बनावैं वा गरिष्ठभोजनादि करै वा कुतूहलादि करै वा कषाय बधावनेके कार्य करैं,जूवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्त्तें।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषैं उपदेश तौ यहु था—'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं'* पापका अंश बहुत पुण्यसमूहविषै दोष के अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यविषैरात्रि विषै दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका संग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्ति करि हिंसादिकरूप पाप तौ बहुत उपजावे, अर स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामनिविषैं प्रवर्त्तै नाही वा थोरे प्रवर्त्तै, सो टोटा घना नफ़ा थोरा वा नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्य करनेमै तौ बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तौ धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्त्तै वा तहाँ बाग बाडी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषै। बहुरि लोभी पुरुषनिकौ गुरु मानि दानादिक दे वा तिनकी असत्य-स्तुतिकरि महंतपनौ मानै, इत्यादि प्रकार करि विषय-कषायनिकौं तौ बधावै अर धर्म मानै। सो जिनधर्म तौ वीतरागभाव-रूप है। तिसविषै ऐसी प्रवृत्ति कालदोषतै ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

## कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव—

अब इसविषैं मिथ्यात्वभाव कैसै भया, सो कहिए है—

तत्वश्रद्धानविषै प्रयोजनभूत एक यह है, रागादिक छोड़ना। इस ही भाव का नाम धर्म्म है। जो रागादिक भावनिकौं बधाय धर्म्म मानैं, तहाँ तत्त्वश्रद्धान कैसै रह्या? बहुरि जिन आज्ञातै प्रतिकूली

---

* पूरा पद्य इस प्रकार है—

"पूज्य जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"
—वृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

भया। बहुरि रागादिभाव तौ पाप है तिनकौ धर्म्म मान्या, सो यहू झूंठ श्रद्धान भया। तातै कुधर्म्म सेवनविषै मिथ्यात्व भाव है। ऐसें कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषै मिथ्यात्वभाव की पुष्टता होती जानि, याका निरूपण किया। सोई षट्पाहुडविषै कह्या है—

"कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु॥१॥"

( मोक्ख पा० ९२ )

याका अर्थ—जो लज्जातै वा भयतै वा बडाईतै भी कुत्सित् देवकौ वा कुत्सित् धर्म्मकौ वा कुत्सित् लिगकौ वंदै है सो मिथ्यादृष्टी हो है, तातै जो मिथ्यात्व का त्याग किया चाहै, सो पहलै कुदेव कुगुरु कुधर्म्म का त्यागी होय। सम्यक्त्वके पचीस मलनिके त्याग विषै भी अमूढदृष्टि वा षडायतनविषै भी इनहीका त्याग कराया है। तातै इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतै जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यह हिसादिकपापनितै बडा महापाप है। याके फलतै निगोद नरकादिपर्याय पाईए है। तहां अनंतकालपर्यन्त महासकट पाईए है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुड़विषै ( भाव पाहुड़मे ) कह्या है—

कुच्छियधम्मम्मि-रओ, कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ॥१४०॥

( भावपा० १३८ )

याका अर्थ—जो कुत्सितधर्म्मविषै रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि सयुक्त है, कुत्सित तपकौ करता है, सो जीव कुत्सित खोटी गति ताको भोगनहारा हो है। सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्रलोभतै वा भयतै कुदेवादिकका सेवनकरि जातै अनन्तकालपर्यंत महादुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाही। जिनधर्म्मविषै यह

तौ आम्नाय है। पहलै बड़ा पाप छुड़ाय पीछै छोटा पाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वकों सप्तव्यसनादिकतै भी बड़ा पाप जानि पहलै छुडाया है। तातै जे पापके फलतै डरैहै,अपने आत्माको दु:ख समुद्रमैं न डुबाया चाहै है, ते जीव इस मिथ्यात्वकौ अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिकके विचारतै शिथिल होना योग्य नाही। जातै नीति विषै भी ऐसा कह्या है—

**निंदादि भय से मिथ्यात्व-सेवनका प्रतिषेध—**

**निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु**
**लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।**
**अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा**
**न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥**

(नीतिशतक ८४)

जे निन्दै है ते निन्दौ अर स्तवै है तौ स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगांतरविषै होहु, परन्तु नीतिविषै निपुण पुरुष न्यायमार्गतै पैड़हू चलै नाही। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशसादिकका भयतै लोभादिकतै अन्यायरूप मित्थ्यात्वप्रवृत्ति करनी युक्त नाही। अहो, देव गुरु धर्म्म तौ सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनके आधारि धर्म है। इनविषै शिथिलता राखै अन्यधर्म कैसे होइ? तातै बहुत कहनेकरि कहा, सर्व प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्वभाव बहुत पुष्ट हो है। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातै इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकौ जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

**इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषै कुदेवकुगुरुकुधर्म-निषेधवर्णनरूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥ ६ ॥**

# सातवाँ अधिकार

## जन मिथ्यादृष्टिका विवेचन

दोहा।

इस भवतरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव ।
ताकौं करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥

अर्थ—जे जीव जैनी है, जिन आज्ञाकौं मानै हैं अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है—जातै इस मिथ्यात्व वैरीका अश भी बुरा है, तातै सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगमविषै निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिनविषै यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकौं न जानते अन्यथा प्रवर्त्तै है, सोई कहिए है—

### एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास

कोई जीव निश्चयकौ न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपकौं मोक्षमार्गी मानै हैं। अपने आत्माकौ सिद्ध समान अनुभवै है। सो आप प्रत्यक्षससारी है। भ्रमकरि आपकौ सिद्ध मानै सोई मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रनिविष जो सिद्धसमान आत्माकौ कह्या है, सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाही है। जैसै राजा अर रक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान है, राजापना रकपनाकी अपेक्षा तौ समान नाही। तैसै सिद्ध अर ससारी जीवत्पनेकी अपेक्षा समान है, सिद्धपना ससारीपनाकी अपेक्षा तौ समान नाही। यहु जैसै सिद्ध शुद्ध हैं, तैसै ही

आपकौं शुद्ध माने। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए, सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकै केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानें, सो आपकै तौ क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तौ कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतै कर्म्मका क्षय भए विना ही क्षायिकभाव माने। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषै सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है,सो शक्ति अपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषैं केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तौ व्यक्त भए ही कहिए।

## केवलज्ञान निषेध

कोऊ ऐसा मानै है, आत्माके प्रदेशनिविषैं तौ केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतै प्रगट न हो है सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तो बज्रपटलादि आड़े होतै भी वस्तुकौं जानै। कर्मको आडे आए कैसैं अटकै। तातै कर्मके निमित्ततै केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है, तौ याकौ पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तौ क्षायिकभाव है। सर्वभेद जामै गर्भित ऐसा जो चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप है, सो ए पारिणामिकभाव नाही। तातै केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषै सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसैं मेघपटल होते सूर्यप्रकाश प्रगट न हो है, तैसैं कर्मउदय होतैं केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसैं सूर्यविषैं प्रकाश रहै है, तैसैं

आत्मविषै केवलज्ञान रहै है। जातै दृष्टांत सर्वप्रकार मिलै नाही। जैसै पुद्गलविषै वर्णगुण है, ताकी हरित पीतादि अवस्था है। सो वर्तमान विषै कोई अवस्था होतै अन्य अवस्थाका अभावही है। तैसै आत्माविषै चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था है। सो वर्तमान कोई अवस्था होतै अन्य अवस्थाका अभाव है।

बहुरि कोऊ कहै कि आवरण नाम तौ वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाही है तौ केवलज्ञानावरण काहेको कहौ हौ ?

ताका उत्तर—यहाँ शक्ति है ताकौ व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है। जैसै देशचारित्रका अभाव होतैं शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या, तैसै जानना। बहुरि ऐस जानौ--वस्तुविषै जो परनिमित्ततै भाव होय ताका नाम औपाधिकभाव है अर परनिमित्त बिना जो भाव होय सो ताका नाम स्वभावभाव है। सो जैसै जलकै अग्निका निमित्त तातै उष्णपनौं भयो, तहाँ शीतलपनाका अभाव ही है। परन्तु अग्निका निमित्त मिटे शीतलनाही होय जाय तातै सदाकाल जल का स्वभाव शीतल कहिए, जातै ऐसी शक्ति सदा पाइए है। बहुरि व्यक्तभए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। कदा-चित् व्यक्तरूप हो है। तैसै आत्माकै कर्मका निमित्त होतै अन्यरूप भयो, तहाँ केवलज्ञानका अभाव ही है। परन्तु कर्मका निमित्त मिटे सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातै सदाकाल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातै ऐसी शक्ति सदा पाईए है। व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। बहुरि जैसै शीतलस्वभावकरि उष्ण जलकौ शीतल मानि पानादि करै, तौ दाझना ही होय। तैसै केवल ज्ञानस्वभावकरि

अशुद्ध आत्माकौ केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तौ दुःखी ही होय । ऐसैं जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकौ अनुभवै है, ते मिथ्यादृष्टी है। बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होतै भ्रमकरि आत्माकौ रागादिरहित मानै । सो पूछिए है—ए रागादिक तौ होते देखिए है, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषै है । जो शरीर वा कर्मरूपपुद्गलके अस्तित्वविषै होंय तौ ए भाव अचेतन वा मूर्तीक कहो। सो तौ ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिएं अमूर्त्तीकभाव भासै है । तातैं ए भाव आत्माहीके है । सोई समयसारके कलशविषै कह्या है—

**कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो—**
**रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः ।**
**नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवस्य कर्त्ता ततो**
**जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥ १ ॥**

( सर्ववि० ११ )

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि किया नाही, ऐसा नाही है जातै यह कार्यभूत है । बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इनि दोऊनिका भी कर्तव्य नाही जातै ऐसैं होय तौ अचेतनकर्म्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख दुःख ताका भोगना होइ,सो असभव है । बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं जातै वाकै अचेतनपनो प्रगट है । तातै इस रागादिकका जीव ही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है । जातै भावकर्म्म तौ चेतना का अनुसारी है, चेतना विना न होइ । अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं ।

ऐसें रागादिकभाव जीव के अस्तित्वविषै है। जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्मही कौ मानि आपकौ रागादिकका अकर्त्ता मानै हैं, सो कर्त्ता तौ आप अर आपकौ निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातै कर्म्म हीका दोष ठहरावै है। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशाविषै कह्या है—

**रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।**
**उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥**

(सर्व वि० २८)

जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषै परद्रव्यहीकौ निमित्तपनो मानैं हैं, ते जीव भी शुद्धज्ञानकरि रहित है, अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होत संतैं मोहनदीकौं नाहीं उतरै हैं। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धिअधिकार' विषै जो आत्मा कौ अकर्त्ता मानै है अर यहु कहै है—कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतै हिंसा है, वेदकर्मतै अब्रह्म है, तातै कर्म ही कर्त्ता है, तिस जैनीकौ सांख्यमती कह्या है। जैसै सांख्यमती आत्माकौ शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसे ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतै यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानैं, आपकौ अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाही वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाही, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनंतसंसारविषै रुलै है।

यहाँ प्रश्न—जो समयसारविषै ही ऐसा कह्या है—

**वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा**

भिन्नाभावाः सर्व एवास्य पुंसः*।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातें भिन्न है। बहुरि तहाँ ही रागादिककौं पुद्गलमय कहे है। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषैं भी रागादिकतें भिन्न आत्माकौं कह्या है,सो यहु कैसे है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्यके निमित्ततैं औपाधिकभाव हो है अर यहु जीव तिनिकौं स्वभाव जानैं है। जाकौं स्वभाव जानैं, ताकौं बुरा कैसैं मानैं वा ताके नाशका उद्यम काहेकौं करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुडावनेकौं स्वभावकी अपेक्षा रागादिककौं भिन्न कहे है अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे है। जैसैं वैद्य रोग मेटया चाहै है। जो शीतका आधिक्य देखै तौ उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तौ शीतल औषधि बतावै। तैसे श्रीगुरु रागादिक छुड़ाया चाहे है। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय, निरुद्यमी होय ताकौं उपादान कारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है, ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाशका उद्यम नाहीं करै है ताकौं निमित्त कारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव है, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतैं रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब ऐसा मानैं— ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तौ नाहीं है कर्म के निमित्ततैं

* वर्णाद्या राग मोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमीनी दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५॥
—जीवाजीव० ॥ ५ ॥

आत्मा के अस्तित्वविषै विभावपर्याय निपजै है। निमित्त मिटे इनका नाश होतैं स्वभावभाव रहि जाय है। तातैं इनिके नाशका उद्यम करना।

यहाँ प्रश्न—जो कर्मका निमित्ततैं ए हो है, तौ कर्मका उदय रहै तावत् विभाव दूरि कैसैं होय? तातैं याका उद्यम करना तौ निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए है। तिनविषै जे कारण बुद्धिपूर्वक होय, तिनकौ तौ उद्यम करि मिलावैं अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलै तब कार्यसिद्ध होय। जैसैं पुत्रहोनेका कारण बुद्धिपूर्वक तौ विवाहादिक करना है अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है। तहाँ पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तौ उद्यम करै, अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसैं विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तौ तत्त्वविचारादिक है अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्मका उपशमादिक है। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तौ उद्यम करै अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय तब रागादिक दूरि होय।

यहाँ ऐसा कहै है कि—जैसैं विवाहादिक भी भवितव्य आधीन है तैसैं तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिककै आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तौ क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करनेयोग्य तेरै भया है। याहीतैं उपयोगकौ यहा लगावनेका उद्यम कराइए है। असञ्ज्ञी जीवनिकैं क्षयोपशम नाही है, तौ उनकौ काहेकौ उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय, तौ तहाँ उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है,तौ सर्वत्र कोई ही कार्यका उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तौ उद्यम करै, अर यहाँ होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहाँ नाही। मानादिक करि एसी झूंठी बातैं बनावै है। या प्रकार जे रागादिकहोतैं तिनकरि रहित आत्माकौ मानै है, ते मिथ्यादृष्टी जाननें।

बहुरि कर्म नोकर्मका सम्बन्ध होतैं आत्माकौ निर्बंध मानै, सो प्रत्यक्ष इनिका बधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतैं ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बधन कैसे नाही। जो बधन न होय, तौ मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेकौ करै।

यहाँ कोऊ कहै—शास्त्रनिविषै आत्माकौ कर्म नोकर्मतैं भिन्न अबद्धस्पष्ट कैसैं कह्या है ?

ताका उत्तर—सम्बन्ध अनेक प्रकार है। तहाँ तादात्म्य सबध अपेक्षा आत्माकौ कर्म नोकर्मतैं भिन्न कह्या है। तहाँ द्रव्य पलटकरि एक नाही होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अबद्धस्पष्ट कह्या है। बहुरि निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षाबधन है ही। उनके निमित्ततैं आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातैं सर्वथा निर्बन्ध आपकौ मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ कोऊ कहै—हमकौ तौ बध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं, जातैं शास्त्रविषै ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्कउ मुणउ, सो बधइ णिभंतु।"

याका अर्थ—जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है, सो निःसन्देह बधै है ताकौ कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बधमुक्त अवस्थाहीकौ मानै है, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाही करै है, तिनको ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्यस्वभावकौ न जानता जीव बध्या मुक्त भया मानै, सो बध है। बहुरि जो सर्वथा ही बन्धमुक्ति न होय, तौ सो जीव बधै है, ऐसा काहेकौ कहै। अर बधके नाशका मुक्त होनेका उद्यम काहेकौ करिए है। काहेको आत्मानुभव करिये है। तातै द्रव्यदृष्टि करि एकदशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है। ऐसै ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतै विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवानीविषै तौ नाना नयअपेक्षा कही कैसा कही कैसा निरूपण किया है। यह अपने अभिप्रायतै निश्चयनयकी मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीकौ ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिकौ धारै है। बहुरि जिनवानीविषै तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञानविषै सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाही। अर चारित्रविषै रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाही। एक अपने आत्माकौ शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है। ताका अभ्यास करनेकौ अंतरगविषै ऐसा चिंतवन किया चाहै है—मै सिद्धसमान शुद्ध हूँ, केवलज्ञानादि सहित हूँ, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हूँ, परमानन्दमय हूँ, जन्ममरणादि दुःख मेरै नाही,

इत्यादि चिंतवन करै है। सो यहाँ पूछिए है—यहु चितवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हौ, तौ द्रव्य तौ शुद्ध अशुद्धसर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभव काहेकौ करो हौ। अर पर्यायदृष्टिकरि करो हौ, तौ तुम्हारै तौ वर्त्तमान अशुद्धपर्याय है। तुम आपकौ शुद्ध कैसै मानौ हौ? बहुरि जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानौ हौ, तौ मै ऐसा होने योग्य हौ ऐसा मानौ। ऐसे काहेकौ मानौ हौ। तातै आपकौ शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतै—तुम आपकौ सिद्धसमान मान्या, तौ यहु संसार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारै केवलज्ञानादिक है, तौ ये मतिज्ञानादिक कौनके है। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हो, तौ ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नही? परमानन्दमय हो, तौ अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्ममरणादि दु:ख ही नाही, तौ दु:खी कैसै होते हो? तातै अन्य अवस्थाविषै अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रविषै शुद्धचितवन करनेका उपदेश कैसै दिया है।

ताका उत्तर—एक तौ द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्यायअपेक्षा शुद्धपना है। तहाँ द्रव्यअपेक्षा तौ परद्रव्यतै भिन्नपनौ वा अपने भावनितै अभिन्नपनौ ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्धचितवनविषै द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारव्याख्याविषै कह्या है—

**एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते।** ( गाथा० ६ )

याका अर्थ—जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाही है। सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितै भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है। बहुरि तहाँ ही ऐसा कह्या है।

**समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः।१**

( गाथा० ७३ )

याका अर्थ—समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातै पारगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेदज्ञान तन्मात्र है, तातै शुद्ध है। तातै ऐसै शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। बहुरि ऐसै ही केवल शब्द का अर्थ जानना। जो परभावतै भिन्न नि.केवल आप ही ताका नाम केवल है। ऐसै ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना। पर्याय अपेक्षा शुद्धपनो मानै, वा केवली आपकौ मानै महाविपरीति होय। तातै आपकौ द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना। द्रव्यकरि सामान्य-स्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि विशेष अवधारना। ऐसै ही चिंतवन किए सम्यग्दृष्टी हो है। जातै साचा अवलोके विना सम्यग्दृष्टी कैसै नाम पावै। बहुरि मोक्षमार्गविषै तौ रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है। सो तौ विचार ही नाही। आपका शुद्ध अनुभवनतै ही आपकौ सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है।

## शास्त्राभ्यासकी निरर्थकताका प्रतिषेध

शास्त्रअभ्यास करना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका वा गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारकौ विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण

१—'आत्मख्यातौ तु 'सकल' इति पाठः प्रतिभाति।

करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमें परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकौ शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है, इत्यादि सर्व साधनिकौ उठाय प्रमादी होय परिणामै है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तौ मुनिनकै भी तौ ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य है। ध्यानविषै उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषै उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीच मै उपयोग लगावने योग्य है नाही बहुरि शास्त्रकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतै सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मंद रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसै कार्यकौ निरर्थक कैसै मानिए ?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषै अध्यात्मउपदेश है, तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाही।

ताकों कहिए है—जो तेरै साँची दृष्टि भई है, तौ सर्वही जैन शास्त्रकार्यकारी हैं। तहाँ भी मुख्यपनै अध्यात्मशास्त्रनिविषै तो आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तौ निर्णय होय चुकै, तब तौ ज्ञानकी निर्मलताके अर्थि वा उपयोगको मद-कषाय रूप राखनेकै अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए। परन्तु अन्य शास्त्रनिविषै अरुचि तौ न चाहिए। जाके अन्यशास्त्रनिकै अरुचि है,ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाही। जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुरुषनिकी कथा

भी रुचितै सुनै, वा विषयके विशेषकौ भी जानै वा विषयके आचरन-विषै जो साधन होय, ताकौ भी हितरूप जानै वा विषयका स्वरूपकौ भी पहिचानै, तैसै जाकै आत्मरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थकरादिक तिनका पुराण भी जानै। बहुरि आत्माके विशेष जाननेकौ गुणस्थानादिककौ भी जानैं। बहुरि आत्मआचरणविषै जे व्रतादिक साधन है, तिनकौ भी हितरूप मानै। बहुरि आत्माके स्वरूपकौ भी पहिचानै। तातै च्यारचौ ही अनुयोग कार्यकारी है। बहुरि तिनिका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्दन्यायशास्त्रादिककौ भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनन्दिपच्चीसी' विषै ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतै निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है,सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तौ आत्माकी है, ताकौ छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषै अनुरागिणी भई, ताकौ व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसै स्त्री शीलवती रहै, तौ योग्य ही है। अर न रह्या जाय, तौ उत्तम पुरुषकौ छोरि चाडालादिकका सेवन किए तौ अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसै बुद्धि आत्मस्वरूपविषै प्रवर्त्तै तौ योग्य ही है अर न रह्या जाय, तौ प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यनिकौ छोरि अप्रशस्त विषयादिविषै लगै तौ महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषै बहुत काल बुद्धि रहै नाही, तौ तेरी कैसै रह्या करै? तातै शास्त्राभ्यासविषै बुद्धि लगावना युक्त है, बहुरि जो द्रव्यादिकका

वा गुणस्थानादिकका विचारकौ विकल्प ठहरावैहै, सो विकल्प तौ है परंतु निर्विकल्प उपयोग न रहै, तब इनि विकल्पनिकौ न करै तौ अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादिगर्भित हो है। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाही। जातै छद्मस्थका उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहै तौ अन्तर्मुहूर्त्त रहै। बहुरि तू कहैगा–मै आत्मस्वरूपहीका चितवन अनेक प्रकार किया करूँगा, सो सामान्य चितवनविषै तौ अनेक प्रकार बनै नाही। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतै तौ मोक्षमार्ग होइ नाही। सप्ततत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा। सो सप्ततत्त्वनिका विशेष जाननैकौ जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातै सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछै रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनकौं छोड़ि जे रागादिक घटावनेके कारण होय तहाँ उपयोगकौ लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेकौ कारण है। इन विषै कोई रागादिकका निमित्त नाही। तातै सम्यग्दृष्टी भए पीछै भी इहाँ ही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है—रागादि मिटावनेकौ कारण होय तिनविषै तौ उपयोग लगावना, परन्तु त्रिलोकवर्त्ती जीवनिकी गति आदि विचार करना वा कर्म्मका बध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्यकारी है।

ताका उत्तर—इनिके भी विचारतै रागादिक बधते नाही। जातैं ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप है नाही। तातै वर्तमान रागादिककौ कारण नाही। बहुरि इनको विशेष जाने तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातैं आगामी रागादिक घटावनेकौ ही कारण है। तातै कार्यकारी है।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिककौ जानै तहाँ रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तौ ऐसी बुद्धि होइ नाही, अज्ञानीकै होय। तहाँ पाप छोरि पुण्यकार्यविषै लागै तहाँ किछू रागादिक घटै ही है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषै ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातै बहुत विकल्प काहेकौ कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानें, अर प्रयोजनभूतकौ न जानै, अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाही, तिनकौ यहु उपदेश दिया है। बहुरि जिनके बहुत जानने की शक्ति होय, ताकौ तौ यहु कह्या नाही जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानेगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातै शास्त्रविषै ऐसा कह्या है—

**सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।**

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतै विशेष बलवान् है। विशेषहीतैं नीकै निर्णय हो है। तातै विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकौ वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्ग भए तौ ससारी-जीवनितै उलटी परणति चाहिए। ससारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहाँ राग छोड़नेकै अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है। अर द्वेष छोड़नेके अर्थि

अनिष्ट अनशनादिककौ अंगीकार करै है। स्वाधीनपनै ऐसा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलै भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसे, अर तेरै अनशनादितै द्वेष भया। तातै ताकों क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहर्‌या। तहाँ राग आया, तौ ऐसी परिणति तौ ससारीनिकै पाईएही है। तैं मोक्षमार्गी होय, कहा किया।

बहुरि जो तू कहेगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाही करै है।

ताका उत्तर—यहु कारणविशेषतै तप न होय सकै है। परन्तु श्रद्धानविषै तो तपकौ भला जानै है। ताके साधनका उद्यम राखै है। तेरै तौ श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाही। तातै तेरै सम्यग्दृष्टी कैसे होय ?

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषै ऐसा कह्या है, तप आदिका क्लेश करै है तौ करौ, ज्ञान विना सिद्धि नाही।

ताका उत्तर—यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतै परान्मुख है, तपहीतै मोक्ष मानै है, तिनकौ ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान विना केवल तपहीतै मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेके अर्थि तपकरनेका तौ निषेध है नाही। जो निषेध होय तौ गणधरादिक तप काहेकौ करै। तातै अपनी शक्तिअनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिककौ बंधन मानै है, सो स्वच्छन्दवृत्ति तौ अज्ञानअवस्थाही-विषै थी। ज्ञान पाएं तौ परिणतिकौ रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकनेके अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है—हमारे परिणाम तौ शुद्ध हैं बाह्य त्याग न किया तौ न किया।

ताका उत्तर—जे ए हिंसादिकार्य तेरे परिणाम विना स्वयमेव होते होय, तौ हम ऐसैं मानैं। बहुरि तू जो अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषयसेवनादि क्रिया वा प्रमादगमनादि क्रिया परिणाम विना कैसे होय। सो क्रिया तौ आप उद्यमी होय तू करै, अर तहाँ हिंसादिक होय ताकौ तू गिनै नाही, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसी मानितै तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेंगे।

बहुरि वह कहै—परिणामनिकौ रोकै, ए बाह्य हिंसादिक भी घटाईए एरन्तु प्रतिज्ञा करनेमै बंधन हो है, तातै प्रतिज्ञारूप व्रत नाही अगीकार करना।

ताका समाधान - जिस कार्य करनेकी आशा रहै, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतै राग रहै है। तिस रागभावतै विना कार्य किए भी अवरतितै कर्मका बंध हुवा करै। तातै प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। बहुरि कार्य करनेका बधन भए विना परिणाम कैसे रुकैंगे। प्रयोजन पडे तद्रूप परिणाम होय ही होय वा विना प्रयोजन पडे भी ताकी आशा रहै। तातै प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछै प्रतिज्ञाभग होय, तौ महापाप लागै। तातै प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनै, सो बनौ, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करतै जाका निर्वाह होता न जानै, तिस प्रतिज्ञाकौं तौ करै नाही। प्रतिज्ञा लेतै ही यहु अभिप्राय

रहै, प्रयोजन पड़े छोड़िद्योंगा, तौ वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतै तौ यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छांडौंगा तौ ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। विना प्रतिज्ञा किए अविरत सम्बन्धी बंध मिटै नाही। बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयकौ विचारै सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसे आपकौ पचाता जानै, तितना भोजन करै। कदाचित् काहूकै भोजनतै अजीर्ण भया होय, तौ तिस भयतै भोजन करना छांड़ै तौ मरण ही होय। तैसै आपकै निर्वाह होता जानै, तितनी प्रतिज्ञा करै। कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातै भ्रष्टपना भया होय, तौ तिस भयतै प्रतिज्ञा करनी छाडै तौ असयम ही होय। तातै बनै सो प्रतिज्ञा लैनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तौ कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकौ करै है। जो तहां उद्यम करै है, तौ त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेगे, तेरा कर्त्तव्य न मानैगे। तातै काहेकौ स्वच्छन्द होने की युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।

## शुभोपयोग सर्वथा हेय नहीं है

बहुरि वह पूजनादि कार्यकौ शुभास्रव जानि हेय मानै है। सो यहु सत्य है। परन्तु जो इनि कार्यनिकौ छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तौ भले ही है। अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्तै, तौ अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतै स्वर्गादि होय वा भली वासना तै वा भला निमित्ततै कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय, तौ सम्यक्त्वादिककी भी प्राप्ति होय जाय। बहुरि अशुभोपयोगतै नरक निगोदादि होय, वा बुरी वास-

नातै वा बुरा निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग बध जाय, तौ सम्यक्ता-दिक महा दुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होतैं कषाय मद हो है। अशुभोयोगहोतै तीव्र हो है। सो मदकपायका कारण छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तौ ऐसा है, जैसैं कडवी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषै शुभ अशुभकौ समान कह्या है, तातै हमकौ तौ विशेष जानना युक्त नाही।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकौ मोक्षका कारण मानि उपादेय मानै है, शुभोपयोगकौ नाही पहिचानैं हैं, तिनिकौ शुभ अशुभ दोऊनिकौ अशुद्धताकी अपेक्षा वा बधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए है। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तौ शुभ-भावनि विषै कषायमद हो है, तातै बध हीन हो है। अशुभभावनिविषैं कषायतीव्र हो है, तातैं बंध बहुत हो है? ऐसैं विचार किए अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषै शुभकौ भला भी कहिए है। जैसैं रोग तौ थोरा वा बहुत बुरा ही है। परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगको भला भी कहिए। तातै शुद्धोपयोग नाही होय, तब अशुभतै छूटि शुभविषैं प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभकौ छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाही।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकौ अशुभरूप प्रवृत्ति तौ भए विना रहती नाही, अर शुभप्रवृत्ति चाहकरि करनीपरै है। ज्ञानीकै चाह चाहिए नाही। तातै शुभका उद्यम नाही करना।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषैं उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततै विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो है अर क्षुधादिकविषै भी सक्लेश थोरा हो है। तातै शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीड रहे है तौ ताके अर्थि जैसै थोरा पाप लागै, सो करना। बहुरि शुभोपयोगकौ छोडि निश्शक पापरूप प्रवर्त्तना तौ युक्त नाही। बहुरि तू कहै—ज्ञानीकै चाह नाही अर शुभोपयोग चाह किए हो है सो जैसै पुरुष किचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाही, परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानै, तहाँ चाहकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसै ज्ञानी किचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाही। परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानै तहाँ चाहकरि स्तोक कषायरूप शुभकार्य करनेका उद्यम करै है। ऐसै यहु बात सिद्ध भई–जहाँ शुभोपयोग होता जानै, तहाँ तौ शुभकार्यका निषेध ही है अर जहाँ अशुभोपयोग होता जानै, तहाँ शुभकौ उपायकरि अंगीकार करना युक्त है। या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यकौ उथापि स्वच्छन्दपनाकौ स्थापै है, ताका निषेध किया।

## केवलनिश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—

एक शुद्धात्माकौ जाने ज्ञानी हो है—अन्य किछू चाहिए नाही, ऐसा जानि कबहूँ एकांत तिष्टकरि ध्यानमुद्रा धारि मै सर्वकमउपाधि-रहित सिद्धसमान आत्मा हूँ, इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसै सभवै है? असभव है, ऐसा विचार नाही। अथवा अचल

अखड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकौ ध्यावै है, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषै भी सम्भवै है। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा है, सो विचार नाही। बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषै ऐसा विचार राखि आपकौ ज्ञानी मानै है। बहुरि ज्ञानीकै आस्रव बध नाही, ऐसा आगमविषै कह्या है तातै कदाचित् विषय-कषायरूप हो है। तहाँ बध होनेका भय नाही है। स्वच्छन्द भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है सो आपा परकौ जाननेका तौ चिन्ह वैराग्यभाव है, समयसारविषै कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।"*

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसौ ज्ञानवैराग्यशक्ति होय। बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व शून्याः** ॥५॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मै सम्यग्दृष्टी हू, मेरै कदाचित् बध नाही, ऐसै ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसै रागी वैराग्य शक्ति

* सम्यग्दृष्टे र्भवतिनियत ज्ञानवैराग्यशक्तिः, स्व वस्तुत्व कलयितुमय स्वान्य रूपाप्तिमुक्त्या। यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिद तत्त्वत स्व पर च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सवतो रागयोगात्॥ निर्जरा० ४

** समयसार कलशा में "शून्यः" के स्थान पर "रिक्त." पाठ है।

रहित भी आचरण करै है, तौ करौ, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकों अवलम्बै है तौ अवलम्बो, जातैं वे ज्ञानशक्ति विना अजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकौ पर जान्या, तौ परद्रव्यविषै रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहां वह कहै है—मोहके उदयतैं रागादि हो हे। पूर्वैं भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकैं भी विषय कषायरूप कार्य भया सुनिये है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो है यहु सत्य, परन्तु बुद्धिपूर्वक रागादिक होते नाही। सो विशेष वर्णन आगैं करैंगे। बहुरि जाकै रागादिक होनेका किछू विषाद नाही, तिनकै नाशका उपाय नाही, ताकै रागादिक बुरे है ऐसा श्रद्धान भी नाही सम्भवै है। ऐसैं श्रद्धानविना सम्यग्दृष्टी कैसै होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तौ इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषायनिकी प्रवृत्ति जैसैं हो है, सो भी विशेष आगे कहैंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द होगा, तौ तेरै तीव्र आस्रव बध होगा। सोई कह्या है—

**मग्ना: ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दोद्यमाः*।**

* मग्ना: कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञान न जानन्ति ये।
मग्ना: ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमा.॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सतत ज्ञान भवन्त. स्वय।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वश यान्ति प्रमादस्य च॥ —नाटक समयसार

तहाँ वह पूछै है—यहाँ तौ बहुत विकल्प भए, निर्विकलपसंज्ञा कैसे सम्भवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाही है। जातैं छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। ताका अभाव माने ज्ञानका अभाव होय, तब जड़पना भया सो आत्माकै होता नाही। तातैं विचार तौ रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाही। तौ सामान्यका विचार तौ बहुतकाल रहता नाही वा विशेषको अपेक्षा विना सामान्यका स्वरूप भासता नाही। बहुरि कहिए—आपहीका विचार रहता है, परका नाही, तौ परविषै परबुद्धि भए विना आपविषै निजबुद्धि कैसे आवै ? तहाँ वह कहै है, समयसारविषै ऐसा कह्या है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥५-११८॥

याका अर्थ यहु—भेदविज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतैं छूटे ज्ञान है सो ज्ञानविषै स्थित होय। तातैं भेद विज्ञान छूटै परका जानना मिटि जाय है। केवल आपहीकौ आप जान्या करै है।

सो यहाँ तौ यहु कह्या है—पूर्वै आपा परकौ एक जानै था, पीछैं जुदा जाननेकौ भेदविज्ञानकौ तावत् भावना ही योग्य है, यावत्ज्ञान पररूपकौ भिन्न जानि अपने ज्ञानस्वरूपहीविषै निश्चित होय। पीछैं भेदविज्ञान करनेका प्रयोजन रह्या नाही। स्वयमेव परकौं पररूप आपकौ आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाही, जो परद्रव्यका जानना

ही मिटि जाय है। तातैं परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जानने का नाम विकल्प नाही है। तौ कैसैं है? सो कहिए है—राग द्वेषके वशतैं किसी ज्ञेयके जाननेविषै उपयोग लगावना, किसी ज्ञेयके जाननेतैं छुड़ावना ऐसैं बारबार उपयोगका भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाकौ जानै है, ताकौ यथार्थ जानै है। अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगकौ नाही भ्रमावै है तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तौ नाना ज्ञेयविषै भ्रमै ही भ्रमै। तहाँ निर्विकल्पता कैसैं सम्भवै है?

ताका उत्तर—जेते काल एक जाननेरूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्तविषै ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है "**एकाग्रचिंता-निरोधो ध्यानम्**।"१ (तत्त्वा० सू० ९-२७)

एकका मुख्य चितवन होय अर अन्य चिता रुकै, ताका नाम ध्यान है। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीकाविषै यहु विशेष कह्या है-जो सर्वचिंता रुकनेका नाम ध्यान होय तौ अचेतनपनों होय जाय। बहुरि ऐसी भी विविक्षा है जो सतानअपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय। परन्तु यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोगकौ भ्रमावै नाही, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।

बहुरि वह कहै ऐसैं है, तौ परद्रव्यतैं छुड़ाय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का उपदेश काहेकौ दिया है?

---

१—'उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्' ऐसा पूरा सूत्र है।

समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिकौं कारण पर द्रव्य
पै उपयोग लगे जिनकै राग द्वेष होइ आवै है, अर स्वरूप-
रै तौ राग द्वेष घटै है, ऐसैं नीचली अवस्थावारे जीवनिकौं
पदेश है। जैसै कोऊ स्त्री विकारभावकरि काहूके घर जाय
। मनै करी—परघर मति जाय, घरमैं बैठि रहौ। बहुरि
निर्विकार भावकरि काहूके घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्तै तौ
है नाही। तैसै उपयोगरूप परणति राग-द्वेषभावकरि
निविषै प्रवर्त्तै थी, ताकौ मनै करी—परद्रव्यनिविषै मति
वर्त्तै, स्वरूपविषै मग्न रहौ। बहुरि जो उपयोगरूप परणति
वीतरागभावकरि परद्रव्यकौ जानि यथायोग्य प्रवर्त्तै, तौ किछू दोष
है नाही।

बहुरि वह कहै है—ऐसै है, तौ महामुनि परिग्रहादिक चितवनका
त्याग काहेकौ करै है।

ताका समाधान—जैसै विकाररहित कुशीलके कारण परघर-
निका त्याग करै, तैसै वीतरागपरणति राग द्वेषके कारण परद्रव्यनि
का त्याग करै है। बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाही, ऐसे परघर जाने-
का त्याग है नाही। तैसै जे राग द्वेषकौ कारण नाही, ऐसे परद्रव्य
जाननेका त्याग है नाही।

बहुरि वह कहै है—जैसै जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके
घरि जाय तौ जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य
नाही। तैसै परणतिकौ प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना।
बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाही।

ताका समाधान—जैसैं स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसैं परणति तत्वनिका विशेष जाननेके कारण गुणस्थानादिक व कर्म्मादिककौ भी जानै। बहुरि यहाँ ऐसा जानना—जैसैं शीलवती स्त्री उद्यमकरि तौ विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहाँ जाना बनि जाय, तहाँ कुशील न सेवै तौ स्त्री शीलवती ही है। तैसैं वीतराग परणति उपायकरि तौ रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषै न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहाँ रागादिक न करै तौ परणति शुद्ध हो है। तातैं स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिकौ जानै ही नाही, अपने स्वरूपही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानै तौ है, परन्तु रागादिक नाही करै है। या प्रकार परद्रव्यकौ जानतै भी वीतराग-भाव हो है ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसैं है तौ शास्त्रविषै ऐसैं कैसे कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका समाधान—अनादितैं परद्रव्यविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुड़ावनेकौ यहु उपदेश है। आपही विषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषै रागद्वेषादि परणतिकरनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतैं सम्यग्दर्शनादि न होते होय, तौ केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहाँ परद्रव्यकौ बुरा जानना, निज द्रव्यकौ भला जानना, तहाँ तौ रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपकौ आपरूप परकौ पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसैं ही

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मद उद्यमी हो है, ते संसारविषैं डूबे और भी तहाँ **"ज्ञानिन कर्म्म न जातु कर्तुमुचितं"**—इत्यादि कलशाविषैं वा **"तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनः"**—इत्यादि कलशाविषैं स्वछन्द होना निषेध्या है। बिना चाह जो कार्य होय, सो कर्मबन्धका कारण नाहीं। अभिप्रायतैं कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तौ बनै नाहीं, इत्यादि निरूपण किया है। तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहाँ अनुक्रमविषै पहलै तीव्ररागादि छोडनेके अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभकार्यविषै लागना, पीछें मंदरागादि भी छोडनेके अर्थि शुभकौ भी छोरि शुद्धोपयोगरूप होना। बहुरि केई जीव अशुभविषै क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिकौ भी घटावै है। बहुरि शुभकौ हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषै नाहीं प्रवर्त्तै है। वीतरागभावरूप शुद्धोपयोगकौ प्राप्त भए नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होतसते आलसी निरुद्यमी हो है। तिनकी निन्दा पचास्तिकायकी व्याख्याविषै कीनी है। तिनकौ दृष्टान्त दिया है—जैसैं बहुत खीर खाड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसैं वृक्ष निरुद्यमी है, तैसैं ते जीव आलसी निरुद्यमी भए है।

अब इनकौ पूछिए है—तुम बाह्य तौ शुभ अशुभकार्यनिकौ घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बनबिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहाँ रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चितवन करै है, तौ शास्त्रादिकरि अनेक प्रकारका आत्माका विचारकौ तौ तुम विकल्प

ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमै बहुत काल लागै नाही, बारम्बार एकरूप चितवनविषै छद्मस्थका उपयोग लगता नाही। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसै न रहि सकै तातै वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषै प्रवर्तै है। तेरा उपयोग गणधरादिकत भी कैसे शुद्ध भया मानिए। तातै तेरा कहना प्रमाण नाही। जैसै कोऊ व्यापारादिविषै निरुद्यमी होय ठाला जैसै तैसै काल गुमावै, तैसै तू धर्म्मविषै निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँ ही काल गमावै है। कबहू किछू चितवनसा करै, कबहू बातै बनावै, कबहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेकौ शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्तिआदि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता नाही। सूनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहाँ क्लेश थोरा होनेतै जैसै कोई आलसी होय परचा रहने मै सुख मानै, तैसै आनन्द मानै है। अथवा जैसै सुपनेविषै आपकौ राजा मानि सुखी होय, तैसै आपकौ भ्रमतै सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है। अथवा जैसै कहीं रति मानि सुखी हो है तैसै किछू विचार करनेविषै रतिमानि सुखी होय, ताकौ अनुभवजनित आनन्द कहै है। बहुरि जैसै कहीं अरति मानि उदास होय, तैसै व्यापारादिक पुत्रादिककौ खेदका कारण जानि तिनतै उदास रहै है, ताकौं वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तौ कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषै निराकुलता होय, सो सांचा आनन्द ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्रमोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोडि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुवा प्रवर्त्तै है। आपकौ तहाँ कषायरहित मानै है, सो ऐसै आनन्दरूप

भए तौ रौद्रध्यान हो है । जहा सुखसामग्री छोड़ि दुखसामग्रीका सयोग भए सक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तहां निःकषायभाव हो है। ऐसैं भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाईए है। या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलम्बी है, ते मिथ्यादृष्टी जानने। जैसैं वेदांती वा साख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं, तैसें ए भी जानने। जातैं श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनकौ इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनकौ इष्ट लागै है ।

## स्व-द्रव्य परद्रव्य चिन्तवन-द्वारा निर्जरा व आस्रव और बंधका प्रतिषेध

बहुरि तिन जीवनिकैं ऐसा श्रद्धान है—जो केवल शुद्धात्माका चितवनतैं तौ सवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुखका अश तहा प्रगट हो है। बहुरि जीवके गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप विना अन्य जीव पुद्गलादिकका चितवन किए आस्रव बध हो है। तातैं अन्य विचारतैं पराङ्मुख रहै है। सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाही, जातैं शुद्ध स्वद्रव्यका चितवन करौ, वा अन्य चितवन करौ, जो वीतरागता लिए भाव होय, तौ तहाँ संवर निर्जरा ही है अर जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहाँ आस्रव बध हो है। जो परद्रव्यके जाननेहीतैं आस्रव बध होय तौ केवली तो समस्त परद्रव्यकौ जानैं है, तिनकै भी आस्रव बंध होय। बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै परद्रव्य चितवन होतैं आस्रव बध हो है। सो भी नाही, जातैं शुक्ल-ध्यानविषैं भी मुनिनिकैं छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायनिका चिन्तवन

होना निरूपण किया है वा अवधिमनःपर्ययादिविषैं परद्रव्यके जाननेहीकी विशेषता हो है। बहुरि चौथा गुणस्थानविषैं कोई अपने स्वरूपका चिंतवन करै है, ताकै भी आस्रव बंध अधिक है वा गुण श्रेणी निर्जरा नाही है। पचम षष्टम गुणस्थानविषै आहार विहारादि क्रिया होतैं परद्रव्य चिंतवनतै भी आस्रव बध थोरा हो है वा गुणश्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका चिंतवनतै निर्जरा बध नाही। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बध है। ताकौ रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाही, तातैं अन्यथा मानै है।

## निर्विकल्प-दशा विचार

तहाँ वह पूछै है कि ऐसैं है तौ निर्विकल्प अनुभव दशाविषैं नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प-करनेका निषेध किया है, सो कैसे है,?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषै लगि रहे हैं, अभेद-रूप एक आपाकौ अनुभवैं नाही है, तिनकौ ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चय करनेकौ कारन है। वस्तुका निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाही। तातैं इन विकल्पनिकौ भी छोडि अभेदरूप एक आत्माका अनुभव करना। इनिके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाही। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछैं ऐसा नाही, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चितवन रह्या करैं। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिए होय, तिसहीका नाम निर्विकल्पदशा है।

ताका समाधान—जो आप्तके भासे शास्त्र है, तिनिविषै कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातै कै तौ जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय,तौ असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाही, तातै परीक्षा नीकी नाही करी है, तातै भ्रम है।

बहुरि वह कहै है—छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय, तौ कहा करै ?

ताका समाधान—सांची झूंठी दोऊ वस्तुनिकौ मीड़े अर प्रमाद छोडि परीक्षा किए तौ साची ही परीक्षा होय। जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहाँ ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषैं परस्पर विरुद्ध कथन तौ घने, कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषै देव गुरू धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत है, सो इनिकी परीक्षा करि लैनी। जिन शास्त्रनिविषै ए साचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जैसे लोकविषै जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषै झूठ न बोलै, सो प्रयोजनरहित कार्यनिविषै कैसे झूठ बोलेगा। तैसै जिस शास्त्रविषै प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिसविषै प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसै होय ? जातै देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जाँय है।

इहाँ प्रश्न—देवादिकका कथन तौ अन्यथा विषयकषायतै किया, तिस ही शास्त्रनिविषै अन्य कथन अन्यथा काहेकौ किया ?

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथा पना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाही । तातै घने कथन अन्यथा करनेतै जुदी पद्धति ठहरै। तहाँ तुच्छ बुद्धि भ्रममें पड़ि जाय—यहु भी मत है । तातै प्रयोजनभूतका अन्यथापनाका मेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घने किए । बहुरि प्रतीति अनावने, के अर्थि कोई२ साँचा भी कथन किया । परन्तु स्याना होय सो भ्रम मे परै नाही। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहाँ साच भासै, तिस मतकी सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमतही सांचा भासै है। जातै याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूंठ काहेकौ कहै। ऐसै जिन आज्ञा मानै,सो साँचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञासम्यक्त्व है। बहुरि तहाँ एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्म ध्यान है। जो ऐसै न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तौ जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रह्या ? तातै किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है। लोकविषै भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तै कह्या—जिनवचनविषै संशय करनेतै सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कैसे है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहाँ शंका नाम दोष हो है । बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तौ अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतै परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेकौ कह्या? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसै कहे। प्रमाण नयतै पदार्थनिका

निर्णय करनेका उपदेश काहेकौ दिया। तातै परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुषाँ अपना कल्पित कथन किया है अर तिनको जिनवचन ठहराया है, तिनकौ जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहाँ भी प्रमाणादिकतै परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितै विधि मिलाय वा ऐसै सम्भवै है कि नाही,ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थको मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामैं लिखनेवालेका नाम किसी साहूकारका धरचा, तिस नामके भ्रमतै धनको ठिगावै, तौ दरिद्री होय। तैसै पापी आप ग्रथादि बनाय, तहाँ कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरचा, तिस नामके भ्रमतै झूंठा श्रद्धान करै, तौ मिथ्यादृष्टी ही होय।

बहुरि वह कहै है—**गोम्मटसार*** विषै ऐसा कह्या है—सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञानगुरुके निमित्ततै झूंठ भी श्रद्धान करै तौ आज्ञा माननेतै सम्यग्दृष्टि ही होय है। सो यहु कथन कैसे किया है ?

ताका उत्तर—जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाही, सूक्ष्मपनेतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तौ सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाही, यहु निश्चय करना। तातै बिना परीक्षा किए केवल आज्ञाही करि जैनी है, ते भी मिथ्यादृष्टि जानने। बहुरि केई परीक्षा करि भी जैनी है, परन्तु मूल परीक्षा नाही करै है। दया शील तपसंयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अति-

* सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ २७ ॥

शय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतै इष्टप्राप्ति होनेकरि जिनमतकौ उत्तम जानि प्रीतवत होय जैनी होय है । सो अन्यमतविषै भी तो ए कार्य पाईए है, तातै इन लक्षणनिविषै अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै—जैसै जिनधर्मविषै ए कार्य है, तैसै अन्यमतविषै नाही पाइए है। तातै अतिव्याप्ति नाही।

ताका समाधान—यहु तौ सत्य है, ऐसै ही है । परन्तु जैसै तू दयादिक मानै है, तैसै तौ वे भी निरूपै है। परजीवनिकी रक्षाकौ दया तू कहै, सोई वे कहै है। ऐसे ही अन्य जानने।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाही। कबहूँ दया प्ररूपै, कबहूँ हिंसा प्ररूपै ।

ताका उत्तर—तहाँ दयादिकका अंशमात्र तौ आया। तातैं अतिव्याप्तिपना इन लक्षणनिकै पाइए है। इनकरि साची परीक्षा होय नाही। तौ कैसै होय। जिनधर्मविषै सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है। तहाँ साचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनकौ जाने सम्यग्ज्ञान होय वा साचा रागादिक मिटे सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप जैसे जिनमतविषै निरूपण किया है, तैसै कही निरूपण किया नाही वा जैनीविना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाही। तातै यहु जिनमतका सांचा लक्षण है। इस लक्षण कौ पहचानि जे परीक्षा करै, तेई श्रद्धानी है । इस विना अन्यप्रकार करि परीक्षा करै है, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै है।

बहुरि केई सगतिकरि जैनधर्म धारै हैं। केई महान्पुरुषको जिनधर्मविषै प्रवर्त्तता देखि आप भी प्रवर्त्तै है। केई देखा देखी

श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो है, ऐसैं जानना। तातैं बहुत कहा कहिए, जैसैं रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसैं रागादि मिटावनेका जानना होय सो ही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसैं रागादि मिटैं सो ही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रकार निश्चयनयका आभास; लिए एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनकै मिथ्यात्वका निरूपण किया।

## एकान्तपक्षी व्यवहारावलम्बी जैनाभास

अब व्यवहाराभास पक्षके जैनाभासनिकै मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है—जिनआगमविषै जहाँ व्यवहारकी मुख्यताकरि उपदेश है, ताकौ मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनकै सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावकौ प्राप्त होय है सो विशेष कहिए है। यहाँ ऐसा जानि लेना, व्यवहारधर्मकी प्रवृत्तितैं पुण्यबंध होय है, तातैं पापप्रवृत्ति अपेक्षा तौ याका निषेध है नाहीं। परन्तु इहाँ जो जीव व्यवहार प्रवृत्तिहीकरि सन्तुष्ट होय, साँचा मोक्षमार्गविषै उद्यमी न होय है, ताकौ मोक्षमार्गविषै सन्मुख करनेकौ तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताकौ सुनि जो शुभप्रवृत्ति छोडि अशुभविषै प्रवृत्ति करोगे, तौ तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषै प्रवर्तोगे, तौ तुम्हारा भला होगा। जैसैं कोऊ रोगी निर्गुण औषधि का निषेध सुनि औषधि साधन छोडि कुपथ्य करेगा, तौ वह मरेगा, वैद्यका किछू दोष है नाहीं। तैसैं ही कोउ संसारी पुण्यरूपधर्मका

निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषय कषायरूप प्रवर्त्तेगा, तौ वह ही नरकादिविषै दुःख पावेगा। उपदेश दाताका तौ दोष नाही। उपदेश देनेवालेका तौ अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुडाय मोक्षमार्गविषै लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतै इहाँ निरूपण कीजिए है।

## कुल अपेक्षा धर्म विचार

इहाँ कोई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी है, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाही। परन्तु कुलविषै जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसै प्रवर्त्तै है। सो जैसै अन्यमती अपने कुलधर्मविषै प्रवर्त्तै है, तैसै ही यहु प्रवर्त्तै है। जो कुलक्रमहीतै धर्म होय, तौ मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्म विशेष कहा रह्या? सोई कह्या है।

**लोयम्मि रायणीई णायं ण कुलकम्मि कइयावि।**
**किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥**

(उप सि र. गा. ७)

याका अर्थ—लोकविषै यहु राजनीति है—कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाहीं होय है। जाका कुल चोर होय, ताकौ चोरी करता पकरै, तौ वाका कुलक्रम जानि छोडै नाही, दंड ही दे। तौ त्रिलोकप्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषै कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय, तहाँ तौ कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाही तो धर्मविषै कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहाँ कुलक्रम कैसै रह्या? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तौ पुत्र भी नरकगामी होय। तातै धर्मविषै कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाही। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो

कालदोष तै जिनधर्म विषै भी पापी पुरुषनिकरि कुदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषयकषायपोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्याग करि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्त्तना योग्य है।

इहाँ कोऊ कहै—परम्परा छोडि नवीन मार्गविषै प्रवर्तना योग्य नाही। ताकौ कहिए है—

जो अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै,तौ युक्त नाही। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषै लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमे पापीपुरुषा अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तौ ताकौ परम्परा मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताको छोड़ि पुरातन जैनशास्त्रनिविषै जैसा धर्म लिख्या था, तैसे प्रवर्त्तै, तौ ताकौ नवीन मार्ग कैसै कहिए। बहुरि जो कुलविषै जैसे जिनदेवकी आज्ञा है, तैसै ही धर्म्म प्रवृत्ति है, तौ आपको भी तैसे ही प्रवर्तना योग्य है। परन्तु ताको कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्च करि अंगीकार करना। जो साचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है, तौ वाकौ धर्मात्मा न कहिए। जातै सर्व कुलके उस आचरणको छोडै, तौ आप भी छोडि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है, सो कुलका भयकरि करै है। किछू धर्मबुद्धितै नाही करै है, तातैं वह धर्मात्मा नाही। तातै विवाहादि कुलसम्बन्धी कार्यनिविषै तौ कुलक्रमका विचार करना और धर्मसम्बन्धी कार्यविषै कुलका विचार न करना। जैसै धर्ममार्ग साँचा है, तैसै प्रवर्तना योग्य है।

## परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्वका प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी हो है। जैसै शास्त्रविषै

आज्ञा है, तैसें मानै है। परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाही। सो आज्ञा ही मानना धर्म होय, तौ सर्व मतवाले अपने २ शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होय। तातैं परीक्षाकरि जिनवचननिकौ सत्यपनो पहिचानि जिनआज्ञा माननी योग्य है। विना परीक्षा किए सत्य असत्य का निर्णय कैसे होय! अर विना निर्णय किए जैसैं अन्यमती अपने अपने शास्त्रनिकी आज्ञा मानै है, तैसें याने जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी। यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोउ कहै, शास्त्रविषै दश प्रकार सम्यक्त्वविषें आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है, वा आज्ञाविचय धर्मध्यानका भेद कह्या है, वा निःशंकित अंगविषै जिनवचनविषै संशय करना निषेध्या है, सो कैसें है?

ताका समाधान—शास्त्रनिविषै कथन केईतौ ऐसे है, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है। बहुरि केई कथन ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाही। तातैं आज्ञाहीकरि प्रमाण होय है। तहाँ नाना शास्त्रनिविषैं जो कथन समान होय, तिनकी तौ परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाही। बहुरि जो कथन परस्परविरुद्ध होइ, तिनिविषै जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, तिनकी तौ परीक्षा करनी। तहाँ जिन शास्त्रके कथनकी प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषै जो प्रत्यक्ष अनुमानगोचर नाही, ऐसे कथन किए होय, तिनकी भी प्रमाणता करनी। बहुरि जिन शास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमाणता माननी।

इहाँ कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषै प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषै अप्रमाण भासै तौ कहा करिए?

जिनधर्मकी शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है । इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाही पहिचानै है अर जैनी नाम धरावै है,ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जानने । इतना तो है, जिनमतविषै पापकी प्रवृत्तिविशेष नही होय।सकै है अर पुण्यके निमित्त घने है । अर साचा मोक्षमार्गके भी कारण तहाँ बनि रहे है । तातै जे कुलादिकरि भी जैनी है, ते भी औरनितै तौ भले ही है ।

## आजोविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बड़ाईके अर्थि वा किछू विषयकषायसम्बन्धी प्रयोजनविचारि जैनी होहै,ते तौ पापी ही है। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है । उनका सुलझना भी कठिन है । जैनधर्म तौ ससारका नाशिके अर्थि सेइए है । ताकरि जो ससारीक प्रयोजन साध्या चाहै, सो बड़ा अन्याय करै है । तातै ते तो मिथ्यादृष्टि है ही ।

इहाँ कोऊ कहै—हिसादिकरि जिन कार्यकौ करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए, तौ बुरा कहा भया । दोऊ प्रयोजन सधे ।

ताकौ कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय । जैसै कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकौ स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै, तौ पापा ही होय । हिसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै,तौ बनावो । परन्तु चैत्यालयविषै भोगादि करना युक्त नाही । तैसे धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीकौ आजीविका आदि पापका भी साधन करै, तो पापी ही होय । हिसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करे तौ करौ

परन्तु पूजादि कार्यनिविषै तौ आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसैं है तौ मुनि भी धर्मसाधि पर घर भोजन करैं है वा साधर्मीका उपकार करैं करावैं है, सो कैसैं बनैं ?

ताका उत्तर—जो आप तौ किछू आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि धर्म नाहीं साधै है, आपकौ धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै है,तौ किछू दोष है नाहीं। बहुरि जो आप ही भोजनादिकका प्रयोजन विचारि धर्मसाधै है,तो पापी है ही। जे विरागी होय मुनिपनो अंगीकार करै है,तिनिकै भोजनादिकका प्रयोजन नाहीं, शरीर की स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तौ ले, नाहीं तौ समता राखैं। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै है। उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। आपकै जाका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावैं। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तौ करो अर न करै तौ आपके किछू संक्लेश होता नाहीं। सो ऐसैं तौ योग्य है। अर आप ही आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहाँ भोजनादिक उपकार कोई न करै,तहाँ संक्लेश करै, याचना करै, उपाय करै वा धर्मसाधनविषै शिथिल होय जाय, सो पापी ही जानना। ऐसैं संसारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै है, ते पापी भी है अर मिथ्यादृष्टी है ही। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसैं पाइए है, सो विशेष दिखाइए है—

तहाँ केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्या देखी लोभादिकका अभिप्रायकरि धर्म साधै है, तिनिकै तौ धर्मदृष्टि नाहीं। जो भक्ति करै है

तौ चित्त तौ कही है, दृष्टि फिरचा करै है। अर मुखतै पाठादि करै है वा नमस्कारादि करै है। परन्तु यहु ठीक नाही—मै कौन हूँ, किसकी स्तुति करूँ हू, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करू हू, पाठविषैं कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाही। बहुरि कदाचित् कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय। तहा सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेवकुगुरुकुशास्त्रादि विषै विशेष पहिचान नाही। बहुरि जो दान दे है, तौ पात्र अपात्रका विचाररहित जैसै अपनी प्रशसा होय तैसै दान दे है। बहुरि तप करै है तौ भूखा रहनेकरि महतपनौ होय सो कार्य करै है। परिणामनिकी पहिचान नाही। बहुरि व्रतादिक धारै है, तहा बाह्यक्रिया ऊपर दृष्टि है। सो भी कोई साची क्रिया करै है, कोई झूंठी करै है। अर अतरग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाही वा बाह्य भी रागादि पोषनेका साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है। तहा जैसे लोकविषे बड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे जाय, तैसै कार्य करै है। बहुरि हिसादिक निपजावै है। सो ए कार्य तौ अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारनेके अर्थि कहे है। बहुरि तहाँ किंचित् हिसादिक भी निपजै है, तौ थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है। सो परिणामनिकी पहचान नाही। अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफा टोटाका ज्ञान नाही वा विधि अविधिका ज्ञान नाही। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है। तहाँ पद्धतिरूप प्रवर्त्तै है। जो वाँचै है तौ औरनिकौ सुनाय दे है। जा पढै है तौ आप पढ़ि जाय है। सुनै है तौ कहै है सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है,ताकौ आप अतरग विषै

नाही अवधारै है। इत्यादि धर्म्मकार्यनिका धर्मकौ नाही पहिचानै। केईकै तौ कुलविषै जैसै बडे प्रवर्त्तै, तैसै हमकौ भी करना अथवा और करै है, तैसै हमकौ भी करना वा ऐसै किए हमारा लोभादिककी सिद्धि होगी, इत्यादि विचार लिएं अभूतार्थ धर्मकौ साधै है। बहुरि केई जीव ऐसे है, जिनकै किछू तौ कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है,तातै पूर्वोक्तप्रकार भी धर्मका साधन करै है अर किछू आगै कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकौ भी सुधारै है। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म्म साधै है परन्तु निश्चय धर्म्मकौ न जानै हैं। तातै अभूतार्थ रूप धर्मकौ साधे है। तहा व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकों मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै है। तहाँ शास्त्रविषै देव गुरु धर्मकी प्रतीति लिए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहतदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिकौ नमस्कारादि करनेका त्याग किया है परन्तु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाही करै है। अथवा परीक्षा भी करै है तो तत्वज्ञान पूर्वक साँची परीक्षा नाही करै है, बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै है। ऐसै प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषै प्रवर्त्तै है।

## अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहा अरहंत देव है, सो इन्द्रादिकरि पूज्य है, अनेक अतिशयसहित है, क्षुधाधि दोषरहित है, शरीरकी सुन्दरताको धरै है, स्त्रीसगमादि रहित है, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए है, इत्यादि विशेषण कहै है। तहाँ इनविषै केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं, तिनकौ

भिन्न भिन्न नाही पहिचानै है। जैसै असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषै जीव पुद्गलके विशेषणकौ भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है, तैसै यह असमान जातीय अरहतपर्यायविषै जीव पुद्गलके विशेषणनिकौ भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है। बहुरि जे बाह्य विशेषण है, तिनकौ तौ जानि तिनकरि अरहतदेवकौ महतपनो विशेष मानै है। अर जे जीवके विशेषण है, तिनकौ यथावत् न जानि तिनकरि अरहतदेवको महतपनो आज्ञा अनुसार मानै है अथवा अन्यथा मानै है। जातै यथावत् जीवका विशेषण जानें, मिथ्यादृष्टी रहै नाही। बहुरि तिनि अरहंतनिकौ स्वर्गमोक्षका दाता दीनदयाल अधमउधारक पतितपावन मानै है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धित ईश्वरकौ जैसै मानै है, तैसै यहु अरहतकौ मानै है। ऐसा नाही जानै है—फलतौ अपने परिणामनिका लागै है, अरहतनिकौ निमित्त मानै है, तातै उपचारकरि वे विशेषण सम्भवै है। अपने परिणाम शुद्ध भए विना अरहत हू स्वर्गमोक्षादिका दाता नाही। बहुरि अरहंतादिकके नामादि-कतै श्वानादिक स्वर्ग पाया तहा नामादिकका ही अतिशय मानै है। विना परिणाम नाम लेनेवालौकै भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तौ सुननेवालेकै कैसै होय। श्वानादिककै नाम सुननेके निमित्ततै मदक-षायरूप भाव भए है, तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नाम-हीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहतादिकके नाम पूजनादिकतै अनिष्ट-सामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिककी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट अनिष्टका तौ कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहंत तौ कर्त्ता है नाही।

अरहतादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितै पूर्व पापका सक्रमणादिक होय जाय है । तातै उपचारकरि अनिष्टका नाशकौ, इष्टकी प्राप्तिकौ कारण अरहतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलैही ससारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताकै तौ पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसै होय? बहुरि तिनका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिकौ मुक्तिका कारण जानि तहाँ अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै है सो अन्यमती जैसे भक्ति तै मुक्ति मानै है तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तौ रागरूप है। रागतै बध है। तातै मोक्ष का कारण नाही। जब रागका उदय आवै, तब भक्ति न करै तौ पापानुराग होय। तातै अशुभ राग छोड़नेकौ ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तै है वा मोक्षमार्गकौ बाह्य निमित्तमात्र भी जानै है। परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानि सतुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है। सो ही पचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या है:—

**[1]इयं भक्तिः केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति ॥**

याका अर्थ—यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्र रागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानै रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित ज्ञानीकै भी हो है।

---

१ अय हि स्थल लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्यज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिन्ज्ञानिनोऽपि भवतीति० ॥ गा० १३६ ॥

तहा वह पूछे है, ऐसै है तौ ज्ञानीकै भक्तिकी विशेषता होती होगी।

ताका उत्तर—यथार्थपनेकी अपेक्षा तौ ज्ञानीकै साची भक्ति है, अज्ञानीकै नाही है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषै भी मुक्तिका कारण जाननेतै अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषै शुभबधका कारण जाननेतै तैसा अनुराग नाही है । बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है, ऐसा जानना। ऐसै देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

## गुरुभक्ति का अन्यथा रूप

अब गुरुभक्तिका स्वरूप कैसे हो है, सो कहिए है —

केई जीव आज्ञानुसारी है। ते तौ ए जैनके साधु है, हमारे गुरु है, तातै इनिकी भक्ती करनी,ऐसै विचार तिनकी भक्ति करै है। बहुरि केई जीव परीक्षा भी करै है। तहा ए मुनि दया पालै है, शील पालै है, धनादि नाही राखै है, उपवासादि तप करै है, क्षुधादि परीषह सहै है, किसीसौ क्रोधादि नाही करै है, उपदेश देय औरनिकौ धर्मविषै लगावै हैं, इत्यादि गुण विचारि तिनविषै भक्तिभाव करै है। सो ऐसे गुण तौ परमहसादिक अन्यमती है, तिनविषै वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषै भी पाईए है। तातै इनिविषै अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाही। बहुरि जिन गुणोको विचारै है, तिनविषै केई जीवाश्रित है, केई पुद्गलाश्रित है, तिनका विशेष न जानना, असमानजातीय मुनिपर्यायविषै एकत्व बुद्धितै मिथ्यादृष्टि ही रहै है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका

साँचा लक्षण है, ताकौं पहिचानैं नाहीं। जातैं यहु पहिचानिभए मिथ्यादृष्टी रहता नाहीं। ऐसैं मुनिनका सांचा स्वरूप ही न जानै, तौ साची भक्ति कैसैं होय? पुण्यबधकौ कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकौं पहचानि तिनकी सेवातैं अपना भला होना जानि तिनविषैं अनुरागी होय भक्ति करै है। ऐसैं गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

## शास्त्रभक्तिका अन्यथा रूप

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है:—

केई जीव तौ यहु केवली भगवान्‌की वानी है, तातैं केवलीके पूज्य होनेतैं यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करै है। बहुरि केई ऐसैं परीक्षा करै है—इन शास्त्रनिविषैं विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है तातैं ए उत्कृष्ट है, ऐसा जानि भक्ति करै है। सो ऐसा कथन तौ अन्य शास्त्र वेदादिक तिनविषैं भी पाईए है। बहुरि इन शास्त्रनिविषै त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है, तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करै है। सो इहाँ अनुमानादिकका तौ प्रवेश नाहीं। सत्य असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसैं जानिए। तातैं ऐसैं सांची परीक्षा होय नाहीं। इहां अनेकान्तरूप साचा जीवादितत्वनिका निरूपण है अर साचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है। ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताकौं नाहीं पहिचानै है। जातैं यहु पह-चानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं। ऐसैं शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या।

या प्रकार याकै देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातैं व्यवहार-सम्यक्त्व भया मानै है। परन्तु उनका साचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी साची भई नाहीं। सांची प्रतीति विना सम्यक्तकी

प्राप्ति नाही। तातै मिथ्यादृष्टी ही है। बहुरि शास्त्रविषे **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** ( तत्वा० सू० १-२ ) ऐसा वचन कह्या है। तातै जैसै शास्त्रनिविषै जीवादि तत्व लिखे है,तैसै आप सीखिले है। तहाँ उपयोग लगावै है। औरनिकौ उपदेशै है, परन्तु तिन तत्वनिका भाव भासता नाही। अर इहा तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्व कह्या। सो भाव भासै विना तत्वार्थश्रद्धान कैसै होय ? भावभासना कह्या ? सो कहिए है —

जैसै कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकौ सीखै है। परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाही पहिचानै है। स्वरूपपहिचान भए विना अन्य स्वरादिककौ अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है तौ निर्णयकरि नाही मानै है। तातै वाकै चतुरपनो होय नाही। तैसैं कोऊ जीव सम्यक्ती होनेके अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्वनिका स्वरूपकौ सीखै है। परन्तु तिनके स्वरूपकौ नाही पहिचानै है। स्वरूप पहिचानै बिना अन्य तत्त्वनिकौ अन्य तत्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानै है तौ निर्णयकरि नाही मानै है । तातै वाकै सम्यक्त्व होय नाही। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ़या है वा न पढ़या है,जो स्वरादिकका स्वरूपकौ पहिचानें है, तौ वह चतुर ही है। तैस शास्त्र पढ़या है वा न पढ़या है,जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानें है तौ वह सम्यग्दृष्टी ही है। जैसै हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानै है अर ताका स्वरूप कौ पहिचानै है तैसै तुच्छबुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है अर तिनका स्वरूपकौ पहिचानै है। यहु मै हूँ, यहु पर है, ए भाव बुरे है, ए

भले है, ऐसैं स्वरूप पहिचानैं ताका नाम भावभासना है। **शिवभूति***
मुनि जीवादिकका नाम न जानैं था अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोष..
लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरू.
ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अगके पाठी जीवादि
तत्वनिका विशेषभेद जानैं परन्तु भाव भासैं नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी ही
रहै है। अब याकै तत्वश्रद्धान किस प्रकार हो है सो कहिए है—

## जीव अजीव तत्व का अन्यथा रूप

जिनशास्त्रनिविषै कहे जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान
मार्गणादिरूप भेदनिकौ जानै है, अर अजीवके पुद्गलादि भेदनिकौ
वा तिनके वर्णादि विशेषनिकौ जानै है। परन्तु अध्यात्मशास्त्र विषै
भेदविज्ञानकौ कारणभूत वा वीतरागदशा होनेकौ कारणभूत जैसै
निरूपण किया है, तैसें न जानै है। बहुरि किसी प्रसगतै तैसे भी
जानना होय, तौ शास्त्र अनुसारि जानि तौ ले है। परन्तु आपकौ आप
जानि परका अश भी न मिलावना अर आपका अश भी परविषै न
मिलावना, ऐसा साँचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसै अन्य मिथ्यादृष्टी
निर्धार बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपनाविषै वा वर्णादिविषै अहबुद्धि
धारै है, तैसै यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषै वा शरीराश्रित उपदेश
उपवासादि क्रियानिविषै आपो मानै है। बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूँ
साँची बात भी बनावै परन्तु अतरग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातै
जैसै मतवाला माताको माता भी कहै, तौ स्याना नाहीं। तैसै याकौ

---

* तुसमास घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावोय।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ॥ —भावपा० ५३॥

सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई औरही की बातैं करता होय,तैसे आत्माका कथन करै, परन्तु यहु आत्मा मैं हूँ, ऐसा भाव नाही भासै। बहुरि जैसे कोई औरकूं औरतैं भिन्न बतावता होय, तैसे आत्मा शरीरकी भिन्नता प्ररूपै। परन्तु मैं इस शरीरादिकतैं भिन्न हूँ, ऐसा भाव भासै नाही। बहुरि पर्यायविषै जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततैं अनेक क्रिया हो है, तिनकौं दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाही। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका साँचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तौ यह ही प्रयोजन था, सो भया नाही।

## आश्रव तत्व का अन्यथा रूप

बहुरि आस्रव तत्वविषैं जे हिंसादिरूप पापास्रव है, तिनकौं हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव है, तिनकौं उपादेय मानै है। सो ए तौ दोऊ ही कर्मबंधके कारण इन विषै उपादेयपनौ माननो, सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसार बंधाधिकारविषै कह्या है॰—

सर्व जीवनिकैं जीवन मरण सुख दु:ख अपने कर्मके निमित्ततैं हो है। जहाँ अन्य जीव अन्य जीवके इन कार्यनिका कर्त्ता होय, सोई मिथ्याध्यवसाय बंधका कारण है‡। तहाँ अन्य जीवनिकौं जिवावनेका

॰ समयसार गा० २५४ से २५६

‡ सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय,
कर्मोदयान्मरण-जीवित-दु:खसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य

वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तौ पुण्यबंधका कारण है, अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबधका कारण है। ऐसै अहिंसावत् सत्यादिक तौ पुण्यबधकौ कारण है, अर हिंसावत् असत्यादिक पापबधकौ कारण है। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय है, ते त्याज्य है। तातै हिंसादिवत् अहिंसादिककौ भी बधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसाविषै मारनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मरै नाही, अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधै है। अहिंसाविषै रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसै ए दोऊ हेय है। जहाँ वीतराग होय ज्ञाता दृष्टा प्रवर्त्तै, तहाँ निर्बन्ध है। सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त रागरूप प्रवर्त्तौ। परन्तु श्रद्धान तौ ऐसा राखौ—यहु भी बधका कारण है—हेय है। श्रद्धानविषै याकौ मोक्षमार्ग जाने मिथ्यादृष्टी ही है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ए आस्रवके भेद है, तिनकौ बाह्यरूप तौ मानै, अतरग इन भावनिकी जातिकौ पहिचानै नाही। तहा अन्य देवादिकसेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकौ मिथ्यात्व जानै, अर अनादिअगृहीतमिथ्यात्व है ताकौ न पहिचानै। बहुरि बाह्य त्रस-

कुर्यात्पुमान मरण जीवित दुःख सौख्यम् ॥६॥
अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य,
पश्यन्ति ये मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्।
कर्म्माण्यहं कृतिरमेन चिकीर्षवस्ते,
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥७॥
—समयसार कलशा बंधाधिकार

स्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषै प्रवृत्ति ताकौ अविरत जानै। हिंसाविषै प्रमादपरणति मूल है अर विषय सेवनविषै अभिलाषा मूल है, ताकौ न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताकौ कषाय जानै, अभिप्रायविषै रागद्वेष बसै ताकौ न पहिचानै। बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताकौ योग जानै, शक्तिभूत योगनिको न जानै। ऐसै आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै। बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव है, तिनका तौ नाश करनेकी चिंता नाही। अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै, सो तिनके मेटै आश्रव मिटता नाही। द्रव्यलिंगीमुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषै न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करै है, मन वचन कायकौ रोकै है, तौ वाकै मिथ्यात्वादि च्यारौ आस्रव पाईए है। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै, तौ ग्रैवेयक पर्यंत कैसै पहुँचै। तातै जो अंतरंग अभिप्रायविषै मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव है, सोही आस्रव है। ताकौ न पहिचानै, तातै याकै आस्रवतत्वका भी सत्य श्रद्धान नाही।

## बंध तत्व का अन्यथा रूप

बहुरि बंधतत्वविषै जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताकौ तौ बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकौ भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषै द्वेष, सुख सामग्रीविषै राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुःखसामग्रीविषै राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुखदुःखसामग्रीविषै राग द्वेष करना।

बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तौ अघाति कर्मनिविषैं हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाही। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषै घातिकर्मनिका तौ निरंतरबंध होय, ते सर्व पापरूप ही है अर तेई आत्मगुणके घातक है। तातै अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होय, तिसविषै भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसै श्रद्धानतै बधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाही।

## संवर तत्वका अन्यथा रूप

बहुरि सवरतत्वविषै अहिसादिरूप शुभास्रव भाव तिनकौ संवर जानै है। सो एक कारणतै पुण्यबध भी मानै अर सवर भी मानै, सो वनै नाही।

यहाँ प्रश्न—जो मुनिनकै एकै काल एकभाव हो है, तहाँ उनकै बध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसै है?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे तिनकरि बध है। सो एक भावतै तौ दोय कार्य बनै परन्तु एक प्रशस्तरागहीतै पुण्यास्रव भी मानना अर सवर निर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषै भी यहु सरागता है, यहु विरागता है; ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टीहीकै होय। तातै अवशेष सरागताकौ हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहिचान नाही, तातै सरागभाव विषै सवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकौ उपादेय श्रद्धै है। बहुरि सिद्धातविषै गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र

इनकरि सवर हो है, ऐसा कह्या* है । सो इनकौ भी यथार्थ न श्रद्धै है । कैसैं, सो कहिए है —

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटै, पापचितवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै,सो गुप्ति मानै है । सो यहा तौ मनविषै भक्तिआदिरूप प्रशस्तरागादि नानाविकल्प हो है, वचन काय की चेष्टा आप रोकि राखी है तहाँ शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषै गुप्तिपनो बनै नाही । तातैं वीतरागभाव भए जहाँ मन वचन काय की चेष्टा न होय, सो ही सांची गुप्ति है । बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताकौ समिति मानै है । सो हिसाके परिणामनितै तौ पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितै सवर कहोगे तौ पुण्यबधका कारण कौन ठहरेगा । बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है । तहाँ रक्षाका प्रयोजन है नाही । तातै रक्षाहीके अर्थ समिति नाही है । तौ समिति कैसै हो है—मुनिनकै किचित् राग भए गमनादि क्रिया हो है । तहाॅ तिन क्रियानिविषै अति आसक्तताके अभावतै प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है । बहुरि और जीवनिकौ दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै है तातै स्वयमेव ही दया पलै है । ऐसैं साची समिति है । बहुरि बधादिकके भयतैं वा स्वर्गमोक्षकी चाहतै क्रोधादि न करै है, सो यहाॅ क्रोधादि करनेका अभिप्राय तौ गया नाही । जैसै कोई राजादिकका भयतै वा महतपनाका लोभतै परस्त्री न सेवै है, तौ वाकौ त्यागी न कहिए । तैसैं ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाही । तौ कैसे त्यागी होय ? पदार्थ अनिष्ट इष्ट

* स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः ।

—तत्त्वा० सू० ९-२

भासै क्रोधादि हो है। जब तत्वज्ञानके अभ्यासतै कोई इष्ट अनिष्ट न भासै, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजै, तब साँचा धर्म हो है। बहुरि अनित्यादि चिंतवनतै शरीरादिककौ बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतै उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै है। सो यहु तौ जैसै कोऊ मित्र था, तब उसतै राग था, पीछै वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसै शरीरादिकतै राग था, पीछै अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तौ द्वेषरूप है। जहाँ जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमकौ मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी साची उदासीनताके अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चिंतवन सोई साची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकौ परीषह सहना कहै है। सो उपाय तौ न किया अर अंतरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुःखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया, तौ सो दुःख-सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान है। ऐसे भावनितै संवर कैसै होय? तातै दुःखका कारण मिले दुःखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई साँची परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकौ चारित्र मानै है। तहाँ महाव्रतादिरूप शुभयोगकौ उपादेयपनेकरि ग्राह्य मानै है। सो तत्त्वार्थ-सूत्रविषैं आस्रव-पदार्थका निरूपण करतै महाव्रत अणुव्रत भी आस्रव-रूप कहे है। ए उपादेय कैसै होय? अर आस्रव तौ बंधका साधक है,

चारित्र मोक्षका साधक है तातै महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकौ चारित्रपनौ सम्भवै नाही, सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतै महा-मद प्रशस्त राग हो है, स ोचारित्रका मल है। याकौ छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोग हीका त्याग करै है। परन्तु जैसै कोई पुरुष कदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिकौ भखै है परन्तु याकौ धर्म न मानै है। तैसैं मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करै है अर केई मदकषायरूप महाव्रतादिकौ पालै है परन्तु ताकौ मोक्षमार्ग न मानें है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है, तौ चारित्रके तेरह भेदनिविषै महाव्रतादि कैसै कहे है ?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषै चारित्रका उपचार किया है। निश्चय-करि नि:कषाय भाव है, सोई साँचा चारित्र है। या प्रकार सवरके कारणनिकौ अन्यथा जानता सवरका साचा श्रद्धानी न हो है।

बहुरि यहु अनशनादि तपतै निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तौ किए निर्जरा होय नाही। बाह्यतप तौ शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है तातै उपचारकरि तपकौ भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दु ख सहना ही निर्जराका कारण होय, तौ तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहै है।

तब वह कहै है—वे तौ पराधीन सहै है, स्वाधीनपनै धर्मबुद्धि

उपवासादिरूप तप करै, ताकै निर्जरा हो है ?

ताका समाधान—धर्मबुद्धितै बाह्य उपवासादि तौ किए, बहुरि तहाँ उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसै परिणमै तैसै परिणमो । घने उपवासादि किएं घनी निर्जरा होय, थोरे किए थोरी निर्जरा होय, जो ऐसै नियम ठहरै तौ उपवासादि ही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै, सो तौ बनै नाही । परिणाम दुष्ट भए उपवासादितै निर्जरा होनी कैसैं सम्भवै ? बहुरि जो कहिए—जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै, ताके अनुसार बध निर्जरा है । तौ उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसै रह्या ? अशुभ शुभ परिणाम बधके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे ।

यहाँ प्रश्न—जो तत्वार्थसूत्रविषै "तपसा निर्जरा च" [ ९-३ ] ऐसा कैसैं कह्या है ?

ताका समाधान—शास्त्रविषै **"इच्छानिरोधस्तपः"** ऐसा कह्या है । इच्छाका रोकना ताका नाम तप है । सो शुभ अशुभ इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तहाँ निर्जरा हो है । तातै तपकरि निर्जरा कही है ।

यहाँ कोऊ कहै, आहारादिरूप अशुभकी तौ इच्छा दूरि भए ही तप होय । परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ काय है, तिनकी इच्छा तौ रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है । उपवासादि किए शुद्धोपयाग बधै है, तातै उपवासादि करै है । बहुरि जो उपवासादिकतै शरीरकी वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानै, तहाँ

आहारादिक ग्रहै है। जो उपवासादिकहीतैं सिद्धि होय, तौ अजित-नाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसे धरते? उनकी तौ शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसे परिणाम भए तैसे बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे है तौ अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसे भई?

ताका समाधान—इनिकौ बाह्यतप कहै है। सो बाह्यका अर्थ यहु, जो बाह्य औरनिकौ दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तौ फल जैसा अन्तरंग परिणाम होगा, तैसा ही पावेगा। जातै परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाही।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो शास्त्रविषै तौ अकामनिर्जरा कही है। तहाँ बिना चाह भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है। तौ उपवासादिकरि कष्ट सहै कैसै निर्जरा न होय?

ताका समाधान—अकामनिर्जराविषै भी बाह्य निमित्त तौ विना चाह भूख तृषाका सहना भया है। अर तहाँ मंद कषायरूप भाव होय तौ पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बंध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तौ सर्व तिर्यंचादिक देव ही होय। सो बनै नाही। तैसे ही चाहकरि उपवासादि किए तहाँ भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहाँ जैसा परिणाम होय, तैसा फल पावै है। जैसै अन्नकौ प्राण कह्या। बहुरि ऐसै बाह्यसाधन भए अंतरंगतपकी वृद्धि हो है तातै उपचारकरि इनकौ तप कहे है। जो बाह्य तप तौ करै अर अंतरंग तप न होय, तौ उपचारतै भी वाकौं तपसंज्ञा नाही। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते ।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

जहाँ कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषकौ श्रीगुरु लघन कहै है।

यहाँ कहेगा—जो ऐसैं है, तौ हम उपवासादि न करैंगे ?

ताकौ कहिए है—उपदेश तौ ऊँचा चढनेकौ दीजिए है। तू उलटा नीचा पडेगा, तौ हम कहा करैंगे। जो तू मानादिकतैं उपवासादि करै है, तौ करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाही। अर जो धर्मबुद्धितैं आहारादिकका अनुराग छोड़ै है, तौ जेता राग छूट्या तेता ही छूट्या। परन्तु इसहीकौ तप जानि इसतैं निर्जरा मानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अतरग तपनिविषैं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषै बाह्य प्रवर्त्तन सो तौ बाह्य तपवत् ही जानना। जैसैं अनशनादि बाह्य क्रिया है, तैसे ए भी बाह्य क्रिया है। तातैं प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अतरग तप नाही है। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होतैं जो अतरग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अंतरंग तप जानना। तहाँ भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परणति होइ, तहाँ तौ निर्जरा ही है, बध नाही हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अंश रहै, तौ जेती शुद्धता भई ताकरि तौ निर्जरा है। अर जेता शुभ भाव है ताकरि बध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहाँ बध वा निर्जरा दोऊ हो है।

यहाँ कोऊ कहै, शुभ भावनितैं पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बध

हो है; शुद्ध भावनितै दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यौ न कहो ?

ताका उत्तर —मोक्षमार्गविषै स्थितिका तौ घटना सर्व ही प्रकृतीनिका होय। तहाँ पुण्यपापका विशेष है ही नाही । अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतै भी होता नाही । ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभागका तीव्रबध उदय हो है अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होंय ऐसा सक्रमण शुभ शुद्ध दोऊ भाव होतै होय। तातै पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाही। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है । देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्म-चितवनादि कार्यकरै, तहाँ भी निर्जरा नाही, बध भी घना होय । अर पचमगुणस्थानवाला विषय-सेवनादि कार्य करै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै, बध भी थोरा होय । बहुरि पचम गुण-स्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै, तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै,तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा घनी। उसतै भी बध थोरा होय। तातै बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाही है । अतरग कषायशक्ति घटै विशुद्धता भए निर्जरा हो है । सो इसका प्रगट स्वरूप आगै निरूपण करैगे, तहाँ जानना । ऐसै अनशनादि क्रियाकौ तपसज्ञा उपचारतै जाननी। याहीतै इनकौ व्यवहार तप कह्या है । व्यवहार उपचारका एक अर्थ है । बहुरि ऐसा साधनतै जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो साचा तप निर्जराका कारण जानना। यहा दृष्टांत — जैसै धनकौ वा अन्नकौ प्राण कह्या है। सो धनतै अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जाँय;तातै धन अन्नकौ प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक

प्राणनिकौ न जानै अर इनहीकौ प्राण जानि सग्रह करै, तौ मरण ही पावै। तैसै अनशनादिकौ वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या, सो अनशनादि साधनतै प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्ते वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातै उपचारकरि अनशनादिकौ वा प्रायश्चित्तादिकौ तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकौ न जानै अर इनिहीकौ तप जानि संग्रह करै, तो ससारहीमैं भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लैना, निश्चय धर्म्मतौ वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष वा साधन अपेक्षा उपचारतै किए है, तिनकौ व्यवहारमात्र धर्मसज्ञा जाननी। इस रहस्यकौ न जानै, तातै वाकै निर्जराका भी सॉचा श्रद्धान नाही है।

बहुरि सिद्ध होना ताकौ मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानै है। सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेकी वा पूज्य होनेकी चाह है। इनिहीके अर्थि मोक्षकी चाह कीनी, तौ याकै और जीवनिका श्रद्धानतै कहा विशेषता भई। बहुरि याकै ऐसा भी अभि-प्राय है—स्वर्गविषै सुख है, तिनितैं अनन्तगुणो मोक्षविषै सुख है। सो इस गुणाकारविषै स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है। तहाँ स्वर्गविषै तौ विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकौ भासै है अर मोक्षविषै विषयादि सामग्री है नाही, सो वहाँका सुखकी जाति याको भासै तौ नाही परन्तु स्वर्गतै भी मोक्षकौ उत्तम महापुरुष कहै है, तातै यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै, परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं आप भी सराहै है। तैसे यहु

मोक्षकौ उत्तम मानै है।

यहाँ वह कहै है—शास्त्रविषै भी तौ इन्द्रादिकतै अनत गुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै है?

ताका उत्तर—जैसे तीर्थकरके शरीरकी प्रभाकौ सूर्यप्रभातै कोट्या गुणी कही तहाँ तिनकी एक जाति नाही। परन्तु लोकविषै सूर्यप्रभा की महिमा है,तातै भी बहुत महिमा जनावनेकौं उपमालकार कीजिए है। तैसे सिद्ध सुखकौ इन्द्रादिसुखतै अनन्त गुणा कह्या। तहाँ तिनकी एक जाति नाही। परन्तु लोकविषै इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातै भी बहुत महिमा जनावनेकौ उपमालंकार कीजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्धसुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसै किया?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहाँ तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानै। ऐसा तौ मानै, जाकै साधन थोरा हो है, सो इन्द्रादिपद पावै है; जाकै सम्पूर्ण साधन होय, सो मोक्ष पावै है। परन्तु तहाँ धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानै, ताकौं कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातै कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातै हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषै इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्मनिमित्ततै आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतै शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसै परमाणु स्कधतै विछुरे

शुद्ध हो है, तैसै यहु कर्मादिकतै भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष इतना—वह दोऊ अवस्थाविषै दुःखी सुखी नाही, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषै दुःखी था, अब ताके अभाव होनेतै निराकुललक्षण अनतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिकै जो सुख है,सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतै दुःखी ही है। तातै वाकी याकी एक जाति नाही। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातै कारणविषै भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकौं भासै नाहीं। तातै मोक्षका भी याकै साचा श्रद्धान नाही है। या प्रकार याकै सांचा तत्वश्रद्धान नाही है। इस ही वास्ते समयसारविषै❀ कह्या है—"अभव्यकै तत्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषै‡ कह्या है—"आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाही।"

बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे है, तिनिकौ पालै है। पचीस दोष कहे है, तिनिकौ टालै है। संवेगादिक गुण कहे है, तिनिकौ धारै है। परन्तु जैसै बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाही, तैसै साचा तत्वश्रद्धान भए विना सम्यक्त होता नाही। सो पंचास्तिकायव्याख्याविषै जहाँ अन्तविषै

❀ सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥२७५॥

‡ अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान-सयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥ ३-३६ ॥

व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहाँ ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करतै भी सम्यग्दर्शन न हो है।

## सम्यग्ज्ञानका अन्यथा स्वरूप

अब यहु सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषै शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातै शास्त्राभ्यासविषै तत्पर रहै है। तहाँ सीखना, सिखावना, याद करना, बाचना, पढ़ना आदि क्रियाविषै तौ उपयोगकौं रमावै है परन्तु वाकै प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाही है। इस उपदेशविषै मुझकौ कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाही है। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिकौ सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानें तहाँ सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तौ आपके अर्थि कीजिए है अर प्रसग पाय परका भी भला होय तौ परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तौ मति सुनो, आप काहेकौ विषाद कीजिए। शास्त्रार्थ का भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषै भी केई तौ व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकौ बहुत अभ्यासै है। सो ए तौ लोकविषै पंडितता प्रगट करनेके कारण है। इन विषै आत्महित निरूपण तौ है नाही। इनका तौ प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तौ थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछै आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि-थोरी होय, तौ आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करतै करतै आयु पूरी होय जाय अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनें।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसैं है तौ व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताकौ कहिए है—

तिनका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुलै नाही। तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहाँ प्रश्न—महान् ग्रन्थ ऐसे क्यो किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यो न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तौ था नाही?

ताका समाधान—भाषाविषैं भी प्राकृत संस्कृतादिकके ही शब्द है परन्तु अपभ्रंश लिए हैं। बहुरि देश देशनिविषैं भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महत पुरुष शास्त्रनिविषैं अपभ्रंश शब्द कैसैं लिखैं। बालक तोतला बोलै, तौ बडे तो न बोलैं। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषैं जाय, तौ तहाँ ताका अर्थ कैसैं भासै। तातैं प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रंथ जोडे। बहुरि व्याकरण विना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै। न्याय विना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार कथन किया। भाषाविषैं भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत आम्नायतैं नीके निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहोगे—ऐसैं है, तौ अब भाषारूप ग्रन्थ काहेकौ बनाईए है।

ताका समाधान—कालदोषतैं जीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि

भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिकका अभ्यास न करि सकै, तिनकौ ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नाना युक्ति लिएं अर्थकरनेकौ ही व्याकरण अवगाहै है, वादादिकरि महत होनेकौ न्याय अवगाहै है, चतुरपना प्रगट करनेके अर्थि काव्य अवगाहै है, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिए इनिका अभ्यास करै है ते धर्मात्मा नाही। बनै जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके अर्थि तत्वादिकका निर्णय करै है, सोई धर्मात्मा पडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै है। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तौ सूवाकासा ही पढना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारै है तहाँ पापकौ बुरा जानना, पुण्यकौ भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे, तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचारचा सो इसतै इनना तौ होसी—नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्गकी तौ प्राप्ति होय नाही। पहलै सांचा तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछै पुण्यपापका फलकौ संसार जानै, शुद्धोपयोगतै मोक्ष मानै, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानै, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनका अभ्यास करै तौ सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्वज्ञानकौ कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन

शास्त्रनिका भी अभ्यास करै है। परन्तु तहाँ जैसे लिख्या है, तैसैं आप निर्णय करि आपकौ आपरूप, परकौ पररूप आस्रवादिक कौं आस्रवादिरूप न श्रद्धान करै है। मुखतैं तौ यथावत् निरूपण ऐसा भी करैं, जाके उपदेशतैं और जीव सम्यग्दृष्टी होय जाँय। परन्तु जैसैं लडका स्त्रीका स्वागकरि ऐसा गान करै, जाकौ सुनतैं अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जाँय। परन्तु वह जैसैं सीख्या तैसैं कहै है, वाकौं किछू भाव भासै नाहीं, तातैं आप कामासक्त न हो है। तैसैं यहु जैसे लिख्या तैसैं उपदेश दे, परन्तु आप अनुभव नाही करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता, तौ और तत्वका अंश और तत्वविषै न मिलावता। सो याकै थल नाही, तातैं सम्यग्ज्ञान होता नाही। ऐसैं यहु ग्यारह अंग-पर्यंत पढै, तौ भी सिद्धि होती नाही। सो समयसारादिविषैं मिथ्या-दृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तौ इतना हो है, परन्तु जैसे अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसैं हो है ?

ताका समाधान—वह तौ पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाही। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषै जाय है, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तौ श्रद्धानरहित नाही; वाकै तौ ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ सांचे है परन्तु तत्वश्रद्धान साँचा न भया। समयसारविषैं* एकही

---

* मोक्ख असद्दहतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।

पाठो ण करेदि गुणं असदहंतस्स णाण तु ॥ २७४ ॥

मोक्षोहि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते, ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांग श्रुतमधीयानोऽपि

जीवकै धर्म्मका श्रद्धान, एकदशागका ज्ञान अर महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषै§ ऐसा लिख्या है–आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिकौ हस्तामलकवत् जानै है। यह भी जानै है, इनका जाननहारा मै हूँ। परन्तु मै ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा आपकौ परद्रव्यतै भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाही अनुभवै है। तातै आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाही। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तौ भी याकै सम्यग्ज्ञान नाही।

## सम्यक्चारित्रका अन्यथारूप

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसै प्रवृत्ति है, सो कहिए है—बाह्यक्रिया ऊपरि तौ इनकै दृष्टि है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाही। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तो जैसा अपना परिणाम होता दीसै, तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परंपरा विचारै अभिप्रायविषै जो वासना है, ताकौ न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषै वासना है, ताका फल लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगै करैगे। तहाँ स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है तहाँ केई

---

श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात् स किल गुण. श्रुताध्ययनस्य याद्वाविक्त-वस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञान तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनन न विधातु शक्यते ततस्तस्य तद्गुणाभाव, ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियत. ॥

§ परमाणुपमाण वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धि ण लहदि सव्वागमधरो वि ॥ ३, ३९ ॥

जीव तौ कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतै आचरण आचरै है। सो इनकै तौ धर्मबुद्धि ही नाही। सम्यक्चारित्र कहाँतैं होय। ए जीव कोई तौ भोले है वा कषायी है, सो अज्ञानभाव वा कषाय होतै सम्यक्चारित्र होता नाही। बहुरि केई जीव ऐसा मानै है, जो जाननेमैं कहा है अर माननेमै कहा है, किछू करेगा तौ फल लागेगा। ऐसै विचारि व्रत तप आदि क्रियाहीके उद्यमी रहै है अर तत्वज्ञानका उपाय न करै है। सो तत्वज्ञान विना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है। अर तत्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाही है, तौ भी असयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है। तातै पहलै तत्वज्ञानका उपाय करना, पीछै कषाय घटावनेकौ बाह्य साधन करना। सो ही **योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषै** कह्या है—

**"दंसणभूमिहं बाहिरा, जिय वयरुक्ख ण हुँति।"**

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका विना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय। भावार्थ—जिन जीवनिकै तत्वज्ञान नाही, ते यथार्थ आचरण न आचरै है। सोई विशेष दिखाईए है—

केई जीव पहलै तौ बडी प्रतिज्ञा धरि बैठै अर अतरग विषय कषायवासना मिटी नाही। तब जैसै तैसै प्रतिज्ञा पूरी किया चाहै, तहाँ तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दु:खी हो है। जैसै बहुत उपवासकरि बैठै, पीछै पीड़ातै दु:खी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै। सो पहलै ही सधती जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यो न लीजिए। दु:खी होनेमे आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसै लागेगा। अथवा

उस प्रतिज्ञाका दु ख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषनेंकौ अन्य उपाय करै। जैसै तृषा लागै तब पानी तौ न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै। वा घृत तौ छोडै अर अन्य स्निग्ध वस्तुकौ उपायकरि भखै। ऐसै ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तौ ऐसी प्रतिज्ञा काहेकौ करी। सुगम विषय छोड़ि विषम विषयनिका उपाय करना पडै, ऐसा कार्य काहेकौ कीजिए। यहाँ तौ उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषै दु ख होय तब परिणाम लगावनेकौं कोई आलम्बन विचारै। जैसै उपवासकरि पीछै क्रीड़ा करै। केई पापी जूवा आदि कुविसनविषै लगै है अथवा सोय रह्या चाहै। यहु जानै, किसी प्रकारकरि काल पूरा करना। ऐसै ही अन्य प्रतिज्ञाविषै जानना। अथवा केई पापी ऐसे भी है, पहलै प्रतिज्ञा करै, पीछै तिसतैं दु खी होय तब प्रतिज्ञा छोडिदे। प्रतिज्ञा लैना छोडना तिनके ख्याल-मात्र है। सो प्रतिज्ञा भग करनेका महापाप है। इसतं तौ प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। या प्रकार पहलै तौ निर्विचार होय प्रतिज्ञा करै, पीछे ऐसी इच्छा होय। सो जैनधर्मविषै प्रतिज्ञा न लेनेका दड तौ है नाही। जैनधर्मविषै तौ यहु उपदेश है, पहलै तौ तत्वज्ञानी होय। पीछै जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानै। त्याग किए गुण होय, ताकौ जानै। बहुरि अपने परिणामनिकी ठीक करै। वर्त्तमान परिणाम-निहीके भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठै। आगामी निर्वाह होता जानै, तौ प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीरकी शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसै विचारि पीछे प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी

जिस प्रतिज्ञातैं निरादरपना न होय, परिणाम चढ़ते रहै। ऐसी जैन-धर्मकी आम्नाय है।

यहाँ कोऊ कहै—चांडालादिकौंनै प्रतिज्ञा करी,तिनकै इतना विचार कहा हो है।

ताका समाधान—मरणपर्यंत कष्ट होय तौ होहु परन्तु प्रतिज्ञा न छोडनी ऐसा विचारकरि प्रतिज्ञा करै है, प्रतिज्ञाविषै निरादरपना नाही। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करै हैं, सो तत्वज्ञानादिपूर्वक ही करै हैं। बहुरि जिनकै अतरग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरै है, ते प्रतिज्ञाके पहलै वा पीछै जाकी प्रतिज्ञा करै, ताविषै अति आसक्त होय लागै है। जैसै उपवासके धारनै पारनै भोजनविषै अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करै, शीघ्रता घनी करै। सो जैसै जलकौ मूंदि राख्या था, छूटचा तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा। तैसै प्रतिज्ञाकरि विषयप्रवृत्ति मूंदि, अतरग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होतै ही अत्यत विषयप्रवृत्ति होने लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषै विषयवासना मिटी नाही। आगै पीछै तिसकी एवज अधिक राग किया, तौ फल तौ रागभाव मिटे होगा। तातै जेती विरक्तता भई होय, तितनी ही प्रतिज्ञा करनी। महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करै, पीछैं आहारादिविषै उछटि करै। अर बड़ी प्रतिज्ञा करैहै, सो अपनी शक्ति देखकरि करैहै। जैसै परिणाम चढ़ते रहै,सो करैहै,प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै। ऐसी प्रवृत्ति कारजकारी जाननी। बहुरि जिनकै धर्म ऊपरि दृष्टि नाही, ते कबहू तौ बड़ा धर्म आचरै, कबहूँ अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तैं। जैसै कोई धर्म पर्वविषै तो बहुत उपवासादि

करै, कोई धर्मपर्वविषै बारम्बार भोजनादि करै। सो धर्म बुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषै यथायोग्य संयमादि धरै। बहुरि कबहूँ तो कोई धर्मकार्यविषै बहुत धन खरचै, कबहूँ कोई धर्मकार्यआदि प्राप्त भया होय, तो भी तहाँ थोरा भी धन न खरचै। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषै धन खरच्या करै। ऐसै ही अन्य जानना। बहुरि जिनकै साँचा धर्मसाधन नाही, ते कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अंगीकार करै अर कोई हीनक्रिया किया करै। जैसै धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषै विशेष प्रवर्त्तै। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करै अर पीछै खोटे व्यापारादि कार्य करै, तहाँ लोकनिंद्य पापक्रियाविषै प्रवर्त्तै, ऐसै ही कोई क्रिया अति ऊची, कोई क्रिया अति नीची करै। तहाँ लोकनिंद्य होय धर्मकी हास्य करावै। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै है। जैसै कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै, तौ हास्य ही होय। तैसै यहु हास्य पावै हैं। साचा धर्मकी तौ यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषै जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय, तो नीचा ही पदविषै प्रवर्त्तै परन्तु ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।

यहाँ प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरकी प्रतिमाविषै कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै। ताका

समाधान—सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाही। कोई दोष लागै है, तातैं ऊपरकी प्रतिमाविषै त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिसप्रकार त्याग सम्भवै, तैसा नीचली अवस्था-वाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाहीं ताका करना तो कषायभावनिहीतैं हो है। जैसैं कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तौ कैसैं बनै ? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलैं सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसैं ही अन्य जानने। बहुरि सर्व प्रकार धर्मकौ न जानै, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगकौ मुख्यकरि अन्य धर्मनिकौं गौण करै है। जैसैं केई जीव दयाधर्मकौं मुख्यकरि पूजा प्रभावनादि कार्यकौं उथापै है, केई पूजा प्रभावनादि धर्मकौ मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखै है, केई तपकी मुख्यताकरि आर्तध्यानादिकरिकै भी उपवासादि करै वा आपको तपस्वी मानि निःशंक क्रोधादि करै, केई दानकी मुख्यताकरि बहुत पाप करिकै भी धन उपजाय दान दे है, केई आरम्भ त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि कर है❀, केई जीव हिंसा मुख्यकरि स्नानशौचादि नाही करै है वा लौकिक कार्य आए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जाय इत्यादि करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई धर्मकौ मुख्यकरि अन्य धर्मकौ न गिनै है वा वाके आसरै पाप आचरै है। सो जैसैं अविवेकी व्यापारीकों कोई व्यापारके नफेके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा

❀ यहाँ खरडा प्रति में अन्य कुछ और लिखने के लिये संकेत किया है पर लिखा नहीं।

पाडै तैसें यहु कार्य भया। चाहिए तो ऐसें, जैसें व्यापारीका प्रयोजन नफा है, सर्व विचारकरि जैसें नफा घना होय तैसें करै। तैसें ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारकरि जैसें वीतरागभाव घना होय तैसें करै। जातें मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करै है, तिनकै तो सम्यक्-चारित्रका आभास भी न होय। बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करै है। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम है। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाही है। इनिकौं धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करै है। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखे हैं परन्तु तत्वज्ञान पहले न भया, तातें आप तो जानें मोक्षका साधन करू हूँ अर मोक्षका साधन जो है ताकौं जानै भी नाही। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करै। सो मिश्री कौं अमृत जानि भखे अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाही। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है। शास्त्रविषें ऐसा कह्या है—चारित्रविषें 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। तातें पहलें तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछें चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसें कोई खेतीवाला बीज तो बोवे नाही अर अन्य साधन करै, तो अन्न-प्राप्ति कैसें होय। घास फूस ही होय। तैसें अज्ञानी तत्वज्ञानका तो अभ्यास करै नाही अर अन्य साधन करै, तो मोक्षप्राप्ति कैसें होय, देवपदादिक ही होय। तहाँ केई जीव तो ऐसे है जो तत्वादिकका नीके नाम भी न जानें, केवल व्रतादिकविषें ही प्रवर्तै है। केई जीव ऐसे

है जो पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि-
विषै प्रवर्त्तै है। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरे, तथापि यथार्थ
श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समय-
सारका कलशाविषै कह्या है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्षमिदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१॥

—निर्जराधिकार ॥१०॥

याका अर्थ—मोक्षतैं पराङ्मुख ऐसे अतिदुस्तर पंचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आप ही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै है तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमैं आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेकों समर्थ नाहीं है। बहुरि पंचास्तिकायविषैं जहाँ अंतविषै व्यवहाराभास वालेका कथन किया है, तहाँ तेरहप्रकार चारित्र होते भी ताका मोक्षमार्गविषै निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य सयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषै वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषै इस प्रयोजन लिए जहाँ तहाँ निरूपण है। तातैं पहलै तत्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहाँ कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधै है, अंतरग परिणाम नाही वा स्वर्गादिककी वाछाकरि साधै है, सो ऐसै साधे तो पापबंध होय। द्रव्यलिगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है। परावर्त्तनिविषै इकतीस सागर पर्यन्त देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊँचेपद तो तब ही पावै जब अतरग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामदकपायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाह न होय, केवल धर्मबुद्धितै मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातै द्रव्यलिंगीकै स्थूल तो अन्यथापनो है नाही, सूक्ष्म अन्यथापनो है सो सम्यग्दृष्टीकौं भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसै है अर तामैं अन्यथापनो कैसै है? सो कहिए है—

प्रथम तो ससारविषै नरकादिकका दुःख जानि, स्वर्गादिविषै भी जन्म मरणादिकका दुःख जानि,ससारतै उदास होय मोक्षकौ चाहै है। सो इन दु खनिकौ तो दुःख सब ही जानै है। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागतै इन्द्रियजनित सुख भोगवै है ताकौ भी दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाकौ पहचानि मोक्ष चाहै है, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषनेयोग्य नाही, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे है, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाता है,तिन करि शरीर सोखने योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी है, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीको अगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकौ बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य

कौ भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषै इष्ट अनिष्ट रूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतै याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि-रूप हो है। जातै काहूकों बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहेगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यकौ त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिकौ बुरा न जानै है। अपना रागभावकौ बुरा जानै है। आप रागभावकौ छोरै, तातै ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारै कोई परद्रव्य तो भला बुरा है नाही।

कोऊ कहेगा, निमित्तमात्र तौ है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाही। अपने भाव बिगरै तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त विना भी भाव बिगरै हैं। तातै नियमरूप निमित्त भी नाही। ऐसैं परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे है सो याकै ऐसी समझि नाही। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषै द्वेषरूप उदासीनता करै है। सांची उदासीनता तो वाका नाम है कि कोई ही परद्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातै काहूकौं बुरा भला न जानै। आपकौ आप जानै परकौ परजानैं, परतै किछू भी प्रयोजन मेरा नाही ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। बहुरि यहु उदासीन होय शास्त्रविषै व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रतरूप कह्या है ताकौ अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापकौं छांड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसे पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषै कर्त्तापना मानै था तैसे ही अब पर्या-

याश्रित पुण्यकार्यनिविषै कर्त्तापना अपना मानने लागा, ऐसे पर्याया-श्रित कार्यनिविषै अहंबुद्धि माननेकी समानता भई। जैसे मै जीव मारू हूं, मैं परिग्रहधारी हूं, इत्यादिरूप मानि थी, तैसेंही मै जीवनिकी रक्षा करू हूँ, मै नग्न परिग्रह रहित हूँ, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषै अहंबुद्धि है, सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समय-सारविषै कह्या है—

**ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसावृताः ।**
**सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥**

( सर्व वि० श्लो०७ )

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अन्धकारव्याप्त होते संते आपकौ पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता माने हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी है, तोऊ तिनकै जैसे अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय तैसे मोक्ष न हो है। जाते कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसे आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषै मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखै है। जैसै उन क्रियानिविषै भग न होय, तैसै प्रवर्त्तै है। सो ऐसे भाव तो सराग हैं। चारित्र है सो वीतरागभाव-रूप है। तातै ऐसे साधनकौं मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहाँ प्रश्न—जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है, सो कैसे है ?

ताका उत्तर—जैसै तन्दुल दोय प्रकारके है—एक तुषसहित है एक तुषरहित है, तहाँ ऐसा जानना—तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाही, तन्दुलविषै दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै

था, ताकौं देखि कोई भोला तुषनिहीकौं तन्दुल मानि संग्रह करै, तो वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसें चारित्र दोय प्रकारका है—एक सराग है एक वीतराग है। तहाँ ऐसा जानना—राग है सो चारित्रका स्वरूप नाही, चारित्रविषै दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै है, तिनकौं देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकौं चारित्र मानि संग्रह करै, तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहेगा—पापक्रिया करते तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकौं करते मंदराग भया। तातैं जेता अंश रागभाव घट्या, तितना अंश तो चारित्र कहो। जेता अंश राग रह्या, तेता अंश राग कहो। ऐसैं याकैं सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान—जो तत्वज्ञानपूर्वक ऐसैं होय, तौ कहो हो तैसें ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण होतें भी असंयम ही नाम पावै है। जातैं रागभाव करनेका अभिप्राय नाही मिटै है। सोई दिखाईए है—

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोड़ि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूल गुणनिकौं पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खंड खंड भए भी व्यग्र न हो है, व्रतभंगके कारण अनेक मिलें तौ भी दृढ़ रहै है, कोईसेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै हे, ऐसे साधनविषै कोई कपटाई नाही हैं, इस साधनकरि इस लोक परलोकके विषयसुखकौं न चाहै है; ऐसी याकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय, तौ ग्रैवेयकपर्यंन्त कैसे पहुँचे। परन्तु याकौं मिथ्यादृष्टी असंयमी ही शास्त्रविषै कह्या। सो ताका

कारण यहु है—याकै तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान साचा भया नाहीं। पूर्वं वर्णन किया, तैसे तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिसही अभिप्राय तै सर्व साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराकौ विचारे कषायनिका अभिप्राय आवै है। सो कैसै? सो सुनहु—यहु पापको कारण रागादिकको तो हेय जानि छोरै है परन्तु पुण्यको कारण प्रशस्तरागकों उपादेय मानै है। ताके बधनेका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायको उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यो द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषै राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्य-निविषै साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जैसे काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धानविषै दंड देना अनिष्ट ही मानै है। तैसे सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करनेका उपाय राखै है अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धान विषै कषायकों हेय ही मानै है। बहुरि जैसे कोऊ कुमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष मानै है तैसे द्रव्यलिगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्तरागका उपाय राखै है, उपाय बनिआए हर्ष मानै है। ऐसे प्रशस्तरागका उपायविषै वा हर्षविषै समानता होते भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान मिथ्यादृष्टिकै

व्यापारसमान श्रद्धान पाईए है। तातै अभिप्रायविषै विशेष भया। बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततै दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है। सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहाँ वीतरागता हो है, तहाँ तो जैसै अन्य ज्ञेयकौ जानै है तैसै ही दुःखका कारण ज्ञेयकौं जानै है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनकौ सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतै सहै है। सो विचार ऐसा हो है—जो परवशपने नरकादिकविषै बहुत दुःख सहे, ये परीषहादिकका दुःख तो थोरा है। याकौं स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखकी प्राप्ति हो है। जो इनकौ न सहिए अर विषयसुख सेइए, तो नरकादिककी प्राप्ति होसी तहाँ बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचारविषै परीषहनिविषै अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयतै वा सुखके लोभतै तिनकौ सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है—जे कर्म बाधे थे, ते भोगे विना छूटते नाही। तातै मोकौ सहने आए। सो ऐसे विचारतै कर्मफल चेतना रूप प्रवर्त्तै है। बहुरि पर्यायदृष्टितै जो परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताकौ आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितै अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाकौ भिन्न न पहिचानै है। ऐसै ही नानाप्रकार व्यवहार विचारतै परीषहादिक सहै है। बहुरि यानै राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसै कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतै शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसै रागसहित जीव नरकादिकके भयतै

विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् विषयसेवन रुचै तावत् रोगका अभाव न कहिए। बहुरि जैसे अमृतका आस्वादी देवकौ अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसे स्वरसका आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिककी अपेक्षा परीषहसहनादिकौ सुखका कारण जाने है अर विषयसेवनादिकौ दु:खका कारण जाने है। बहुरि तत्कालविषै परीषह सहनादिकतै दुःख होना माने है, विषयसेवनादिकतै सुख माने है। बहुरि जिनतैं सुख दु:ख होना मानिए, तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धितै रागद्वेष रूप अभिप्राय का अभाव होय नाही। बहुरि जहाँ रागद्वेष है,तहाँ चारित्र होय नाही। तातै यहु द्रव्य-लिंगी विषयसेवन छोरि तपश्चरणादि करै है, तथापि असयमी ही है। सिद्धाँतविषै असयत देशसयत सम्यग्दृष्टीतै भी याकौं हीन कह्या है। जातै उनकै चौथा पाँचवाँ गुणस्थान है, याकै पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिगी मुनिकै थोरी है, याहीतै असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टि तो सोलहवाँ स्वर्गपर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातै भावलिगी मुनितै तो द्रव्यलिंगीकौ हीन कहो, असयत देशसयत सम्यग्दृष्टीतै याकौं हीन कैसै कहिए ?

ताका समाधान—असयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाही। बहुरि द्रव्यलिगीकै शुभकषाय करनेका अभिप्राय पाईए है। श्रद्धानविषै तिनकौ भले जाने है। तातै श्रद्धान अपेक्षा असयत सम्यग्दृष्टीतै भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिकी

प्रवृत्ति शुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषै पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। तातैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुँचै है, सो किछू कार्यकारी नाही। जातैं अघातिया कर्म आत्मगुण के घातक नाही। इनके उदयतै ऊँचे नीचेपद पाए तौ कहा भया। ए तो बाह्य संयोगमात्र संसारदशाके स्वाँग है। आप तो आत्मा है, तातैं आत्मगुणके घातक ए कर्म्म है तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातिया कर्मनिका वध बाह्य प्रवृत्तिके अनुसार नाही। अंतरंग कपाय शक्तिके अनुसार है। याहीतै द्रव्यलिगीतै असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बध थोरा है। द्रव्यलिगीकै तो सर्व-घातिकर्मनिका वध वहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनतानुबधी आदि कर्मका तो बध है ही नाही, अवशेषनिका बध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिगीकै कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है अर देश सकल संयम भए निरन्तर हो है। याहीतै यहु मोक्षमार्गी भया है। तातैं द्रव्यलिंगी मुनि असंयत देशसंयतसम्यग्दृष्टीतै हीन शास्त्रविषै कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषै द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीका कलशानिविषे प्रगट किया है। वहुरि पंचा-स्तिकायकी टीकाविषै जहाँ केवल व्यवहारावलम्बीका कथन किया है, तहाँ व्यवहार पचाचार होतेभी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। वहुरि प्रवचनसारविषै ससारतत्व द्रव्यलिगीकौं कह्या। वहुरि परमात्म प्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषै भी इस व्याख्यानकौं स्पष्ट किया है। वहुरि द्रव्यलिगीकै जो जप तप शील सयमादि क्रिया पाइए हैं,

तिनकौ भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषै जहाँ दिखाए हैं, सो तहाँ देखि लेना। यहाँ ग्रन्थ बधनेके भयतैं नाही लिखिए है। ऐसैं केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

## निश्चय व्यवहारावलम्बी जैनाभास

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासकौं अवलम्बै हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

जे जीव ऐसा मानैं है—जिनमतविषै निश्चय व्यवहार दोय नय कहै है, तातैं हमकौ तिनि दोऊनिका अगीकार करना। ऐसैं विचारि जैसें केवल निश्चयाभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसैं तौ निश्चयका अगीकार करै है अर जैसे केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसै व्यवहारका अगीकार करै है। यद्यपि ऐसैं अगीकार करने विषै दोऊ नयनिविषै परस्पर विरोध है तथापि करै कहा, साचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाही अर जिनमतविषै दोय नय कहे, तिनिविषै काहूकौ छोड़ी भी जाती नाही। तातैं भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधै है, ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जानने।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अतरगविषै आप तो निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गकौ पहिचान्या नाही। जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानै है। सो मोक्षमार्ग दोय नाही, मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहाँ साचा मोक्षमार्गकौ मोक्षमार्ग निरूपण सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नाही परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है

वा सहचारी है, ताकौं उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है जातैं निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है । सांचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना । एक निश्चयमोक्ष मार्ग है, एक व्यवहारमोक्षमार्ग है; ऐसैं दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकू उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातैं निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातैं समयसार विषै ऐसा कह्या है—

"व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिऊण सुद्धणओ* ।" ११

याका अर्थ—व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपकौ न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है । बहुरि शुद्ध नय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तुका स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसैं इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है । बहुरि तू ऐसैं मानै है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभवन सो निश्चय अर व्रत शील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरे मानना ठीक नाहीं। जातैं कोईद्रव्यभावका नाम निश्चय,कोईका नाम व्यवहार ऐसैं है नाहीं। एक ही द्रव्यके भावकौं तिसस्वरूप ही निरूपण करना, सो निश्चय है । उपचारकरि तिस द्रव्यके भावकौं अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना, सो व्यवहार है। जैसैं माटीके घड़ेकौं माटीका घडा

* ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥११॥

निरूपिए सो निश्चय अर घृतसयोगका उपचारकरि वाकौ ही घृतका घडा कहिए सो व्यवहार । ऐसे ही अन्यत्र जानना । तातै तू किसी को निश्चय मानै, किसीकौ व्यवहार मानै सो भ्रम है । बहुरि तेरे मानने विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया । जो तू आपकौ सिद्ध मान शुद्ध मानै है, तो व्रतादिक काहेकौ करै है । जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्त्तमानविषै शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया । ऐसै दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है । तातै दोऊ नयनिका उपादेयपना बनै नाही ।

यहाँ प्रश्न—जो समयसारादिविषै शुद्ध आत्माका अनुभवकौ निश्चय कह्या है, व्रत तप सयमादिककौ व्यवहार कह्या है तैसे ही हम मानै है ।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव साचा मोक्षमार्ग है तातै वाकौ निश्चय कह्या । यहाँ स्वभावतै अभिन्न, परभावतै भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । ससारीकौ सिद्ध मानना ऐसा भ्रम-रूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना । बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाही, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतै इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातै इनकौ व्यवहार कह्या । ऐसै भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकौ निश्चय व्यवहार कहे है । सा ऐसै ही मानना । बहुरि ए दोऊ ही साँचे मोक्षमार्ग हैं, इन दोऊनिकौ उपादेय मानना सो तो मिथ्या-बुद्धि ही है । तहाँ वह कहै है—श्रद्धान तो निश्चयका राखे है अर प्रवृत्ति व्यवहाररूप राखै है, ऐसे हम दोऊनिकौ अगीकार करै है । सो भी बनै नाही, जातै निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका

व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषै नयका प्रयोजन ही नाही। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परणति होय, ताकौ तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकौ अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यवहारनय, ऐसै अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतै तिस प्रवृत्तिविषै दोऊ नय बनै है। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाही। तातै या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो कहिए है—निश्चयनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौ तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौ असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोड़ना। सो ही समयसारविषै कह्या है—

सर्वत्राध्यवसायमेवमखिलं त्याज्यंयदुक्तं जिनै—
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्निश्चयमेकमेव परमं निष्कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१॥

समयसार कलशा निर्जरा०—११

याका अर्थ—जातै सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषै अध्यवसाय हैं सो समस्त ही छोडना, ऐसा जिनदेवनिंकरि कह्या है। तातै मै ऐसै मानूं हूँ, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक निश्चयहीकौ भले प्रकार निश्चयपनै अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषै स्थिति क्यो न करै हैं।

भावार्थ—यहाँ व्यवहारका तौ त्याग कराया, तातैं निश्चयकौ अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषैं कह्या है—

**जो सुत्ता ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।**

**जो जागदि ववहारे सो सुत्ता अप्पणे कज्जे* ॥१॥**

याका अर्थ—जो व्यवहारविषैं सूता है, सो जोगी अपने कार्यविषैं जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है, सो अपने कार्यविषैं सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोडि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यकौ वा तिनके भावनिकौ वा कारण कार्यादिककौं काहूकौ काहूविषैं मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं मिथ्यात्व है तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनही कौ यथावत् निरूपै है, काहूकौ काहूविषैं न मिलावै है। सो ऐसेही श्रद्धानतैं सम्यक्त हो है तातैं याका श्रद्धान करना। यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ जिनमार्गविषैं दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है, सो कैसैं?

ताका समाधान—जिनमार्गविषैं कही तौ निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौ तौ 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा जानना। बहुरि कही व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है, ताकौ 'ऐसे है नाही, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकौ समान सत्यार्थ जानि ऐसैं भी है, ऐसे भी है, ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेकरि तौ दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाही।

* या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी।
यस्या जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने. ।'—गीता २–६९

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है, तौ ताका उपदेश जिनमार्गविषै काहेकौ दिया—एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था ?

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषे किया है । तहाँ यह उत्तर दिया है—

> जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं ।
> तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥ १,८ ॥

याका अर्थ—जैसै अनार्य जो म्लेक्ष सो ताहि म्लेक्षभाषा विना अर्थ ग्रहण करावनेकौ समर्थ न हूजे । तैसै व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है । तातै व्यवहारका उपदेश है । बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषे ऐसा कह्या है—'व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः' । याका अर्थ—यहु निश्चयके अगीकार करावनेकौ व्यवहारकरि उपदेश दीजिए है । बहुरि व्यवहारनय है, सो अगीकार करने योग्य नाही ।

यहाँ प्रश्न—व्यवहारविना निश्चयका उपदेश कैसे न होय । बहुरि व्यवहारनय कैसे अगीकार करना, सो कहो ?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तौ आत्मा परद्रव्यनितै भिन्न स्वभावनितै अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है ताकौ जे न पहिचानै, तिनकौ ऐसे ही कह्या करिए तौ वह समझै नाही । तब उनकौ व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए । तब मनुष्यजीव है, नारकी जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई । अथवा अभेदवस्तुविषे भेद

उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जानने-वाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमाग है। ताकौ ज न पहिचानै, तिनिको ऐसै ही कह्या करिए, तौ वे समझै नाही। तब उनकौ व्यवहारनयकरि तत्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेका सापेक्षकरि व्रत शील संयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चयका उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नरकादि पर्यायहीकौ जीव कह्या, सो पर्यायहीकौ जीव न मानि लेना। पर्याय तौ जीव पुद्गलका सयोगरूप है। तहाँ निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकौ जीव मानना। जीवका सयोगतै शरीरादिककौ भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहने मात्र ही है। परमार्थतै शरीरादिक जीव होते नाही। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषै ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकौ भेदरूप ही न मानि लेने। भेद तौ समझावने के अर्थ है। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है। तिसहीकौ जीव वस्तु मानना। सज्ञा सख्यादिकरि भेद कहे, सो कहने मात्र ही है। परमार्थतै जुदे जुदे है नाही। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्यका निमित्त मेटनेकी अपेक्षा व्रतशीलसयमादिककौ मोक्षमार्ग कह्या। सो इनहीकौ मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातै परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माके होय, तौ आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाही। तातै आत्मा अपने भाव

रागादिक है, तिनकौ छोडि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकनिकै कदाचित् कार्य कारणपनो है। तातै व्रतादिककौ मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही है। परमार्थतै बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाही, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसे ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अगीकार करना जानि लेना।

यहाँ प्रश्न—जो व्यवहारनय परकौ उपदेशविषै ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका समाधान—आप भी यथावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुकौ न पहिचानै, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातै नीचली दशाविषै आपकौ भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहारकौ उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका श्रद्धान ठीक करै, तौ कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसे ही है, ऐसा श्रद्धान करै, तौ उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्धच्युपायविषै कह्या है—

> अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
> व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥६॥
> माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
> व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकौ असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकौ उपदेशै हैं। जो केवल व्यवहारहीकौ जानै है, ताकौ उपदेश ही देना योग्य नाही है। बहुरि जैसे जो साँचा सिंहकौ न

जानै, ताकै बिलाव ही सिंह है, तैसैं जो निश्चयकौ न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाकौ प्राप्त हो है।

तहाँ कोई निर्विचार पुरुष ऐसैं कहै—तुम व्यवहारकौ असत्यार्थ हेय कहो हो, तौ हम व्रत शील संयमादिका व्यवहार कार्य काहेकौ करैं—सर्व छोड़ि देवेंगे। ताकौ कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिक का नाम व्यवहार नाहीं है। इनकौ मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, सो छोडि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकर जो इनकौ तौ बाह्य सहकारी जानि उपचारतैं मोक्षमार्ग कह्या है। ए तौ परद्रव्याश्रित है। बहुरि साचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसैं व्यवहारकौ असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककौ छोडनेतैं तौ व्यवहारका हेयपनौ होता है नाहीं। बहुरि हम पूछें है—व्रतादिककौ छोडि कहा करैगा? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तैगा, तौ तहाँ तौ मोक्षमार्गका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तहाँ प्रवर्त्तनेतैं कहा भला होयगा, नरकादिक पावेगा। तातैं ऐसैं करना तौ निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै, तौ भलै ही है। सो नीचली दशाविषैं होय सकै नाहीं। तातैं व्रतादिसाधन छोडि स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषैं निश्चयकौ, प्रवृत्तिविषैं व्यवहारकौ उपादेय मानना, सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकौ शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषैं लागै है। सो ऐसा आप नाहीं, परन्तु भ्रमकरि मैं ऐसा ही हूं, ऐसा मानि सन्तुष्ट हो है। कदाचित्

वचनद्वारि निरूपण ऐसा ही करै है। सो निश्चय तौ यथावत् वस्तुकौ प्ररूपै, प्रत्यक्ष जैसा आप नाही तैसा आपकौ मानना, सो निश्चय नाम कैसै पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसै ही याकै जानना। अथवा यह ऐसै मानै है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है, सो आत्मा तौ जैसा है तैसा ही है, तिसविषै नयकरि निरूपण करनेका जो अभिप्राय है, ताकौ न पहिचानै है। जैसै आत्मा निश्चयकरि तौ सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्मरहित है,व्यवहारनय करि ससारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्मसहित है, ऐसा मानै है। सो एक आत्माके ऐसे दोय स्वरूप तो होय नाही। जिस भाव हीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एकवस्तुविषैं कैसै सम्भवै? तातै ऐसा मानना भ्रम है। तौ कैसै है—जैसै राजा रक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान है, तैसै सिद्ध ससारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान कहे है। केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए, सो है नाही। ससारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादि ही है। सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है—ससारीकै मतिज्ञानादिक कर्मका निमित्ततै है,तातै स्वभावअपेक्षा ससारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाही। जैसै रंक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाईए,तैसै यहु शक्ति जाननी। बहुरि द्रव्यकर्म नोकर्म पुद्गलकरि निपजे है, तातै निश्चयकरि ससारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण—कार्यसम्बन्ध भी न मानै, तौ भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्त-

तैं हो है, तातैं व्यवहारकरि कर्मका कहिए है। बहुरि सिद्धवत् ससारीकै भी रागादि न मानना, कर्महीका मानना यहु भी भ्रम ही है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकौ एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है,ऐसे मानि यथासम्भव वस्तुकौ मानना सा साँचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुकौ मानै, परन्तु यथार्थ भावकौ पहिचानि मानि सकै नाही, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील सयमादिकका अगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्षके कारण है'ऐसा मानि तिनकौ उपादेय मानै है। सो जैसै केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसै ही याकै भी अयथार्थपना जानना। बहुरि यहु ऐसे भी मानै है—जो यथायोग्य व्रतादि क्रिया तौ करनी योग्य है, परन्तु इनविषै ममत्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषै ममत्व कैसै न कहिए। अर आप कर्त्ता न है, तौ मुझकौ करनी योग्य है, ऐसा भाव कैसै किया। अर जो कर्त्ता है,तो वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ता कर्मसम्बन्ध स्वयमेव ही भया। ऐसी मान्यता तौ भ्रम है। तौ कैसै है—बाह्य व्रतादिक है, सो तौ शरीरादि परद्रव्यके आश्रय है। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाही, तातैं तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहाँ ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषै ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय,सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है,तातै तिसविषै कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि

इस शुभोपयोगकौ बंधकाही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना जातै बंध अर मोक्षकै तौ प्रतिपक्षीपना है। तातै एक ही भाव पुण्य-कौ भी कारण होय अर मोक्षकौ भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातै व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्यके ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाही, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्ष-मार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषै केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धो-पयोगका युक्तपना पाईए है। तातै उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगकौ मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारतै शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातै बंधकौ कारण सोई मोक्षका घातक है ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीकौ उपादेय मानि ताका उपाय करना। शुभोपयोग कौ हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहाँ शुद्धोपयोग न होय सकै, तहाँ अशुभोपयोगकौ छोडि शुभही विषै प्रवर्त्तना। जातै शुभो-पयोगतै अशुभोपयोगविषै अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोप-योग होय, तब तौ परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहाँ तौ किछू परद्रव्यका प्रयोजन ही नाही। बहुरि शुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य व्रता-दिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातै अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाईए है। बहुरि पहलै अशुभोपयोग छूटि शुभो-पयोग होइ, पीछै शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरि-पाटी है। बहुरि कोई ऐसै मानै कि शुभोपयोग है, सो शुद्धोपयोगकौ कारण है। सो जसै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसै शुभो-पयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है। एसै ही कार्यकारणपना होय, तौ

शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिगीकै शुभोपयोग तौ उत्कृष्ट हो है,शुद्धोपयोग होता ही नाही। तातै परमार्थतै इन कै कारणपना है नाही। जैसे रोगीकै बहुत रोग था, पीछै स्तोक रोग भया, तौ वह स्तोक रोग तो निरोग होनेका कारण है नाही। इतना है, स्तोक रोग रहै निरोग होनेका उपाय करै, तौ होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकौ भला जानि ताका राखनेका यत्न करै,तौ निरोग कैसै होय। तैसै कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछै मदकषायरूप शुभोपयोग भया, तौ वह शुभोपयोग तौ नि.कषाय शुद्धोपयोग होनेका कारण है नाही। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै, तौ होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकौ भला जानि ताका साधन किया करै, तौ शुद्धोपयोग कैसै होय। तातै मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोगकौ कारण है नाही। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कही शुभोपयोगकौ शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है,ऐसा जानना। बहुरि यह जीव आपकौ निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माकौ शुद्ध मान्या सो तौ सम्यग्दर्शन भया। तैसैही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसैही विचारविषै प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसै तौ आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानै सो मै प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसै मानू, जानू, विचारू हूँ, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतै सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहतादि बिना अन्य देवादिककौ न मानै है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीख लिए है तिनहीकौ मानै है औरकौ न मानै, सो तौ सम्यग्दर्शन

भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यास विषै बहुत प्रवर्त्तै है, सो सम्यग्-ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है,सो सम्यक्‌चारित्र भया। ऐसें आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार तौ उपचारका नाम है। सो उपचार भी तौ तब बनै, जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसैं निश्चय रत्नत्रय सधै तैसैं इनकौ साधै, तौ व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तौ सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाही। यहु ऐसैं कैसैं साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्यांदेखी साधन करै है। तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगै निश्चय व्यवहार मोक्ष-मार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा। ऐसैं यहु जीव निश्चयाभासकौ मानै जानै है। परन्तु व्यवहार साधनकौ भी भला जानै है, तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदकौ पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय, तौ कुगतिविषै भी गमन होय, परिणामनिके अनुसारि फल पावै है। परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। साचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदकौ न पावै है। ऐसैं निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया।

## सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

कोई मंदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्वविचार करनेकी शक्ति भई। अर मोह मंद भया, तातैं तत्वादिविचारविषैं उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया तिनकरि साचा उपदेशका लाभ भया। तहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्वनिका वा आपा परका वा आपकौं अहितकारी हितकारी भावनिका इत्यादिकका उपदेशतैं सावधान होय ऐसा विचार किया— अहो मुझकौं तौ इन बातनिकी खबरि नाही, मैं भ्रमतैं भूलि पर्याय ही विषैं तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तौ थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहाँ मोकौं सर्व निमित्त मिले हैं। तातैं मोकौं इन बातनिका ठीक करना। जातैं इनविषैं तौ मेरा ही प्रयोजन भासै है। ऐसैं विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहाँ उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातैं पहलै तौ तिनके नाम सीखै, सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानै। बहुरि ऐसैं सम्भवै है कि नाही, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहाँ नाम सीख लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तौ उपदेशके अनुसार हो है। जैसैं उपदेश दिया तैसैं याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषैं अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपने उपयोगविषैं विचारै, जैसैं उपदेश दिया तैसैं ही है कि अन्यथा है। तहाँ अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तौ ऐसैं है अर ऐसैं न मानिए तौ ऐसैं होय। सो इनविषैं प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है, जो प्रबल भासै, ताकौं साच जानै। बहुरि

जो उपदेशतै अन्यथा साँच भासै वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय, तौ बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनकौ पूछै । बहुरि वह उत्तर दे, वाकौ विचारै। ऐसे ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै। अथवा समानबुद्धिके धारक होय, तिनकौ आपकै जैसा विचार भया होय तैसा कहै। प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै। बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषै निरूपण भया होय, ताकौ एकान्तविषै विचारै । याही प्रकार अपने अन्तरंगविषै जैसै उपदेश दिया था, तैसै ही निर्णय होय भाव न भासै,तावत् ऐसै ही उद्यम किया करै। बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्वनिका उपदेश दिया है,ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै, सन्देह होय, तौ भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै। ऐसै उद्यम किए जैसै जिनदेवका उपदेश है तैसै ही साँच है,मुझकौ भी ऐसे ही भासै है, ऐसा निर्णय होय। जातै जिनदेव अन्यथावादी है नाही।

यहाँ कोऊ कहै—जिनदेव अन्यथावादी नाही है तौ जैसै उनका उपदेश है तैसै श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेकौ कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तौ मानना होय, जो जिनदेव ऐसै कह्या है, सो सत्य है। परन्तु उनका भाव आपकौ भासै नाही। बहुरि भाव भास बिना निर्मल श्रद्धान न होय । जाकी काहू का वचनही करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तौ शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्ही प्रतीति अप्रतीतिवत् है । बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताकौ अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै। तातै भाव भासे प्रतीति होय सोई साची प्रतीति है। बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणतै वचनप्रमाण कीजिए है, तौ पुरुष-

की भी प्रमाणता स्वयमेव न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहलै करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहाँ प्रश्न—उपदेश तौ अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए?

ताका समाधान—उपदेशविषै केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्व निरूपिए है। तहाँ उपादेय हेय तत्वनिकी तौ परीक्षा करि लैना। जातै इन विषै अन्यथापनो भए अपना बुरा हो है। उपादेय-कौ हेय मानि लै तौ बुरा होय, हेयकौ उपादेय मानि लै तौ बुरा होय।

बहुरि जो कहोगे, आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीतैं उपादयकौ उपादेय जानै, हेयकौ हेय जानै, तौ कैसै बुरा होय?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानै। यहु तौ मानि ले, जो मै जिनवचन अनुसारि मानू हूँ। परन्तु भाव भासे बिना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषै भी किंकर कौ किसी कार्यकौ भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानै, तौ कार्यकौ सुधारै, जो भाव न भासै तौ कही चूक हो जाय। तातै भाव भासने के अर्थि हेय उपादेय तत्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय, तौ कहा करिए?

ताका समाधान—जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तौ जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसै न होय तावत् जैसै कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककौं

ढूंढै। तैसैं यह अपनी परीक्षा विषै विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्व है, तिनकी परीक्षा होय सकै, तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्व ही अन्यथा न कहै, तौ ज्ञेयतत्व अन्यथा किस अर्थि कहै। जैसैं कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषै झूठ न बोलै, सो अप्रयोजनविषैं झूठ काहेकौ बोलै। तातैं ज्ञेयतत्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानिए। तिनका यथार्थ स्वरूप न भासै, तौ भी दोष नाहीं। याहीतैं जैनशास्त्रनिविषैं तत्वादिकका निरूपण किया, तहाँतौ हेतु युक्ति आदिकरि जैसैं याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तसैं कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातैं हेयोपादेय तत्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहाँ जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनकौ पहिचानना। बहुरि त्यागनें योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणें योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नमित्तादिक जैसैं है, तैसैं पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषैं जिनकै जानैं प्रवृत्ति होय, तिनकौ अवश्य जानने। सो इनकीतौ परीक्षा करनी। सामान्यपने हेतु युक्तिकरि इनकौ जानने, वा प्रमाण नयकरि जाननैं, वा निर्देश स्वामित्वादिकरि, वा सत् सख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनै, तैसैं इनकौ सामान्य विशेषरूप पहचानने। बहुरि इस जाननेका उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक, वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै, तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना। ऐसैं इस जाननेके

अर्थ कबहूँ आपही विचार करै है, कबहूँ शास्त्र बाँचै है, कबहू सुनै है, कबहूँ अभ्यास करै है, कबहू प्रश्नोत्तर करै है, इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातै अंतरग प्रीतितै ताका साधन करै। या प्रकार साधन करते यावत् साँचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसै ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्वनिका स्वरूप आपकौ न भासै, जैसै पर्यायविषै अहबुद्धि है, तैसैं केवल आत्मविषै अहबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भाव न पहिचानै, तावत् सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही कालमै सम्यक्तकौ प्राप्त होगा। इसही भवमै वा अन्य पर्यायविषै सम्यक्तकौ पावेगा। इस भव मै अभ्यासकरि परलोकविषै तिर्यंचादि गतिविष भी जाय तौ तहाँ सस्कारके बलतै देव गुरु शास्त्रका निमित्त बिना भी सम्यक्त होय जाय। जातै ऐसे अभ्यासके बलतै मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय,तहाँ ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तौ बाह्य निमित्त है, सो मुख्यताकरि तौ इनके निमित्तहीतै सम्यक्त हो है। तारतम्यतै पूर्व अभ्यास सस्कारत वर्तमान इनका निमित्त न होय तौ भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धातविषै ऐसा सूत्र कह्या है—

**"तन्निसर्गादधिगमाद्वा"** ( तत्वा० सू० १,३)

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमत हो है। तहाँ देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सा निसर्गतै भया कहिए। देवादिकका निमित्ततै होय, सो अधिगमतै भया कहिए। देखो तत्व-विचारकी महिमा, तत्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै बहुत

शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तौ सम्यक्त होनेका अधिकार नाही। अर तत्वविचारवाला इन विना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्वविचारके होने पहलै किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अगीकार होय, पीछै तत्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्वविचार भए ही हो है। बहुरि काहूकै तत्वविचार भए पीछं तत्वप्रतीति न होनेतै सम्यक्त तौ न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातै देवादिककी प्रतीति करै है वा व्रत तपकौ अगीकार करै है। काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहलै पीछै भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इस विना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाही। घने जीव तौ पहलै सम्यक्त होय पीछै ही व्रतादिककौ धारै है। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसै यहु तत्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है। परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाही। जातै शास्त्रविषै सम्यक्त होनेतै पहलै पच लब्धिका होना कह्या है—

## पंच लब्धियोंका स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिसको होते सते तत्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालकौ प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषै उदय आवने योग्य तिनही का सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका

उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मद उदय आवनेतें मदकषाय रूप भाव होय, तहाँ तत्वविचार होय सकै सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्वका धारण होय,विचार होय सो देशनालब्धि है। जहाँ नरकादिविषै उपदेशका निमित्त न होय, तहाँ पूर्वसस्कारतै होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अत कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय अर नवीन बध अत.कोटाकोटी प्रमाण ताके सख्यातवे भाग मात्र होय, सो भी तिस लब्धिकालतै लगाय क्रमतै घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतै मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो प्रायोग्य लब्धि है। सो ए च्यारौ लब्धि भव्य या अभव्यकै होय है। इन च्यार लब्धि भए पीछै सम्यक्त होय तौ होय, न होय तौ नाही भी होय। ऐसै 'लब्धिसार' विषै कह्या है‌॥। तातै तिस तत्व विचारवालाकै सम्यक्त्व होनेका नियम नाही। जैसे काहूकौ हितकी शिक्षा दई, ताकौ वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसै है? पीछै विचारता वाकै ऐसै ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तौ प्रतीति नाही भी होय। तैसं श्रीगुरुतत्वोपदेश दिया, ताकौ जानि विचारि करै, यहु उपदेश दिया सो कैसे है। पीछै विचार करनेतै वाकै 'ऐसै ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै, तौ प्रतीति नाही होय। ऐसा नियम है। याका उद्यम तौ तत्वविचार करनें मात्र ही है। बहुरि पाँचवी करणलब्धि

‌॥ लब्धि० ३

भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है । सो जाकै पूर्व कही थी च्यारि लब्धि ते तौ भई होंय अर अतर्मुहूर्त्त पीछै जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस 'करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तौ इतनाही उद्यम हो है—जिस तत्वविचारविषै उपयोगकौ तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय है। जैसे काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीत होय जासी। तैसै तत्वउपदेश ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी । बहुरि इन परिणामनिका? तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताकरि निरूपण करणानुयोगविषै किया है । सो इस करणलब्धिके तीन भेद है— अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तौ लब्धिसार शास्त्रविषै किया है,तिसतै जानना। यहाँ सक्षेपसौ कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम है। तहाँ करण नाम तौ परिणामका है। बहुरि जहाँ पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होय, सो अध.करण है ॐ। जैसे कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भये, पीछै समय समय अनतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसे द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होंय, तैसै केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविष ही होय । ताकै तिसतै समय समय अनन्ती विशुद्धताकरि बधते होय। ऐसै अधःप्रवृत्तिकरण जानना। बहुरि जिसविष पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होय, अपूर्व ही होय, सो अपूर्वकरण है। जैसै तिस करणके परिणाम

ॐ लब्धि० ३५

जैसे पहले समय होय तैसै कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषै न होय, बधते ही होय । बहुरि इहाँ अध करणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिन अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होय। परन्तु यहाँ इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातै भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होय । ऐसं ही जिनकौकरण माँडे द्वितीयादि समयभया होय, तिनकै तिस समयवालौ कै तौ परस्पर परिणाम समान वा असमान होय परन्तु ऊपरले समयवालौकै तिस समय समान सर्वथा न होय, अपूर्व ही होय। ऐसै अपूर्वकरण❀ जानना। बहुरि जिस विषै समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होय। जैसै तिस करणका पहला समयविषै सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समानही होय, ऐसैही द्वितीयादि समयनिविषै समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवालोतै द्वितीयादि समयवालोकै अनत-गुणी विशुद्धता लिए होय। ऐसै अनिवृत्तिकरण‡ जानना। ऐसै ए तीन

---

❀ समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु ।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्त ॥ लब्धि ३६ ॥
तम्हा विदिय करण अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठ ॥ लब्धि० ५१ ॥
करण परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि,
असमाणपरिणामा त्ति ज उत्त होदि । धवला, १-६-८-४

‡ एगसमए वट्टंताण जीवाण परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा । धवला १-६-८-४ । एक्कम्हि कालसमये सठाणादीहिं जह णिवट्टंति । ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहि मिहो जेहिं ॥ गो. जी ५६

करण जाननें। तहाँ पहलै अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंत अधःकरण होय। तहाँ च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त्त करि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय, सो स्थितिबंधापसरण होय, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनंतवे भाग होय; ऐसै च्यारि आवश्यक होय—तहाँ पीछै अपूर्वकरण होय। ताका काल अध.करणके कालके संख्यातवै भाग है। ताविषै ए आवश्यक और होय। एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताकौ घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसतै स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागकौ घटावै, सो अनुभाग कांडक घात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषै क्रमतै असंख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरने योग्य करिए, सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहाँ नाही हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसै अपूर्वकरण भए पीछै अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी सख्यातवै भाग है। तिसविषै पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता काल गए पीछै अन्तरकरण❀ करै है।

---

❀ किमंतरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे ॥ जयध० अ० प० ९५३

अर्थ—अन्तरकरणका क्या स्वरूप है ? उत्तर—विवक्षितकर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोडकर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंके निषेकोंका परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं।

अनिवृत्तिकरणके काल पीछै उदय आवने योग्य ऐसे मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्त्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिकौ अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरणकरि पीछै उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनकौ उदय आवनेकौ अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातै मिथ्यात्वका उदय न होनेतै प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाहीं है। तातै एक मिथ्यात्वकर्महीकौ उपशमाय उपशम-सम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछे भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी ही होय जाय है।

यहाँ प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसै होय ?

ताका समाधान—जैसे किसी पुरुषकौ शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसै ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछे अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातै उस शिक्षाविषै सन्देह भया। ऐसे है कि ऐसै है, अथवा 'न जानो कैसै है', अथवा तिस शिक्षाकौ झूठ जानि तिसतै विपरीत भई तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वं तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमै शिक्षाका विचारतै यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताकौ भूलि जैसै पूर्वं अन्यथा प्रतीत

थी तैसै ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलै तौ कीन्ही, पीछै न तौ किछू अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा ही कर्म उदयतै होनहारके अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीतिका अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसै अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसै जीवकै जिनदेवका तत्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसै ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछै पूर्वै जैसै कहे तैसै अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धानका अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपनै दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषै भासै है—इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाही है। जातै यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तौ अन्य विचारादिक कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरंग समयसम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाही। तातै अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकौ निश्चय होय सकै नाही, केवलज्ञानविषै भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषै कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततै भ्रष्ट होय, सो सादि मिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषै पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो है। विशेष इतना-यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिकी सत्ता हो है सो तिनकौ उपशमाय प्रथमोपशम-सम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहूकै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो मिश्रगुणस्थानकौ प्राप्त हो है। याकै करण न हो है। ऐसै सादिमिथ्या-

दृष्टीकै मिथ्यात्व छूटै दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तकौ वेदकसम्यग्दृष्टीही पावै है तातै ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसै सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तौ मध्यम अन्तर्मुहूर्त्तमात्र उत्कृष्ट किंचित्ऊन अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता, कोई जीव तौ ग्यारवे गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टी होय किंचित् ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत ससारमै रुलै अर कोई नित्यनिगोदमैसौ निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटे पीछै अंतर्मुहूर्त्तमैं केवलज्ञान पावै। ऐसै जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तौ बाह्य जैनीपना नाही नष्ट हो है वा तत्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतै बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तौ जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकौ भी ग्रहै है। निगोदादिविषै भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाही।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततै भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहाँ जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमै आवती नाही। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो है। तहाँ अनंतानुबंधीका तौ उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतैं याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततै भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकौं प्राप्त हो है। तहाँ मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्यम अन्तर्मुहूर्तमात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवलज्ञानगम्य है। यहाँ इतना भासै है—जैसै काहूकौ सीख दई तिसकौ वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानै तैसै तत्वनिका श्रद्धान

अश्रद्धान एकै काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै है—हमकौ तौ जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वदने योग्य है इत्यादि मिश्र श्रद्धानकौ मिश्रगुणस्थान कहै है, सो नाही । यहु तौ प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिकका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है,तौ याकै तो देव कुदेव का किछू ठीक ही नाही। याकै तौ यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है ऐसै जानना। ऐसै सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया । यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है। याका प्रयोजन यह जानना, जो इन प्रकारनिकौ पहिचानि आपविषै ऐसा दोष होय, तौ ताकौ दूरिकरि सम्यक्श्रद्धानी होना। औरनिहीके ऐसे दोष देखि कषायी न होना। जातै अपना भला बुरा तौ अपने परिणामनितै हो है । औरनिकौ रुचिवान् देखिए, तो किछु उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातै अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है । सर्वप्रकारके मिथ्यात्वभाव छोड़ि सम्यग्दृष्टी होना योग्य है । जातै ससारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाही है । एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तौ बध ही मिट जाय। स्थिति अन्त:कोटाकोटी सागरकी रह जाय। अनुभाग थोरा ही रह जाय। शीघ्र ही मोक्षपदकौ पावै । बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहे अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमार्ग न होय। तात जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

**इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषैं जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामैं भया ऐसा सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥७।**

# आठवाँ अधिकार

## उपदेश का स्वरूप

अब मिथ्यादृष्टी जीवनिकौ मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उप-कार करना यहु ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करैं है। तातैं इस शास्त्रविषै भी उनहीका उपदेशके अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातैं उपदेशकौ यथावत् न पहिचानै, तौ अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्तै, तातैं उपदेशका स्वरूप कहिए है—

जिनमतविषै उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग है। तहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषै निरूपण किए होय, सो **प्रथमानुयोग** है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिका जाविषै निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेका जाविषै निरूपण होय,सो **चरणानुयोग** है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिये है—

---

१—रत्नक० २,२। २—रत्नक० २, ३। ३—रत्नक० २, ४। ४—रत्नक० २, ५।

## प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषै तौ ससारकी विचित्रता, पुण्य पापका फल, महंतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिकौ धर्मविषै लगाए है। जे जीव तुच्छबुद्धि होय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो है। जातै वे जीव सूक्ष्मनिरूपणकौ पहिचानै नाही। लौकिक वार्तानिकौ जानै। तहाँ तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोग विषै लौकिक प्रवृत्तिरूप निरूपण होय, ताकौ ते नीकै समझि जांय। बहुरि लोकविषै तौ राजादिककी कथानिविषै पापका छुडावना वा पुण्यका पोषण है, तहाँ महंत पुरुष राजादिक तिनकी कथा सुनै है। परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापकौ छाडि धर्मविषै लगावनेका प्रगट करै है। तातैं ते जीव कथानिके लालचकरि तौ तिसकौ बांचै सुनै, पीछै पापकौ बुरा धर्मकौ भला जानि धर्मविषै रुचिवंत हो है। ऐसै तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेकौ यहु अनुयोगतै 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषै❀ किया है। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान भया होय, पीछै इस प्रथमानुयोगकौ बांचै सुनै, तौ तिनकौ यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसै जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक सयोगी पदार्थ है, ऐसे यहु जानै था। बहुरि पुराणनिविषै जीवनिके भवांतर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगकौ जानै

❀ प्रथम मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगाऽधिकार: प्रथमानुयोग:, जी. प्र. टी गा. ३६१–२

था वा तिनके फलको जानै था। बहुरि पुराणनिविषै तिन उपयोगनि-की प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया,सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेका उदाहरण भया। ऐसै ही अन्य जानना। यहाँ उदा-हरणका अर्थ यहु जो जैसं जानै था तैसै ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातै तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसै कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि सुभटपनविषै अति उत्साहवान् हो है तैसै धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषै अति उत्साहवान् हो है। ऐसै यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

## करणानुयोगका प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषै जीवनिकी वा कर्मनिकी विशेषता वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिकौ धर्मविषै लगाए है। जे जीव धर्मविषै उपयोग लगाया चाहै,ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकै कैसै कैसे पाइए,इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषै नरक स्वर्गादिकके ठिकानें पहिचानि पापतै विमुख होय धर्मविषैं लागै है। बहुरि ऐसे विचार-विषै उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषै ही है, अन्यत्र नाही, ऐसै महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोगकौ अभ्यासै है, तिनकौ यहु तिसका विशेष रूप भासै है।

जो जीवादिक तत्व आप जानै है, तिनहीके विशेष करणानुयोगविषै किए है। तहाँ केई विशेषण तौ यथावत् निश्चयरूप है, केई उपचार लिए व्यवहाररूप है। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप है, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए है। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए है, तिनकौ जैसाका तैसा मानता तिस करणानुयोगकौं अभ्यासै है। इस अभ्यासतै तत्वज्ञान निर्मल हो है। जैसै कोऊ यहु तौ जानै था यहु रत्न है परन्तु उस रत्नके विशेष घने जाने निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसै तत्वनिकौ जानै था ए जीवादिक है परन्तु तिन तत्वनिके घने विशेष जानै तौ निर्मल तत्वज्ञान होय। तत्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकाने उपयोगकौ लगाईए तौ रागादिककी वृद्धि होय, छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहै नाही। तातै ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषै उपयोगकौ लगावै है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेविषै विरुद्ध है नाही। ऐसै यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यकौ कारण सूत्र तिनका जाविषै 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषै गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

## चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषै नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिकौ धर्मविषै लगाईए है। जे जीव हित अहितकौ जानै नाही, हिंसादिक पाप कार्यनिविषै तत्पर

होय रहे है, तिनकौ जैसै वे पापकार्यकौ छोड़ि धर्मकार्यनिविषै लागै तैसै उपदेश दिया, ताकौ जानि धर्म आचरण करनेकौ सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्मका विधान सुनि आपतै जैसा धर्म सधै तैसा धर्म-साधनविषै लागै है । ऐसै साधनतै कषाय मंद हो है । ताके फलतै इतना तौ हो है, जो कुगतिविषै दुख न पावै अर सुगतिविषै सुख पावै । बहुरि ऐसे साधनतै जिनमतका निमित्त बन्या रहै । तहाँ तत्व ज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तौ होय जावै । बहुरि जीवतत्वके ज्ञानी होयकरि चरणानुयोगकौ अभ्यासै है, तिनकौ ए सर्व आचरण अपनें वीतरागभावके अनुसारी भासै है । एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है । जातै इनकै निमित्त नमि-त्तिकपनो पाईए है । ऐसै जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मकौ साधै है । तहाँ जेता अशां वीतरागता हो है, ताकौ कार्यकारी जानै है, जेता अशा राग रहै है, ताकौ हेय जानै है । सम्पूर्ण वीतरागताकौ परम-धर्म मानै है । ऐसै चरणानुयोगका प्रयोजन है ।

## द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है । द्रव्यानुयोगविषै द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपणकरि जीवनिकौ धर्मविषै लगाईए है । जे जीवा-दिक द्रव्यनिकौ वा तत्वनिकौ पहिचानै नाही, आपा परकौ भिन्न जानै नाही, तिनकौ हेतु दृष्टांत युक्तिकरि वा प्रमाण नयादिककरि तिनका स्वरूप ऐसै दिखाया जैसै याकै प्रतीति होय जाय । ताके अभ्यासतै अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्वादिक झूठ भासै,

तब जिनमतकी प्रतीति होय। अर उनके भावकौ पहिचाननेका अभ्यास राखैं तौ शीघ्र ही तत्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्व ज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगकौ अभ्यासे। तिनकौ अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसें काहूनें किसी विद्याकौ सीख लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तौ भूलि जाय। तैसें याकै तत्वज्ञान भया परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै तौ वह तत्वज्ञान रहै, न करै तौ भूलि जाय। अथवा सक्षेपपनै तत्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टातादिककरि स्पष्ट होय जाय तौ तिसविषै शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासतै रागादि घटनेतै शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसें द्रव्यानुयोगका प्रयोजन जानना।

## अनुयोगनिका व्याख्यान

अब इन अनुयोगनिविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोगनिविषै जे मूलकथा है, ते तौ जैसी है तैसो ही निरूपिये है। अर तिनविषै प्रसंग पाय व्याख्यान हो है, सो कोई तौ जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रथकर्त्ताका विचारके अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसै तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषै इन्द्र आया, यहु कथा तौ सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तौ और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहाँ ग्रन्थ-कर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै बचनालाप भया। तहाँ

उनके और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावै है । बहुरि नगर वन सग्रामादिकका नामादिक तो यथावत् ही लिखै अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजन-कौ पोषता निरूपै है । इत्यादि ऐसै ही जानना । बहुरि प्रसगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै । जैसे धर्मपरीक्षाविषैं मूर्खनिकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाही । परन्तु मूर्खपनाकौ पोषती कोई वार्त्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है । ऐसै ही अन्यत्र जानना ।

यहाँ कोऊ कहै—अयथार्थ कहना तौ जैन शास्त्रनिविषै सम्भवै नाही ?

ताका उत्तर—अन्यथा तौ वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै । जैसै काहूकौ कह्या—तू ऐसै कहियो, वानै वे ही अक्षर तौ न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या । ताकौ मिथ्या-वादी न कहिए, तैसै जानना । जो जैसाका तैसा लिखनेकी सम्प्रदाय होय तौ काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था, ताका वर्णन सब लिखे ग्रन्थ बधि जाय, किछू न लिख तौ भाव भासै नाही । तातै वैराग्यके ठिकानै थोरा बहुत अपना विचारके अनुसार वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै । तहाँ प्रयोजन अन्यथा न भया तातै याकौ अयथार्थ न कहिए, ऐसै ही अन्यत्र जानना । बहुरि प्रथमानुयोगविषै जाकी मुख्यता होय, ताकौ ही पोषै है । जैसे काहूनै उपवास किया, ताका तौ फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परि-णतिकी विशेषता भई, तातै विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई । तहाँ तिस

कौ उपवासहीका फल निरूपण करै, ऐसै ही अन्यथा जाननें। बहुरि जैसै काहूनै शीलादिकी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया, ताकै कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये तहाँ तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म उदयतै वैसे कार्य भए तौ भी तिनकौ तिन शीलादिकका ही फल निरूपण करै। ऐसै ही कोई पापकार्य किया, ताकौ तिसहीका तौ तैसा फल न भया अर अन्य कर्मउदयतै नीचगतिकौ प्राप्त भया वा कष्टादिक भए, ताकौ तिसही पापका फल निरूपण करै। इत्यादि ऐसै ही जानना।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तौ योग्य नाही, ऐसे कथनकौ प्रमाण कैसै कीजिए?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषै न लागै वा पापतै न डरै, तिनका भला करनेके अर्थि ऐसै वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तौ तब होय, जब धर्मका फलकौ पापका फल बतावै, पापका फलकौ धर्मका फल बतावै। सो तौ है नाही। जैसै दश पुरुष मिलि कोई कार्य करै, तहाँ उपचारकरि एक पुरुष भी किया कहिए तौ दोष नाही अथवा जाके पितादिकने कोई कार्य किया होय, ताकौ एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिक किया कहिए तौ दोष नाही। तैसै बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका फल भया, ताकौ उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तौ दोष नाही अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, याकौ एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तौ दोष नाही। उपदेशविषै कही व्यवहार वर्णन है, कही

निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसें याको प्रमाण कीजिए है। याकौं तारतम्य न मानि लेना। तारतम्य करणानुयोगविषै निरूपण किया है, सो जानना। बहुरि प्रथमानुयोग विषै उपचाररूप कोई धर्मका अग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसे जिन जीवनिकै शका कांक्षादिक न भए, तिनकै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषै शका काक्षा न किए ही तौ सम्यक्त न होय, सम्यक्त तौ तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तौ व्यवहारविषै उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्तके कोई एक अङ्गविषै सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्तका उपचार किया, ऐसै उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अंग जानें सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो संशयादिरहित तत्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय, परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जानै जैनधर्म अंगीकार किया होय वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा गृही होय, ताकौं श्रावक कहिए, सो श्रावक तौ पंचमगुणस्थानवर्त्ती भए हो है। परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याकौं श्रावक कह्या है। उत्तरपुराणविषै श्रेणिककौं श्रावकोत्तम कह्या, सो वह तौ असयत था। परन्तु जैनी था, तातै कह्या ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिंग धारै वा कोई द्रव्यौं भी अतिचार लगावता होय, ताकौ मुनि कहिए। सो मुनि तौ षष्ठादि गुणस्थानवर्त्ती भए हो है। परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषै मुनिनिकी सख्या कही, तहाँ सर्व ही भावलिंगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिंग धारनेतै सबनिकौ मुनि कहे, ऐसैही अन्यत्र

जानना। बहुरि प्रथमानुयोगविषै कोई धर्मबुद्धितै अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशसा करिये है। जैसै विष्णुकुमार मुनिनका उपसर्ग दूरि किया, सो धर्मानुरागतै किया, परन्तु मुनिपद छोड़ि यहु कार्य करना योग्य न था। जातै ऐसा कार्य तौ गृहस्थधर्मविषै सम्भवै अर गृहस्थ धर्मतै मुनिधर्म ऊँचा है। सो ऊँचा धर्मकौ छोड़ि नीचाधर्म अगीकार किया सो अयोग्य है। परन्तु वात्सल्य अगकी प्रधानताकरि विष्णुकुमार जीकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिकौ ऊँचा धर्मछोड़ि नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसै गुवालिया मुनिकौ अग्नि करि तपाया, सो करुणातै यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गकौं तौ दूरि करै, सहज अवस्थाविषै जो शीतादिककी परीषह हो है तिस कौ दूर किए रति माननेका कारण होय, तामें उनकौ रति करनी नाही, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीतै विवेकी उनकै शीतादिकका उपचार करते नाही। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातै याकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिकौ धर्मपद्धति-विषै जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाही। बहुरि जैसै वज्रकरण राजा सिंहोदर राजाकौ नम्या नाहीं, मुद्रिकाविषै प्रतिमा राखी। सो बड़े बडे सम्यग्दृष्टी राजादिककौ नमै, याका दोष नाही अर मुद्रिका विषै प्रतिमा राखनेमै अविनय होय। यथावत् विधितै ऐसी प्रतिमा न होय, तातै इस कार्यविषै दोष है। परन्तु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मा-नुरागतै मै औरकौ नमों नाही, ऐसी बुद्धि भई, तातै वाकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिको ऐसे कार्य करने युक्त नाही। बहुरि केई पुरुषो नैं पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थ चैत्या-

लय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया। सो ऐसैं किए तौ निःकांक्षित गुणका अभाव होय, निदानबंध-नामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अंतरंगविषैं है, तातैं पाप-हीका बंध होई। परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिकका तौ पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है। इस छलकरि औरनिकौं लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। ऐसैं ही अन्यत्र जानने। ऐसैं ही प्रथमानुयोगविषैं अन्य कथन भी होय, ताकौं यथासम्भव जानि भ्रम-रूप न होना।

अब करणानुयोगविषैं किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिये है— जैसैं केवलज्ञानकरि जान्या तैसैं करणानुयोगविषैं व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तौ बहुत जान्या परन्तु जीवकौं कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषैं हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातैं जैसैं वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषैं उनका किछू भाव भासै, तैसैं संकोचन करि निरूपण करिए है।

यहाँ उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानक कहे, ते भाव अनंतस्वरूप लिये वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनन्तप्रकार शक्तियुक्त है, तिनविषैं बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एकसौ अडतालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषैं अनेक रचना

हैं, तहाँ मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि प्रमाणके अनत भेद तहाँ सख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए, ऐसे ही अन्यत्र जानना। वहुरि करणानुयोगविषै यद्यपि वस्तुके क्षेत्र, काल, भावादिक अखडित है, तथापि छद्मस्थकौ हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषै जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं,तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनकौ एक जीवके निरूपै है, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लिये व्याख्यान जानना। जातै व्यवहारविना विशेष जानि सकै नाही। बहुरि कही निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसे जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतने ही द्रव्य है। सो यथासम्भव जानि लेना। बहुरि करणानुयोगविषै कथन है, ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, बहुरि जे न होंय तिनकौ आज्ञा प्रमाणकरि ही मानने। जैसे जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तौ प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अश निरूपण किए ते आज्ञाहीतै प्रमाण हो हैं। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणानुयोगविषै छद्मस्थनिकी प्रवृत्तिके अनुसार वर्णन किया नाही। केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसें केई जीव तौ द्रव्यादिक का विचार करै है वा व्रतादिक पालै हैं, परन्तु तिनकै अंतरंग सम्यक्त

चारित्रशक्ति नाही, तातै उनकौ मिथ्यादृष्टि अव्रती कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित हैं, अन्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे है, परन्तु उनकै सम्यक्त्वादि शक्तिका सद्भाव है, तातै उनकौ सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अंतरंग कषायशक्ति थोरी है, तौ वाकौ मंदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ थोरी है अर वाकै अंतरंग कषायशक्ति घनी है, तौ वाको तीव्रकषायी कहिए है। जैसै व्यंतरादिक देव कषायनितै नगरनाशादि कार्य करै, तौ भी तिनकै थोरी कषायशक्तितै पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादि जीव कषायकार्य करते दीखै नाही, तिनकै बहुत कषायशक्तितै कृष्णादि लेश्या कही। बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तै, तिनकै बहुत कषायशक्तितै असंयम कह्या अर पंचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्त्तै, ताकै मंदकषाय शक्तितै देशसंयम कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायकी चेष्टा थोरी होती दीसै, तौ भी कर्माकर्षण शक्तिकी अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तौ भी शक्तिकी हीनतातै स्तोक योग कह्या। जैसे केवल गमनादिक्रियारहित भये, तहाँ भी ताकै योग बहुत कह्या। वेंद्रियादिक जीव गमनादि करै है, तौ भी तिनकै योग स्तोक कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कही जाकी व्यक्तता तौ किछू न भासै, तौ भी सूक्ष्मशक्तिके सद्भावतै ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसै मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाही, तौ भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसंज्ञा कही।

अहमिंद्रनिकै दुखका कारण व्यक्त नाही, तौ भी कदाचित् असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुखका कारण व्यक्त नाही,तौ भी कदाचित् साताका उदय कह्या। ऐसें ही अन्यत्र जानना । बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिए सूक्ष्मशक्ति जैसें पाइए तैसें गुणस्थानविषैं निरूपण करै है, वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है । यहाँ कोई करणानुयोगकै अनुसारि आप उद्यम करै, तौ होय सकै नाही । करणानुयोगविषै तौ यथार्थ पदार्थ जनावनेका मुख्यप्रयोजन है । आचरण करावनेकी मुख्यता नाही। तातैं यहु तौ चरणानुयोगादिकके अनुसार प्रवर्त्तै तिसतैं जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है । जैसै आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै, तौ कैसे होय? आप तौ तत्वादिकका निश्चय करनेंका उद्यम करै, तातैं स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय । ऐसें अन्यत्र जानना। एक अंतर्मुहूर्त्त विषै ग्यारवाँ गुणस्थानसौ पड़ि क्रमतैं मिथ्यादृष्टी होय बहुरि चढिकरि केवलज्ञान उपजावै । सो ऐसें सम्यक्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाही, तातैं करणानुयोगके अनुसारि जैसाका तैसा जानि तौ ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसें भला होय, तैसें करै । बहुरि करणानुयोगविषै भी कही उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताकौ सर्वथा तैसें ही न मानना । जैसें हिंसादिकका उपायकौ कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिकके शास्त्राभ्यास कौं कुश्रुतज्ञान कह्या,बुरा दीसै भला न दीसै ताकौ विभंगज्ञान कह्या सो इनकौ छोड़नेके अर्थि उपदेशकरि ऐसें कह्या। तारतम्यतै मिथ्या-

दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान है, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान है । ऐसे ही अन्यत्र जानना । बहुरि कही स्थूल कथन किया होय, ताकौं तारतम्यरूप न जानना । जैसे व्यासतै तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपनै किछू अधिक तिगुणी हो है ऐसे ही अन्यत्र जानना । बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय,ताकौ सर्व प्रकार न जानना । जैसें मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेकौं पापजीव कहे, असयतादिक गुणस्थानवालेकौ पुण्यजीव कहे सो मुख्यपने ऐसे कहे, तारतम्यतैं दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाईए है, ते यथासम्भव जानने । ऐसें ही और भी नाना प्रकार पाईए है, ते यथासम्भव जानने । ऐसे करणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान दिखाया ।

अब चरणानुयोगविषै किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है—

चरणानुयोगविषै जैसें जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है । तहाँ धर्म तौ निश्चयरूप मोक्षमार्ग है, सोई है । ताके साधनादिक उपचारतै धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिकका याविषै निरूपण करिए है । जातै निश्चय धर्मविषै तौ किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाही अर याकै नीचली अवस्थाविषै विकल्प छूटता नाही, तातै इस जीवकौ धर्मविरोधी कार्यनिकौं छुडावनेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषै है । सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है । एक तौ व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है । तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका

ज्ञान नाही है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मकौ सन्मुख भए तिनकौ व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तकौ सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनकौं निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातैं श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी है। सो असज्ञी जीव तौ उपदेश ग्रहणे योग्य नाही, तिनका तौ उपकार इतना ही किया और जीवनिकौं तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्म-प्रबलतातैं निश्चयमोक्षमार्गकौ प्राप्त होय सकै नाही, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनको व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुःखनिका कारण पापकार्य छुडाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषै लगाया। जेता दुःख मिट्या, तितना ही उपकार भया। बहुरि पापीकै तौ पापवासना ही रहै अर कुगतिविषै जाय तहाँ धर्मका निमित्त नाही। तातैं परम्पराय दुःखहीकौ पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषैं जाय, तहाँ धर्मके निमित्त पाईए, तातैं परम्पराय सुखको पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय, तौ मोक्षमार्गकौ भी प्राप्त होय जाय। तातैं व्यवहार उपदेशकरि पापतैं छुडाय पुण्यकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि जे जीव मोक्षमार्गकौ प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य है, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनकौ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषै प्रवर्ताए। श्रीगुरु तौ सर्वका ऐसा ही उपकार करै। परन्तु जिन जीव-निका ऐसा उपकार न बनै, तौ श्रीगुरु कहा करै। जैसा बन्या तैसा ही

उपकार किया। तातैं दोय प्रकार उपदेश दीजिए है । तहाँ व्यवहार उपदेशविषै तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता है । तिनका उपदेशतैं जीव पापक्रिया छोड़ि पुण्यक्रियानिविषै प्रवर्त्तै। तहाँ क्रियाके अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मन्दकषायी होय जाय। सो मुख्य-पनै तौ ऐसें है। बहुरि काहूकै न होय, तौ मति होहु । श्रीगुरु तौ परिणाम सुधारनेके अर्थि बाह्यक्रियानिकौ उपदेशै है। बहुरि निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेशविषै परिणामनिहीकी प्रधानता है । ताका उपदेशतैं तत्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहाँ परिणामके अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया तौ सुधरै ही सुधरै। तातैं श्रीगुरु परिणाम सुधारनेकौ मुख्य उपदेशै है। ऐसें दोय प्रकार उपदेशविषै व्यवहारही का उपदेश होय। तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहत देव, निर्ग्रन्थ गुरु दया धर्मकौ ही मानना औरको न मानना । बहुरि जीवादिक तत्व-निका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शंकादि पच्चीस दोष न लगावने, निःशंकितादिक अग वा सवेगादिक गुण पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है । बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यजनादि अगनिका साधन करना, इत्यादि उपदेश दीजिए है । बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिंसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अगनिकौ पालने इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवकौ विशेप धर्मका साधन न होता जानि, एक आखडी आदिकका ही उपदेश दीजिए है । जैसैं भीलकौ कागलाका मास छुड़ाया, गुवालियाकौ नमस्कार मन्त्र जपने

का उपदेश दिया, गृहस्थकौ चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है, इत्यादि जैसा जीव होय, ताकौं तैसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्वनिका श्रद्धान कराईए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है, सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषै रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिए तिन तत्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतै अरहंतादि बिना अन्य देवादिक झूंठ भासै तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि संशयादिरहित तिनही तत्वनिका तैसे ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेकौ कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातै तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्ततै होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै है। बहुरि मंदरागतै श्रावकमुनिकै व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मंदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसे यथार्थ कोई आखडी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो हैं वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषै साचा परम्पराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसै दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषै जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै तीव्रकषायनिका कार्य छुडाय मंदकषाय रूप कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटै तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहाँ जानना। जैसे जिन जीवनिकै आरम्भादि करनेकी वा मंदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनकौ पूजा प्रभावनादिक करनेका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगै शोभादिक नृत्य गानादिकरनेका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातै इनिविषै परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषै परम्परा कषायपोषण हो है, तातै पापकार्यनितै छुडाय इन कार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानै, तितना पापकार्य छुडाय सम्यक्त वा अणुव्रतादि पालनेका तिनकौं उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिके सर्वथा आरम्भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनकौ पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुडाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनकौ दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। जहाँ सर्वराग दूरि होय, तहाँ किछू करने का कार्य ही रह्या नाही। तातै तिनकौ किछू उपदेश ही नाही। ऐसा क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै कषायी जीवनिकौ कषाय उपजायकरि भी पापकौं छुडाईए है अर धर्मविषै लगाईए है। जैसे पापका फल नरकादिकके दुख दिखाय तिनिकौं भय कषाय उपजाय पापकार्य

छुड़ाइए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनकौ लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रिय-विषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागतै पाप करै है, धर्म पराङ्मुख रहै है, तातै इन्द्रियविषयनिकों मरण क्लेशादिकके कारण दिखावने-करि तिनविषै अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिककौ अशुचि दिखावनेंकरि तहाँ जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिककौं धनादिकके ग्राहक दिखाय तहाँ द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिककौ मरण क्लेशा-दिकका कारण दिखाय तहाँ अनिष्टबुद्धि कराईए है। इत्यादि उपाय-तें विषयादिविषै तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्म-विषै प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-करण पूजा दान शीला-दिकतै इस लोकविषै दारिद्र कष्ट दुःख दूरि हो है,पुत्र धनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसै निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। ऐसै ही अन्य उदाहरण जानने।

यहाँ प्रश्न—जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जैसै रोग तौ शीताग भी है अर ज्वर भी है। परन्तु कोईकै शीतांगतै मरण होता जानै, तहाँ वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै। ज्वर भए पीछै वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछै ज्वरके मेटनेका उपाय करै। तैसै कषाय तौ सर्व ही हेय है,परन्तु कोई जीवनिकै कषायनितै पापकार्य होता जानै, तहाँ श्रीगुरु हैं सो उनकै पुण्यकार्यकौ कारणभूत कषाय होनेका उपाय करै, पीछे वाकै सांची धर्मबुद्धि जानें, तब पीछे तिस कषाय मेटनेका उपाय करै, ऐसा

प्रयोजन जानना। बहुरि चरणानुयोगविषै जैसे जीव पापकौ छोड़ि धर्मविषै लागै, तैसै अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहाँ लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाईए है वा कही अन्यमतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसे सूक्तमुक्तावली विषै लक्ष्मीको कमलवासिनी कही वा समुद्रविषै विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसै ही अन्यत्र कहिए है। तहाँ कोई उदाहरणादि झूठे भी है, परन्तु साँचा प्रयोजनकौ पोषै है। तातै दोष नाही।

यहाँ काऊ कहै कि झूठका तौ दोष लागै। ताका समाधान—जो झूठ भी है अर साचा प्रयोजनकौ पोषै तौ वाको झूठ न कहिए। बहुरि सांच भी है अर झूठा प्रयोजनकौ पोषै तौ वह झूठा ही है। अलकारयुक्त नामादिकविषै वचन अपेक्षा झूठ साच नाही, प्रयोजन अपेक्षा झूठ साच है। जैसे तुच्छशोभासहित नगरीकौं इन्द्रपुरीके समान कहिए है, सो झूठ है। परन्तु शोभाका प्रयोजनकौ पोषै है, तातै झूठ नाही। बहुरि "इस नगरीविषै छत्रहीकै दड है अन्यत्र नाही" ऐसा कह्या, सो झूठ है। अन्यत्र भी दड देना पाईए है, परन्तु तहाँ अन्यायवान् थोरे है, न्यायवानको दण्ड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनकौ पोषै है, तातै झूठ नाही। बहुरि बृहस्पतिका नाम 'सुर-गुरु' लिखै वा मगलका नाम 'कुज' लिखै, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा है। इनका अक्षरार्थ है सो झूठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थकौ प्रगट करै है, तातै झूठ नाही। ऐसै अन्य मतादिकके उदाहरणादि दीजिए है सो झूठे है परन्तु उदाहरणादिकका त

श्रद्धान करावना है नाही, श्रद्धान तौ प्रयोजनका करावना है। सो प्रयोजन सांचा है, तातै दोष नाहीं है। बहुरि चरणानुयोगविषै छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातै तिसका आचरण न होय सकै। यहाँ आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसे अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि कार्यविषै त्रस हिंसा हो है। यहु भी जानै है—जिनवानी विषै यहाँ त्रस कहे हैं। परन्तु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाही अर लोकविषै जाका नाम त्रसघात है, ताकौ करै नाही। तातै तिस अपेक्षा वाकै त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषै गमनादि करै है, तहाँ सर्वथा त्रसका भी अभाव नाही। जातै त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषै ही है। सो मुनि जिनवानीतै जानै है वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै है परन्तु याकै प्रमादतै स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाही। बहुरि लोकविषै भूमि खोदना अप्रासुक जलतै क्रिया करनी इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है अर स्थूल त्रसनिके पीडनेका नाम त्रस हिंसा है, ताकौ न करै। तातै मुनिकै सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसै ही अनृत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवाँ गुणस्थान पर्यन्त कह्या। अदत्त कर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरवाँ गुणस्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है। अंतरंगपरिग्रह

दशवां गुणस्थानपर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है। परन्तु प्रमादतैं पापरूप अभिप्राय नाहीं अर लोकप्रवृत्तिविषैं जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावै, वे क्रिया इनकै है नाहीं। तातैं अनृतादिकका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जैसे मुनिकै मूलगुणनिविषैं पचइन्द्रियनिके विषयका त्याग कह्या सो जानना तौ इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अर विषयनिविषैं रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय तौ यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाहीं परन्तु स्थूलपने विषय इच्छाका अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावनेकी प्रवृत्ति दूरि भई तातैं याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोकप्रवृत्तिके अनुसारि त्याग करै है। जैसे काहूनै त्रसहिंसाका त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषै वा लोकविषैं जाकौं त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है। केवलज्ञानादि जे त्रस देखिए हैं तिनिकी हिंसाका त्याग बनै ही नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसाका त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसैं अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिए ही हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो करणानुयोगविषै तौ केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थाननिमे सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसे कह्या ?

ताका उत्तर—अविरत भी योगकषायविषै गर्भित थे; परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरत कह्या है। तातै तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो है, परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवृत्तिके अभावतैं मनअविरतिका अभाव कह्या, ऐसा जानना। बहुरि चरणानुयोगविषै व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसैं सम्यक्त्वीकौ पात्र कह्या, मिथ्यातीकौं अपात्र कह्या। सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाईए सो तौ सम्यग्दृष्टि, जाकै तिनका श्रद्धान नाही सो मिथ्यात्वी जानना। जातै दान देना चरणानुयोगविषै कह्या है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करनें। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहे वो ही जीव ग्यारवे गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्त्तमै पहिले गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र अपात्रका कैसे निर्णय करि सकं ? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं मुनि संघविषै द्रव्यलिगी भी हैं, भावलिंगी भी है। सो प्रथम तौ तिनका ठीक होना कठिन है जातै बाह्य प्रवृत्ति समान है। अर जो कदाचित् सम्यक्तीकौ कोई चिन्हकरि ठीक पड़ै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै संशय होय,याकी भक्ति क्यों न करी। ऐसैं वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब संघविषै विरोध उपजै। तातै यहाँ व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तौ द्रव्यलिंगीकौं आपतै हीनगुण-युक्त मानै है, ताकी भक्ति कैसे करै ?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है । तातै जैसैं कोई धनवान होय परन्तु जो कुलविषै बडा होय ताकौ कुल अपेक्षा बडा जानि ताका सत्कार करै, तैसै आप सम्यक्त्वगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषै प्रधान होय ताकौ व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है,ऐसा जानना । बहुरि ऐसैं ही जो जीव बहुत उपवासादि करै, ताकौ तपस्वी कहिए है । यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष कर है, सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि चरणानुयोगविषैं बाह्यतपकी प्रधानता है । तातै तिसहीकौ तपस्वी कहिए है । याही प्रकार अन्य नामादिक जानने । ऐसैं ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान जानना ।

अब द्रव्यानुयोगविषै कहिए है—

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसैं होय, तैसं विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण कीजिए है । जातै या विषै यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है । तहाँ यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है, तथापि तिनविषै भेदकल्पनाकरि व्यवहारतै द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है । बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है । बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेकौ हेतु दृष्टांतादिक दीजिए है । ऐसैं तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेका उपदेश दीजिए है । बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेके अर्थ जीवादि तत्वनिका विशेष युक्ति दृष्टातादिकरि निरूपण कीजिए

है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसें होय तैसें जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसें होय तैसें आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहाँ मुख्यपने ज्ञान वैराग्यकौ कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए हैं। बहुरि द्रव्यानुयोग विषै निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहाँ व्यवहारधर्मका भी निषेध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवनके उपायकौ न करें है अर बाह्य क्रियाकांडविषै मग्न है, तिनको तहांतै उदासकरि आत्मानुभवनादिविषै लगावनेकौ व्रत शील संयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनकौ छोड़ि पापविषै लगना। जातै तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषै लगावनेका नाही है। शुद्धोपयोगविषै लगावनेकौ शुभोपयोगका निषेध कीजिए है।

यहाँ कोऊ कहै कि—अध्यात्म-शास्त्रनिविषै पुण्य पाप समान कहे है, तातै शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तौ पुण्यविषै लगो वा पापविषै लगो।

ताका उत्तर—जैसें शूद्रजातिअपेक्षा जाट चांडाल समान कहे परन्तु चांडालतै जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है। तैसें बंधकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान है परन्तु पापतै पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मंदकषायरूप है। तातै पुण्य छोड़ि पापविषै लगना युक्त नाहीं ऐसा जानना। बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषै ही मग्न है, तिनकौ आत्मश्रद्धानादि करावनेकौ "देहविषै देव है, देहुराविषै नाही" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति छुड़ाय भोजनादिकतैं

आपकौ सुखी करना। जातै तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाही है। ऐसै ही अन्य व्यवहारका निषेध तहाँ किया होय, ताकौ जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना—जे केवल व्यवहारविषै ही मग्न है, तिनकौ निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारकौ हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषै सम्यग्दृष्टीके विषय भोगादिककौ बधका कारण न कह्या, निर्ज्जराका कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टीकी महिमा दिखावनेकौ जे तीव्रबधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिककौ होनेसंते भी श्रद्धानशक्तिके बलतै मन्दबध होने लगा; ताकौ तौ गिन्या नाही अर तिसही बलतै निर्ज्जरा विशेष होने लगी, तातै उपचारतै भोगनिकौ भी बधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए भोग निर्ज्जराके कारण होय, तौ तिसकौ छोड़ि सम्यग्दृष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेकौ करै? यहाँ इस कथनका इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्तकी महिमा जाके बलतै भोग भी अपने गुणकौ न करि सकै है। या प्रकार और भी कथन होय, तौ ताका यथार्थपना जानि लेना। बहुरि द्रव्यानुयोगविषै भी चरणानुयोगवत् ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातै छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषै तौ बाह्य-क्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है, द्रव्यानुयोगविषै आत्म-परिणामनिकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि करणानुयोग वत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिए है—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसै तीन भेद कहे। तहाँ धर्मानुरागरूप

परिणाम सो शुभोपयोग, पापानुराग वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसैं कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषं कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषै संक्लेश विशुद्ध परिणाम निरूपण किया है, सो विवक्षा यहाँ नाही है। करणानुयोगविषै तौ रागादिरहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र भए होय, सो मोहका नाशतै स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोग साधन कैसै करै। अर द्रव्यानुयोगविष शुद्धोपयोग करनेही का मुख्य उपदेश है, तातै यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषं बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिकौ छुड़ाय आत्मानुभवनादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तै, तिस काल ताकौ शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक है तथापि ताकी विवक्षा यहाँ न करी, अपनी बुद्धिगोचररागादिक छोडै तिस अपेक्षा याकौ शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसै ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्तादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानादिविषं सम्यक्तादिकका निरूपण करणानुयोगविषै पाईए है। ऐसै ही अन्यत्र जाननै। तातै द्रव्यानुयोगके कथनकी करणानुयोगतै विधि मिलाया चाहै सो कही तौ मिलै, कही न मिलै। जैस यथाख्यातचारित्र भए तौ दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषं द्रव्यानुयोग अपेक्षा तौ कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअश के सद्भावतै शुद्धोपयोग नाही। ऐसै ही अन्य कथन जानि लैना। बहुरि द्रव्यानुयोगविष

परमतविषै कहे तत्वादिक तिनकौ असत्य दिखवानेके अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी । तिनकौ असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेका प्रयोजन जानना। ऐसे ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषे व्याख्यानका विधान है। या प्रकार च्यारौ अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या। सो कोई ग्रन्थविषै एक अनुयोगकी, कोई विषै दोयकी, कोई विषै तीन की, कोई विषै च्यारोकी प्रधानता लिए व्याख्यान हो है । सो जहाँ जैसा सम्भवै, तहाँ तैसा समझ लेना ।

## अनुयोगोंमें पद्धति विशेष

अब इन अनुयोगनिविषै कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाईए है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोगविषै तौ अलकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै अलंकारादिकतै मन रंजायमान होय, सूधी बात कहे ऐसा उपयोग लागै नाही जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथनतै उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बातकौ किछू अधिकताकरि निरूपण करिए, तो वाका स्वरूप नीके भासै । बहुरि करणानुयोगविषै गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायतै ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि चरणानुयोगविषै सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै यहाँ आचरण करावना है,सो लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह

आचरण करै। बहुरि द्रव्यानुयोगविषै न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषै निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसै इन अनुयोगनिविषै पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धति लिए व्याख्यान इनविषै पाईए है।

यहाँ कोऊ कहै—अलकार गणित नीति न्यायका तौ ज्ञान पडित-निकै होय, तुच्छबुद्धि समझै नाही तातै सूधा कथन क्यों न किया?

ताका उत्तर—शास्त्र है सो मुख्यपने पडित अर चतुरानिके अभ्यास करने योग्य है। सो अलंकारादि आम्नाय लिए कथन होय तौ तिनका मन लागै। बहुरि जे तुच्छबुद्धि है, तिनकौ पडित समझाय दे। अर जे न समझि सकै, तौ तिनकौ मुखतै सूधा ही कथन कहै। परन्तु ग्रन्थनिमै सूधा कथन लिखे विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषै विशेष न प्रवर्त्तै। तातै अलंकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसै इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषै घने शास्त्र तौ इन च्यारौ अनुयोगनिविषै गर्भित है। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष वा मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषै पाईए है। तिनका कहा प्रयोजन है, सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातै व्याकरणादि शास्त्र कहे है।

कोऊ कहै— भाषारूप सूधा निरूपण करते तौ व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था?

ताका उत्तर—भाषा तौ अपभ्रशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देश

विषै और और है। सो महत पुरुष शास्त्रनिविषै ऐसी रचना कैसै करें। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषै होय सकै नाही। तातै व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारतै जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिकतै उपकार भी बनै। अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषै अनुरक्त हैं ते वैद्यकादिक चमत्कारतै जैनी होय पीछै साँचा धर्म पाय अपना कल्याण करै। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे है। यहाँ इतना है—ए भी जिनशास्त्र है, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषै बहुत लगना नाही। जो बहुत बुद्धितै इनिका सहज जानना होय अर इनिकौ जाने आपकै रागादिक विकार बधते न जानै, तौ इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाही। तातै इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाही।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है, तौ गणधरादिक इनकी रचना काहेकौ करी?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी जैसै बहुत धनवान् कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका संचय करै तौ धन तौ तहाँ लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका संग्रह काहेतै करै। तैसै बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करै। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषै लागै तौ बुद्धि

तौ तहाँ लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसें करै? बहुरि जैसे मंदरागी तौ पुराणादिविषैं शृङ्गारादि निरूपण करै तौ भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसें शृङ्गारादि निरूपै तौ पाप ही बाँधै। तैसे मंदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपै तौ भी विकारी न होंय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषै लगि जाय, तौ रागादिक बधाय पापकर्मको बाँधै, ऐसे जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

## अनुयोगोमें दोष-कल्पनाओंका प्रतिषेध

अब इनविषैं दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण करिए है—

केई जीव कहै हैं—प्रथमानुयोगविषै शृङ्गारादिकका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करै, तिनके निमित्ततै रागादिक बधि जाय, तातै ऐसा कथन न करना था। ऐसा कथन सुनना नाही। ताकौ कहिए है—कथा कहनी होय, तब तौ सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलंकारादिकरि बधाय कथन करै है, सो पंडितनिके वचन युक्ति लिए ही निकसै।

अर जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावनेतै सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेकौ किया?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनकौ बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाही। बहुरि पहलै तौ भोग संग्रामादि ऐसें किए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततै रागादिक बधि जाय।

सो जैसे कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तौ प्रयोजन तहाँ धर्मकार्य करावनेका है । अर कोई पापी तहाँ पापकार्य करै, तौ चैत्यालय बनावनेवालेका तौ दोष नाही । तैसे श्रीगुरु पुराणादिविषै शृङ्गारादि वर्णन किए, तहाँ उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तौ है नाही, धर्मविषै लगावनेका प्रयोजन है । अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तौ श्रीगुरुका कहा दोष है ?

बहुरि जो तू कहै—जो रागादिकका निमित्त होय, सो कथन ही न करना था ।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषै लागै नाही । तातै जैसे बालककौ पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसे सरागीकौ भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषै रुचि कराईए है ।

बहुरि तू कहेगा—ऐसे है तौ विरागी पुरुषनिकौ तौ ऐसे ग्रथनिका अभ्यास करना युक्त नाही ।

ताका उत्तर यहु है—जिनकै अन्तरंगविषै रागभाव नाही, तिनके शृंगारादि कथन सुने रागादि उपजै ही नाही । यहु जानै ऐसे ही यहाँ कथन करनेकी पद्धति है ।

बहुरि तू कहेगा—जिनकै शृङ्गारादि कथन सुने रागादि होय आवै, तिनकौ तौ वैसा कथन सुनना योग्य नाही ।

ताका उत्तर यहु है—जहाँ धर्महीका तौ प्रयोजन अर जहाँ तहाँ धर्मकौ पोषै ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषैं प्रसग पाय शृङ्गारादिकका कथन किया, ताकौं सुने भी जो बहुत रागी भया तौ वह अन्यत्र कहाँ

विरागी होसा, पुराण सुनना छोड़ि और कार्य भी ऐसा ही करैगा जहां बहुत रागादि होय। तातै वाकै भी पुराण सुने थोरा बहुत धर्म-बुद्धि होय तौ होय। और कार्यनितै यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषै अन्य जीवनिकी कहानी है, यातै अपना कहा प्रयोजन सधै है?

ताकौ कहिए है—जैसे कामीपुरुषनिकी कथा सुन आपकै भी काम का प्रेम बधै है, तैसे धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुनै आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातै प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि केई जीव कहै है—करणानुयोगविषै गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनकौ जानि लिया 'यहु ऐसै है' 'यहु ऐसै है', यामे अपना कार्य कहा सिद्ध भया? कै तौ भक्ति करिए, कै व्रत दानादिकरिए, कै आत्मानुभवन करिए, इनतै अपना भला होय।

ताकौ कहिए है—परमेश्वर तौ वीतराग है। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाही। भक्ति करते मदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषैं तिसतैं भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातै याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तौ कषाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन है, अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहाँ उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होंय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातै यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषै उपयोग

थम्भै नाही, अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका अभ्यास होय, तौ तिस विचारविषै उपयोगकौ लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है। अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातै यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार भेद जानै, तिनविषै रागादिकरनेका प्रयोजन नाही, तातै रागादि बधै नाही। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ तहाँ प्रगटै है, तातै रागादि मिटावनेकौ कारण है।

यहाँ कोऊ कहै—कोई तौ कथन ऐसा ही है, परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे तिनमे कहा सिद्धि है ?

ताका उत्तर—तिनकौ जाने किछू तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातै पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

बहुरि वह कहै है—ऐसै है तौ जिसतै किछू प्रयोजन नाही, ऐसा पाषाणादिककौ भी जानै तहाँ इष्ट अनिष्टपनो न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूकौ जानने का उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय, तौ अतरग रागादिकका अभिप्रायके वशकरि तहाँतै उपयोगकौ छुडाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिककौ जानै है तहाँ उपयोग लगावै है। सो रागादि घटै ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषै इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय, तौ रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषै इस लोकसम्बन्धी कार्य किछू नाही तातै रागादिकका कारण नाही। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहाँ राग होय, तौ

परलोकसम्बन्धी होय। ताका कारण पुण्यकौ जानै तब पाप छोड़ि पुण्यविषै प्रवर्त्तै, इतना ही नफ़ा होय। बहुरि द्वीपादिकके जानै यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूंठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटे उपयोगकी निर्मलता होय, तातै यह अभ्यास कायकारी है।

बहुरि केई कहै है—करणानुयोगविषै कठिनता घनी, तातै ताका अभ्यासविषैं खेद होय।

ताकौं कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेमै आवै, तहाँ उपयोग उलझै नाही अर जानी वस्तुकौ बारम्बार जाननेका उत्साह होय नाही, तब पापकार्यनिविषै उपयोग लगि जाय। तातै अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानै, ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाही, ताका कैसे करै? बहुरि तू कहै है—खेद होय सो प्रमादी रहनेमै तौ धर्म है नाही। प्रमादतैं सुखिया रहिए, तहाँ तौ पाप ही होय। तातै धर्मके अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

बहुरि केई जीव ऐसे कहै है—चरणानुयोगविषै बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितै किछू सिद्धि नाही। अपने परिणाम निर्मल चाहिएं,बाह्य चाहो जैसै प्रवर्त्तौ। तातै इस उपदेशतै पराङ्मुख रहै है। तिनकौ कहिए है—आतमपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातै छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो है। कदाचित् बिना परिणाम हू कोई क्रिया हो है, सो परवशतैं हो है। अपनें वशतै उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस

रूप नाही है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थनिका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातैं परिणाम मेटनेके अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषै कह्या है। इसही वास्ते रागादिभाव घटें बाह्य ऐसे अनुक्रमतें श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसें श्रावक मुनिधर्म अगीकार किए पचम षष्ठमआदि गुणस्थानविषै रागादि घटावनेरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोग-विषै किया। बहुरि जो बाह्य सयमतैं किछू सिद्धि न होय, तौ सर्वार्थ-सिद्धिके वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तौ चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोडि काहेकौं सयम ग्रहै। तातैं यहु नियम है—बाह्य सयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकै हैं। तातैं बाह्य साधनका विधान जाननेकौं चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

बहुरि केई जीव कहै है—जो द्रव्यानुयोगविषै व्रत सयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगा-दिककौं निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव है, सो स्वछन्द होय पुण्य छोड़ि पापविषै प्रवर्त्तेंगे, तातैं इनिका बाचना सुनना युक्त नाही। ताकौं कहिए है—जैसैं गर्दभ मिश्री खाय मरै, तौ मनुष्य तौ मिश्री खाना न छोडै। तैसैं विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वछन्द होय, तौ विवेकी तौ अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोडै। इतना करै—जाकौं स्वछन्द होता जानै, ताकौं जैसैं वह स्वच्छन्द न होय, तैसैं उपदेश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषै भी

स्वच्छन्द होनेका जहाँ तहाँ निषेध कीजिए है, तातै जो नीके तिनकौं सुनै, सो तौ स्वछन्द होता नाही । अर एक बात सुनि अपने अभिप्रायतै कोऊ स्वच्छन्द होय, तौ ग्रन्थका तौ दोष है नाही, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूंठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्म-शास्त्रका वाँचना सुनना निषेधिए तौ मोक्षमार्गका मूल उपदेश तौ तहाँ ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध हाय। जैसे मेघ-वर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पड़, तौ तिसकी मुख्यताकरि मेघका तौ निषेध न करना। तैसे सभाविषै अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिको मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूकै उलटा पाप प्रवर्त्तै, तौ तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनि-का तौ निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितै कोऊ स्वच्छन्द होय सो तौ पहलै भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पड़ै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भए बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामैं घने जीवनिका घना बुरा होय। तातै अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहै है—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है । सो ऊँची दशाकौं प्राप्त होय, तिनकौ कार्यकारी है, नीचली दशावालोंको तौ व्रत सयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है ।

ताकौं कहिए है—जिनमतविषै तौ यहु परिपाटी है,जो पहलै सम्यक्त होय पीछै व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय अर सो

श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किए होय। तातै पहलै द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टी होय, पीछै चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि व्रती होय । ऐसै मुख्यपनै तौ नीचली दशाविषै ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपने जाकै मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती न जानिए, ताकौ कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। जातै ऊँची दशावालौंकौ अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचलीदशावालौ कौ तहाँतै पराङ्मुख होना योग्य नाही।

बहुरि जो कहोगे—ऊँचा उपदेशका स्वरूप नीचली दशावालौकौ भासै नाही।

ताका उत्तर यहु है—और तो अनेक प्रकार चतुराई जानै अर यहाँ मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाही । अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा बहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेकौ पोषिए, सो तौ जिनमार्गका द्वेषी होना है । बहुरि जो कहोगे, अबार काल निकृष्ट है, तातै उत्कृष्ट अध्यात्मका उपदेशकी मुख्यता न करनी। ताकौ कहिए है—अबार काल साक्षात् मोक्ष होनेकी अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्त्वादिकका होना अबार मनै नाही। तातै आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानुयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुडविषै (मोक्षपाहुडमे) कह्या है:—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए।
लोयंते देवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥

याका अर्थ—अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माकौ ध्यायकरि

सुरलोकविषै प्राप्त हो है, वा लौकान्तिकविष देवपणों पावै है। तहाँ तैं च्युत होय मोक्ष जाय है। बहुरि* तातैं इस कालविषै भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए। बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषैं अध्यात्मशास्त्र है, तहाँ स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया, सो तौ कार्यकारी भी घना अर समझिमै भी शीघ्र आवै। परन्तु द्रव्य-गुणपर्यायादिकका वा अन्यमतके कहे तत्वादिकका निराकरणकरि कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतै विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमै आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनकौ कहिए है—

सामान्य जाननेतैं विशेष जानना बलवान् है। ज्यो-ज्यो विशेष जानै त्यौ-त्यौ वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ़ होय, रागादि घटै तातै तिस अभ्यासविषै प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसै च्यारौ अनुयोगनिविषैं दोषकल्पनाकरि अभ्यासतै पराङ्मुख होना योग्य नाही।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र है, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातै इनिका ज्ञान बिना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै नाही। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जाने जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाही। तातै परम्परा कार्यकारी जानि इनका भी अभ्यास करना। परन्तु इनहीविषै फसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यामविषै प्रवर्त्तना। बहुरि

* यहाँ 'बहुरि' के आगे ३—४ लाइन का स्थान खरडाप्रति मे छोड़ा गया है जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी वहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे मगर लिख नही सके।

वैद्यकादि शास्त्र है, तिनतै मोक्षमार्गविषै किछू प्रयोजन ही नाही। तातै कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतै विनाखेद इनिका अभ्यास होय जाय तौ उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तौ मति होहु, बिगार किछू नाही। ऐसै जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

## अनुयोगोंमें सापेक्ष उपदेश

अब शास्त्रनिविषै अपेक्षादिककौ न जाने परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहाँ जैसे कथन किया होय, तहाँ तैसै जानि लेना। और अनुयोगका कथनकों और अनुयोगका कथनतै अन्यथा जानि सन्देह न करना। जैसै कही तौ निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकै शंका कांक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कही भयका आठवाँ गुण स्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका आठवाँ पर्यन्त उदय कह्या। तहाँ विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया अथवा मुख्यपनै सम्यग्दृष्टी शकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषै शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाईए है। तातैं करणानुयोगविषै तहाँ पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसें ही अन्यत्र जानना। पूर्वैं अनुयोगनिका उपदेशविधानविषै केई उदाहरण कहे है, ते जानने अथवा अपनी बुद्धितै समझि लेने। बहुरि एक ही अनुयोगविषै विविक्षाके वशतै अनेकरूप कथन करिए है। जैसै करणानुयोग

विषै प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषैं अभाव कह्या, तहाँ कषायादिक प्रमादके भेद कहे । बहुरि तहाँ ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं यहाँ प्रमादनिविषैं तौ जे शुभ अशुभ भावनिका अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है । सो सप्तम गुणस्थानविषै ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातैं तिनिका तहाँ अभाव कह्या । बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है । बहुरि चरणानुयोगविषै चोरी परस्त्री आदि सप्तव्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषै कह्या, बहुरि तहाँ ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमाविषै कह्या । तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं सप्तव्यसनविषै तौ चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहे है, जिनकरि दंडादिक पावै, लोकविषै अतिनिन्दा होय । बहुरि व्रतनिविषै चोरी आदि त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे है, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिद्य होय, ऐसा अर्थ जानना । ऐसै ही अन्यत्र जानना । बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षतैं एक ही भावकौ अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है । जैसैं कहीं तौ महाव्रतादिक चारित्रके भेद कहे, कही महाव्रतादि होतैं भी द्रव्यलिगीको असयमी कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातै सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रतादिक तौ चारित्र है अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असयमी ही है । बहुरि जैसें पच मिथ्यात्वनिविषैं भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषै भी विनय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं विनय करने योग्य नाही तिनका भी विनय करि धर्म मानना, सो तौ विनय मिथ्यात्व है अर धर्मपद्धतिकरि जे

विनय करने योग्य है, तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है । बहुरि जैसै कही तौ अभिमानकी निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातै मानकषायतै आपको ऊँचा मनावनेके अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तौ निद्य ही है अर निर्लोभपनातै दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशसा योग्य है। बहुरि जैसै कही चतुराई की निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातै मायाकषायतै काहूका ठिगनेके अर्थ चतुराई कीजिए, सो तौ निंद्य ही है अर विवेक लिए यथासम्भव कार्य करनेविषै जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि एक ही भावकी कही तौ उसतै उत्कृष्ट भावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय अर कही तिसतै हीनभावकी अपेक्षाकरि प्रशसा करी होय, तहाँ विरुद्ध न जानना । जैसे किसी शुभक्रियाकी जहाँ निन्दा करी होय, तहाँ तौ तिसतै ऊँची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहाँ प्रशसा करी होय, तहाँ तिसतै नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जाननी, ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसै ही काहू जीवकी ऊँचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहाँ सर्वथा निन्दा न जाननी । काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशसा करी होय, तौ सर्वथा प्रशसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लैना, ऐसे ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिए किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना । बहुरि शास्त्रविषै एक ही शब्दका कही तौ कोई अर्थ हो है, कही कोई अर्थ हो है, तहा प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थ जानना । जैसे

मोक्षमार्गविषै सम्यग्दर्शन कह्या तहाँ दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थसामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रियवर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखनें मात्र है। बहुरि जैसै सूक्ष्म बादरका अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथनविषै छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बड़ा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कंधादिका कथनविषैं इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषैं ऋद्धि आदिका निमित्त विना स्वयमेव रुकै नाहीं ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषैं महीनताका नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। करणानुयोगके कथनविषै पुद्गल-स्कंधके निमित्ततैं रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है।

बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषै तौ इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदनिविषें स्पष्ट व्यवहार प्रतिभासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषै आपविषै अवस्था होय ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसै मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञानका अभाव न जानना, सम्यग्ज्ञानके अभावतै अज्ञान कह्या हैं। बहुरि जैसे उदीरणा शब्दका अर्थ जहाँ देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तौ अन्य निमित्ततैं मरण होय, ताका नाम उदीरणा है। अर दश करणनिका कथनविषै उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या। तहाँ तौ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषै दीजिए, ताका नाम उदी-

रण है। ऐसे ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना। बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़े अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ है। तहाँ जैसा सम्भवै, तैसा अर्थ जानना। जैसे 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषै कर्मशत्रुकौ जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दकौ पूर्वै जोड़े जो अर्थ होय, सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसे 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहाँ जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहाँ तौ इन्द्रियादि प्राणधारै, सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय, तहाँ चैतन्यप्राणकौ धारै, सो जीव है। बहुरि जैसे समय शब्दके अनेक अर्थ है तहाँ आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थनिका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र कालका नाम समय है, शास्त्रका नाम समय है, मतका नाम समय है। ऐसैं अनेक अर्थनिविषै जैसा जहाँ सम्भवै, तैसा तहाँ अर्थ जानि लैना। बहुरि कही तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कही रूढि अपेक्षा नामादिक कहिए है। जहाँ रूढि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढ़िवाद अर्थ होय, सो ही ग्रहण करना। जैसे सम्यक्त्वादिककौ धर्म कह्या तहाँ तौ यहु जीवोकौ उत्तमस्थानविषै धारै है, तातै याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्यका नाम धर्म कह्या तहाँ रूढि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि कही जो शब्दका अर्थ होता होइ सो तो न ग्रहण करना अर तहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना।

जैसै कही किसीका अभाव कह्या होय अर तहाँ किंचित् सद्भाव पाईए, तौ तहाँ सर्वथा अभाव न ग्रहण करना । किंचित् सद्भावकौ न गिरिण अभाव कह्या है,ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीके रागादिकका अभाव कह्या, तहाँ ऐसे अर्थ जानना। बहुरि नोकषायका अर्थ तौ यहु—'कषायका निषेध' सो तौ अर्थ न ग्रहण करना अर यहाँ क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाहीं, किंचित् कषाय है तातैं नोषाय है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसै ही अयन्त्र जानना । बहुरि जैसैं कही कोई युक्तिकरि कथन किया होय, तहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। **समयसारका कलश**विषै‡ यहु कह्या-"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिकौं न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहाँ यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होतै ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषै काहूके आवतै ही कोई कार्य भया होय, तहाँ ऐसै कहिए—"जो यहु आया ही नाही अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसै कही प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहाँ न मानि लैना,तहाँ प्रयोजन होय सो जानना। **ज्ञानार्णव**विषैं ऐसा है—"अवार दोय तीन सत्पुरुष हैं❋ !" सो नियमतै इतने ही नाही। यहाँ

‡ अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥
(जीव० २९)

❋ दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशयाः
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः ।

'थोरे है' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसे ही अन्यत्र जानना। इसही रीति लिएं और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ ही है, तिनकौ यथासम्भव जानने। विपरीत अर्थ न जानना। बहुरि जो उपदेश होय, ताकौ यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय, ताका अंगीकार करना। जैसें वैद्यकशास्त्रनिविषै अनेक औषधि कही है, तिनकौ जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तौ उष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै। यहु औषधि औरनिकौ कार्यकारी है, ऐसा जानै। तैसें जैनशास्त्रनिविषै अनेक उपदेश है, तिनकौ जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशकौ ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशकौ न ग्रहे। यहु उपदेश औरनिकौ कार्यकारी है, ऐसा जानै। यहाँ उदाहरण कहिए है—जैसे शास्त्रविषै कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कहीं व्यवहार पोषक उपदेश है। तहाँ आपकै व्यवहारका आधिक्य होय, तौ निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय, तौ व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्तै बहुरि पूर्वैं तौ व्यवहार श्रद्धानतैं आत्मज्ञानतैं भ्रष्ट होय रह्या था, पीछैं व्यवहार उपदेशहीकी मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वैं तौ निश्चयश्रद्धानके वैराग्यतैं भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था,

आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षणपरास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ॥२४॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

पीछे निश्चय उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै । ऐसें विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय। बहुरि जैसें आत्मानुशासनविषैं ऐसा कह्या—"जो तू गुणवान् होय दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था, तौ दोषमय ही क्यो न भया ❀।" सो जो जीव आप तौ गुणवान् होय अर कोई दोष लगता होय तहाँ तिस दोष दूर करनेके अर्थि तिस उपदेशकौं अंगीकार करना। बहुरि आप तौ दोषवान् होय अर इस उपदेशका ग्रहणकरि गुणवान् पुरुषनिकौ नीचा दिखावै, तौ बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेतै तौ किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है तातैं तुझतै तौ भला है। बहुरि यहाँ यहु कह्या—"तू दोषमय ही क्यों न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेके अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवानकै किंचित् दोष भए भी निन्दा है, तौ सर्वदोषरहित तो सिद्ध है, नीचली दशाविषै तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसै है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह राखै, सो भी निगोद जाय ‡।" ऐसा षट्पाहुड विषै कैसै कह्या है ?

---

❀ हे चन्द्रमः किमितिलाञ्छनवानभूस्त्व
तद्वान् भवेः किमित तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमल तव घोषयन्त्या
स्वर्भावन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः ॥ १४१ ॥

‡ जह जायरूवसरिसो तिलतुसमत्तं ण गहदि अत्थेसु ।
जइ लेइ अप्पबहुअ तत्तो पुण जाइ णिग्गोय ॥ १८ ॥
(सूत्रपाहुड)

ताका उत्तर—ऊँची पदवी धारि तिस पदविषै न सम्भवता नीच कार्य करै, तौ प्रतिज्ञा भगादि होनेतैं महादोष लागै है अर नीची पदवीविषै तहाँ सम्भवता गुण दोष होय तो होय, तहाँ वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाही ऐसा जानना। बहुरि **उपदेशसिद्धान्तरत्न-मालाविषैं** कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालेका क्रोध भी क्षमाका भडार है ※।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाही इस उपदेशतै वक्ता क्रोध किया करै, तौ बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी सांचा उपदेश दे तौ श्रोता गुण ही मानै,ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसें काहूकै अतिशीतांग रोग होय, ताके अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही है, तिस औषधिको जाकै दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो ग्रहण करै तौ दुःख ही पावै। तैसै काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता होय, ताके अर्थ तिसके निषेधका अति खीचकरि उपदेश दिया होय, ताकौ जाकै तिस कार्यकी मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तौ बुरा ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसै काहूकौ शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाही, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाही वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतै शास्त्राभ्यास छोड़ै अर आत्मानुभवविषै उपयोग रहै नाही, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसें काहूकै यज्ञ स्नानादिक हिसातै धर्म माननेंकी

※ रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासत जस्सणधणस्य।
उस्सुत्तेण खमाविय दोस महामोहआवासो ॥ १४ ॥

मुख्यता है, ताके अर्थ "जो पृथ्वी उलटै, तौ भी हिंसा किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावै अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतैं पूजनादि कार्य छोड़ै अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषै उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तौ बुरा ही होय। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै यावत् तिस औषधितैं हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटे भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै, तौ उलटा रोग होय। तैसैं कोई धर्म कार्य है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतैं हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊँची दशा होतैं नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषै लागै, तौ उलटा बिगार ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसैं पाप मेटनेके अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होते प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै तौ उलटा विकार बधै, याहीतैं **समयसार** विषै प्रतिक्रमणादिकको विष कह्या है।

बहुरि जैसैं अव्रतीके करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनकौं व्रती होयकरि करै तौ पाप ही बाँधै। व्यापारादि आरम्भ छोड़ि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय, सो कैसे बनै? ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं पाकादिक औषधि पुष्टकारी है परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तौ महादोष उपजै। तैसैं ऊँचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपनें विकारभाव दूरि न होय अर ऊँचा धर्म ग्रहै तौ महादोष उपजै। यहाँ उदाहरण—जैसैं अपना अशुभविकार भी न छूट्या अर निर्विकल्प दशाकौं अंगीकार करै, तौ उलटा विकार बधै।

बहुरि जैसै भोजनादि विषयनिविषै आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मकौं अंगीकार करै, तौ दोष ही उपजै । जैसै व्यापारादि करनेका विकार तौ न छूट्या अर त्यागका भेषरूप धर्म अंगीकार करै, तौ महादोष उपजै। ऐसै ही अन्यत्र जानना । याही प्रकार और भी सांचा विचारतै उपदेशकौ यथार्थ जानि अगीकार करना । बहुरि विस्तार कहाँ ताई करिए। अपनै सम्यग्ज्ञान भए आपहीकौ यथार्थ भासै। उपदेश तौ वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाही। तातै उपदेश तौ एक ही अर्थकी मुख्यता लिए हो है । बहुरि जिस अर्थका जहाँ वर्णन है, तहाँ तिसहीकी मुख्यता है । दूसरे अर्थकी तहाँ ही मुख्यता करै, तौ दोऊ उपदेश दृढ न होय। तातै उपदेशविषै एक अर्थकौ दृढ करै । परन्तु सर्व जिनमतका चिन्ह स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पदका अर्थ 'कथंचित्' है । तातै उपदेश होय ताकौ सर्वथा न जानि लेना । उपदेशका अर्थकौ जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवकौ कार्यकारी है ? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछै अपनी दशा देखै, जो उपदेश जैसै आपकौ कार्यकारी होय तिसकौ तैसै आप अगीकार करै अर जो उपदेश जाननें योग्य ही होय तौ ताकौ यथार्थ जानि ले । ऐसै उपदेशके फलकौ पावै ।

यहाँ कोई कहै—जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै, सो कहा करै ?

ताका उत्तर—जैसै व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमै

समझै, सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफ़ा टोटाका ज्ञान तौ अवश्य चाहिए। तैसे विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमैं समझै, सो थोरा वा उपदेशकौ ग्रहै परन्तु मुझकौ यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाहीं, इतना तौ ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तौ इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपनैं सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तौ प्रयोजनकौं तौ भूलै नाही, यहु तौ सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमै अपना हितकी हानि होय, तैसें उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाही। या प्रकार स्याद्वादहष्टि लिए जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहां कोई प्रश्न करै—जहाँ अन्य अन्य प्रकार न सम्भवै, तहाँ तौ स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषै विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिए? जैसे प्रथमानुयोगविषै एक तीर्थंकरकी साथि हजारौं मुक्ति गए बताए। करणानुयोगविषै छह महीना आठ समयविषै छहसै आठ जीव मुक्ति जांय, ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषै ऐसा कथन किया—देव देवांगना उपजि पीछे मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषैं उपजे। करणानुयोगविषै देवका सागरौ प्रमाण देवांगनाका पल्यो प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसे मिलै ?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषै कथन है, सो तौ तारतम्य लिएं है। अन्य अनुयोगविषैकथन प्रयोजन अनुसार है। तातै करणानुयोगका कथन तौ जैसे किया है, तैसे ही है। औरनिका कथनकी जैसे विधि मिलै, तैसे मिलाय लैनी। हजारों मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए

बताए, तहाँ यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाही। जहाँ तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भए, तहाँ तिनकी साथ इतनें मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगे पीछै गए। ऐसैं प्रथमानुयोग करणानुयोगका विरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजें, पीछैं देवांगना चयकरि बीचमैं अन्य पर्याय धरै, तिनका प्रयोजन न जानि कथन किया। पीछैं वह साथि मनुष्य पर्यायविषै उपजें, ऐसैं विधि मिलाए विरोध दूरि हो है। ऐसैं ही अन्यत्र विधि मिलाय लैनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसैं कथननिविषै भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कही नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषै कही द्वारावतीविषै जन्म कह्या, रामचन्द्रादिककी कथा अन्य अन्य प्रकार लिखी। एकेन्द्रियादिक कौ कही सासादन गुणस्थान लिख्या, कही न लिख्या, इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसे मिलै?

ताका उत्तर—ऐसैं विरोध लिए कथन कालदोषतै भए हैं। इस कालविषै प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तौ अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करनेके अधिकारी भए। तिनकै भ्रमतै कोई अर्थ अन्यथा भासै ताकौं तैसे लिखे अथवा इस कालविषै केई जैनमतविषै भी कषायी भए है सो तिनने कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसैं अन्यथा कथन भया, तातैं जैनशास्त्रनिविषै विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत सो प्रमाणीक हैं कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक है। ऐसा विचारकरि बडे आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र है तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-

आम्नायतैं मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसैं विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तौ जैसैं केवलीकौ भास्या है तैसैं प्रमाण है, ऐसैं मान लैना। जातैं देवादिकका वा तत्वनिका निर्द्धार भए विना तौ मोक्षमार्ग होय नाही। तिनिका तौ निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तौ आपहीकौ भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा संशयादि रहै वा अन्यथा जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै, तौ मोक्षमार्गविषैं विघ्न नाहीं, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै—जैसैं नाना प्रकार कथन जिनमतविषैं कह्या, तैसैं अन्यमतविषै भी कथन पाइए है, सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषै ऐसे कथनकौ तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तौ नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीकौ पोषैं, तौ कोई दोष है नाही। अर कही कोई प्रयोजन पोषैं, कही कोई प्रयोजन पोषैं तौ दोष ही है। सो जिनमतविषैं तौ एक प्रयोजन रागादि मेटनेका है,सो कही बहुत रागादि छुड़ाय थोड़ा रागादि करावनेका प्रयोजन पोष्या है, कही सर्व रागादि छुडावनेका प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कही भी नाही तातैं जिनमतका कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषैं कही रागादि मिटावनेका प्रयोजन लिए कथन करैं, कही रागादि बधावनेका प्रयोजन लिए कथन करैं, ऐसैंही और भी प्रयोजनकी विरुद्धता लिए कथन करैं हैं तातैं अन्यमतका कथन सदोष हैं। लोकविषैं भी एक प्रयोजन

को पोषते नाना वचन कहै, ताकौं प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और और पोषती बात करै, ताकौं बावला कहिए है। बहुरि जिनमतविषै नाना प्रकार कथन है, सो जुदी जुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाही। अन्यमतविषै एक ही अपेक्षा लिए अन्य कथन करै तहाँ दोष है। जैसें जिनदेवकै वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति पाइए है, तहाँ विरोध नाही। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै है, इनकै तिसविषै रागादिक नाही, तातै दोऊ बात सम्भवै है। अर अन्यमतविषै ईश्वरकौ साक्षीभूत वीतराग भी कहै अर तिसहीकर किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करै, सो एक ही आत्माकै वीतरागपनो अर काम क्रोधादि भाव कैसें सम्भवै ? ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कालदोषतै जिनमतविषै एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषै दोष नाही। सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि प्रमाण-विरुद्ध कोई कथन कर सकै नाही। कही सौरीपुरविषै कही द्वारावतीविषै नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो काठे ही होहु परन्तु नगरविषै जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाही। अब भी होता दीसै है।

## आगमाभ्यास की प्रेरणा

बहुरि अन्यमतविषै सर्वज्ञादि यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रन्थ बतावै, बहुरि तिनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै। कही तौ बालब्रह्मचारीकी प्रशसा करै, कही कहै **"पुत्र बिना गति ही होय नाहीं"** सो दोऊ साँचा कैसे होय। सो ऐसे कथन तहाँ बहुत पाइएहै। बहुरि प्रमाणविरुद्ध

कथन तिनविषै पाइए है। जैसैं वीर्य मुखविषै पड़नेतैं मछलीकै पुत्र हूवो,सो ऐसैं अवार काहूकै होना दीसै नाही। अनुमानतैं मिलै नाही। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए है। यहाँ सर्वज्ञादिककी भूलि मानिए, सो तौ कैसैं भूलै अर विरुद्ध कथन माननेमैं आवै नाहीं, तातै तिनिके मतविषै दोष ठहराइए है। ऐसा जानि एक जिनमतका ही उपदेश ग्रहण करने योग्य है। तहाँ प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहाँ पहिले याका अभ्यास करना, पीछै याका करना, ऐसा नियम नाहीं। अपनें परिणामनिकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतैं अपनें धर्मविषैं प्रवृत्ति होय, तिसहीका अभ्यास करना। अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जैसैं रोजनामचाविषैं तौ अनेक रकम जहाँ तहाँ लिखी हैं, तिनिकौं खाते में ठीक खतावै, तौ लैंना देनाका निश्चय होय तैसैं शास्त्रनिविषै तौ अनेक प्रकारका उपदेश जहाँ तहाँ दिया है, ताकौं सम्यग्ज्ञानविषै यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै, तौ हित अहितका निश्चय होय। तातै स्यात्पदकी सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचनविषै रमै है, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपकौ प्राप्त हो है। मोक्षमार्गविषै पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान विना और धर्मका साधन होय सकै नाही। तातै तुमकौ भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

**इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं उपदेशस्वरूपप्रतिपादक नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।**

# नवमा अधिकार

## मोक्षमार्गका स्वरूप

दोहा

**शिवउपाय करतैं प्रथम, कारन मंगलरूप ।**
**विघनविनाशक सुखकरन, नमौं शुद्ध शिवभूप ॥ १ ॥**

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है-पहिले मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया । तिनिकौ तो दुःखरूप दुःख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना । बहुरि बीचमे उपदेश का स्वरूप दिखाया । ताकौ जानि उपदेशकौ यथार्थ समझना । अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है । इनिकौं सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना । जातै आत्माका हित मोक्ष ही है । तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है । तातै इसहीका उपदेश यहा दीजिए है । तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है और नाही, ऐसा निश्चय कैसै होय सो कहिए है—

### आत्माका हित मोक्ष ही है

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है । तिनविषै और तो कोई अवस्था होहू, किछू आत्माका बिगाड सुधार नाहीं ।

एक दुःखसुख अवस्थातै बिगाड़ सुधार है । सो इहाँ किछू हेतु दृष्टांत चाहिए नाही। प्रत्यक्ष ऐसै ही प्रतिभासै है । लोकविषै जेते आत्मा है, तिनिकै एक उपाय यहु पाइए है—दुःख न होय सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय जेते करै है, तेते एक इस ही प्रयोजन लिये करै है, दूसरा प्रयोजन नाही। जिनके 'निमित्ततै दुःख होता जानै, तिनिकौ दूर करनेका उपाय करै है अर जिनके निमित्ततै सुख होता जानै, तिनिके होनेका उपाय करैहै। बहुरि सकोच विस्तार आदिक अवस्था भी आत्माहीकै हो है वा अनेक परद्रव्यनिका भी सयोग मिलै है परन्तु जिनतै सुख दु.ख होता न जानै, तिनके दूर करनेका वा होनेका कुछ भी उपाय कोऊ करै नाही। सो इहाँ आत्मद्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाकौ सहि सकै, एक दु.खकौ सह सकता नाही। परवश दुःख होय तौ यहु कहा करै, ताकौ भोगवै परन्तु स्ववशपनै तो किंचित् भी दुःखकौ न सहै । अर सकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय, तिसकौ स्ववशपनै भी भोगवै, सो स्वभावविषै तर्क नाही । आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवनै मै ज्ञानादिक मन्द हो जाय परन्तु जड सारिखा भी होय दु.खकौ दूरि किया चाहै है वा मूआ चाहै। सो मरनेमै अपना नाश मानै है परन्तु अपना अस्तित्व खोकर भी दु.ख दूर किया चाहै है। तातै एक दुःखरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दु ख न होय, सो ही सुख है। जातै आकुलतालक्षण लिए दुःख तिसका अभाव सोई निराकुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्रीका सयोग मिले

जाकै अंतरंगविषं आकुलता है, सो दुःखी ही है, जाकै आकुलता नाही, सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव भये हो है। जातै रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्यनिकौं और भांति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भांति परिणमै, तब याकै आकुलता होय। तहाँ कै तौ आपकै रागादिक दूरि होय, कै आप चाहै तैसे ही सर्वद्रव्य परिणमै तौ आकुलता मिटै। सो सर्व द्रव्य तौ याके आधीन नाही। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय, तैसं ही परिणमै, तौ भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तौ होय ही सकै नाही। जातै कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाही। तातै अपने रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातै रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तौ है नाही, उपाधिकभाव है, परनिमित्ततै भए है, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जांय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय, सुखकी प्राप्ति होय। तातै मोहकर्मका नाश हितकारी है। बहुरि तिस आकुलताकौ सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनावर्णके उदयतै ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातै याकै देखने जाननेंकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तुका स्वभाव न जानै, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्तै, तहाँ आकुलता होय। बहुरि अंतरायके उदयतै इच्छानुसार दानादि कार्य न बनै, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतै आकुलताकौ सहकारी कारण है। मोहके उदयका नाश भए इनिका

बल नाहीं। अंतर्मुहूर्त्तकरि आपै आप नाशकौं प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगटरूप निराकुल दशा भासै। तहा केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुखरूप दशाकौ प्राप्त कहिए। बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्ततै शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतै शरीरादिकका संयोग आकुलताकौ बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतै रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतैं रागादिककौं कारण शरीरादिकका संयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाहीं। परन्तु पूर्वै आकुलताका सहकारी कारण था, तातै अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माको इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होतै किछू दुःख नाही तातै इनके नाशका उद्यम भी नाही। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपै आप थोरे ही कालमै सर्व नाशकौ प्राप्त होय जाय है। ऐसै सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातै आत्माका हित एक मोक्ष ही है—और किछू नाही, ऐसा निश्चय करना।

इहाँ कोऊ कहै—ससार दशाविषै पुण्यकर्मका उदय होतै भी जीव सुखी हो है, तातै केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेको कहिए?

## सांसारिक सुख वास्तविक दुःख है

ताका समाधान—ससारदशाविषैं सुख तो सर्वथा है ही नाही, दुःख ही है। परन्तु काहूकै कबहूँ बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूँ थोरा

दु.ख हो है। सो पूर्वं बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकै बहुत दुःख पाइए है, तिस अपेक्षातै थोरे दु'खवालेको सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतै थोरे दु'खवाला आपकों सुखी मानै है। परमार्थतै सुख है नाही। बहुरि जो थोरा भी दुःख सदाकाल रहै है, तौ वाकों भी हित ठहराइए, सो भी नाही। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहाँ थोरा दु ख होय पीछे बहुत दु ख होइ जाय। तातै ससार अवस्था हितरूप नाही। जैसै काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता बहुत हो हैं, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपको नीका मानै। लोक भी कहै—नीका है। परन्तु परमार्थतै यावत् ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाही है। तैसे ससारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय,तब वह आपको सुखी मानै। लोक भी कहै—सुखी है। परमार्थतै यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुखी नाही। बहुरि सुनि, ससार दशाविषै भी आकुलता घटे सुखी नाम पावै है। आकुलता बधे दु खी नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतै सुख दु ख नाही। जैसै काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई, तहाँ किछू आकुलता घटनेतै वाकौ सुखी कहिए अर वह भी आपकौ सुखी मानै। बहुरि काहू बहुत धनवान्कै किञ्चित् धनकी हानि भई, तहां किछू आकुलता बधनेतै वाकौ दुःखी कहिए अर वह भी आपको दुःखी मानै है। ऐसैही सर्वत्र जानना। बहुरि आकुलता घटना बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाही। कषाय भावनिके घटने बधनेके अनुसार है। जैसै काहूकै थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तौ वाकै आकुलता

थोरी है। बहुरि काहूकै बहुत धन है अर वाकै तृष्णा है, तौ वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूको काहूनै बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध न भया, तौ आकुलता न हो है अर थोरी बातै कहे ही क्रोध होय आवै, तौ वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसै गऊकै बछड़ेतै किछू भी प्रयोजन नाही परन्तु मोह बहुत, यातै वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकतै घने कार्य सधै है परन्तु रणविषै मानादिककरि शरीरादिकतै मोह घटि जाय, तब मरनेकी भी थोरी आकुलता हो है। तातै ऐसा जानना—ससार अवस्थाविषैभी आकुलता घटने बधनेहीतै सुख दु.ख मानिए है। बहुरि आकुलताका घटना बधना रागादिक कषाय घटने बधनके अनुसार है बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दुःख नाही। कषायतै याकै इच्छा उपजै अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतै आकुलता घटै, तब सुख मानै अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै,तब कषाय बधनेतै आकुलता बधै, तब दुख मानै। सो है तौ ऐसै अर यह जानै—मोकू परद्रव्यके निमित्ततै सुख दुःख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातै इहाँ ऐसा विचार करना, जो ससार अवस्थाविषै किंचित् कषाय घटे सुख मानिए, ताकौ हित जानिए, तौ जहाँ सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेकरि अनन्तसुखपाइए ऐसी मोक्षअवस्थाकौ कैसे हित न मानिए? बहुरि ससार अवस्थाविषै उच्च पदकौ पावै,तौ भी कै तौ विषयसामग्रीमिलवानेकी आकुलता होय, कै विषय सेवनकी आकुलता होय,कै अपने और कोई क्रोधादि कषायतै

इच्छा उपजै, ताकौ पूरण करनेंकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाही, अभिप्रायविषै तौ अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेके उपाय करै, सो प्रथम तौ कार्य सिद्ध होय नाही अर जो भवितव्य योगतै वह कार्य सिद्ध होय जाय, तौ तत्काल और आकुलता मेटनेका उपायविषै लागै। ऐसै आकुलता मेटनेकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै, तौ नये नये विषयसेवनादि कार्यनिविषै काहेकौ प्रवर्त्तै है ? तातै संसार अवस्थाविषै पुण्यका उदयतै इन्द्र अहमिन्द्रादि पदकौ पावै तौ भी निराकुलता न होय, दु:खी ही रहै। तातै संसार अवस्था हितकारी नाही।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषै कोई प्रकारकी आकुलता रही नाही तातै आकुलता मेटनेका उपाय करनेंका भी प्रयोजन नाही। सदा काल शांतरसकरि सुखी रहै। तातै मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वै भी संसार अवस्थाका दु:खका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताकौ भी विचारि मोक्षका उपाय करना, सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

## पुरुषार्थसे ही मोक्षप्राप्ति सम्भव है

इहाँ प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनै है कि मोहादिका उपशमादि भए बनै है अथवा अपने पुरुषार्थतै उद्यम किए बनै है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनै है, तो हमको उपदेश काहेकौ दीजिए है अर पुरुषार्थतै बनै है, तो उपदेश सर्व सुनै, तिनविषै कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—एक कार्य होनेविषै अनेक कारण मिलै है। सो

मोक्षका उपाय बनै है, तहाँ तौ पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलै है। अर न बनै है, तहाँ तीनौ हीं कारण न मिलै है। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषै काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाही। जिस कालविषै कार्य बनै, सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है, ताका आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाही। बहुरि पुरुषार्थतै उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातै आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणतै कार्य सिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ तौ अन्य कारण मिलै ही मिलै अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतै कार्यसिद्धि होय अथवा नाही भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारण मिलै तौ कार्यसिद्धि होय, न मिलै तौ सिद्धि न होय। सो जिनमतविषै जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतै मोक्ष होय ही होय। तातै जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्षका उपाय करै है, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है, तौ यहु ऐसा उपाय करै है। तातै जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्व कारण मिलै है, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाही अर कर्मका उपशमादि न भया है, तौ यहु उपाय न करै है। तातै जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलै नाही, ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू

कहै है—उपदेश तौ सर्व सुनै है,कोई मोक्षका उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ? सो कारण यहु ही है कि—जो उपदेश सुनिकरि पुरुषार्थ करै है, सो तो मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै,सो मोक्षका उपाय न करि सकै है। उपदेश तौ शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

## द्रव्यलिंगीकै मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनो छोड़ि तपश्चरणादि करै है,तहाँ पुरुषार्थ तौ किया, कार्य सिद्ध न भया, तातै पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाही।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तौ कैसै सिद्धि होय ? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषै अनुरागी होय प्रवर्त्तै,ताका फल शास्त्रविषै तौ शुभबंध कह्या है अर यहु तिसतै मोक्ष चाहै है, तौ कैसै सिद्धि होय। यहु तौ भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तौ कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै ?

ताका उत्तर—साचा उपदेशतै निर्णय किए भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है,तिसहीतै भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तौ भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातै निर्णय करता परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसतै मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तौ कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेन्द्रियादिककै विचार करनेकी शक्ति नाहीं, तिनकै तौ कर्महीका कारण है। याकै तौ ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतै निर्णय करनेकी शक्ति प्रगट भई है। जहाँ उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै है। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषै उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तौ याहीका दोष है, कर्मका तौ किछू प्रयोजन नाही।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्व-चारित्रका तौ घातक मोह है, ताका अभाव भए विना मोक्षका उपाय कैसै बनै ?

ताका उत्तर—तत्वनिर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयविषै उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तौ तत्वनिर्णयविषै उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इस ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतै मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतै सिद्ध होयगा। अर तत्व निर्णय न करनेविषै कोई कर्मका दोष है नाही। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिककै लगावै, सो जिन आज्ञा मानै तौ ऐसी अनीति सम्भवै नाही। तोको विषय कषायरूप ही रहना है,तातै झूठ बोलै है। मोक्षकी साची अभिलाषा होय, तौ ऐसी युक्ति काहेकौ बनावै। ससार के कार्यनिविषै अपना पुरुषार्थतै सिद्धि न होती जानै तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहाँ पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षकौं देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। याका स्वरूप पहचानि ताकौ हितरूप न जानै

है। हित जानि जाका उद्यम बने, सो न करै, यह असम्भव है।

इहाँ प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य, परन्तु द्रव्यकर्मके उदयतें भावकर्म होय, भावकर्मतें द्रव्यकर्मका बध होय, बहुरि ताके उदयतें भावकर्म होय, ऐसे ही अनादितै परम्परा है, तब मोक्षका उपाय कैसे होय सकै ?

## द्रव्यकर्म और भावकर्मकी परम्परामें पुरुषार्थके अभावका प्रतिषेध

ताका समाधान—कर्मका बध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तौ ऐसें ही है, परन्तु परिणामनिके निमित्ततै पूर्व बद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण सक्रमणादि होतै तिनकी शक्ति हीन अधिक हो है। कर्मउदयके निमित्तकरि तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततै नवीन बध भी मन्द तीव्र हो है। तातै ससारी जीवनिकै कबहूँ ज्ञानादिक घने प्रगट हो है, कबहूँ थोरे प्रगट हो है। कबहूँ रागादिक मन्द हो है, कबहूँ तीव्र हो है। ऐसें ही पलटन हुवा करै है। तहाँ कदाचित् सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकै कबहूँ तीव्र रागादिक होय, कबहूँ मन्द होय। तहाँ रागादिकका तीव्र उदय होते तो विषयकषायादिकके कार्यनिविषें ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होते बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषै उपयोगको लगावै, तौ धर्मकार्यविषै प्रवृत्ति होय। अर निमित्त बनै वा आप पुरुषार्थ न करै, कोई अन्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै परन्तु मन्द रागादि लिए प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषै उपदेश कार्यकारी है। विचार-शक्तिरहित एकेन्द्रियादिक है, तिनिकै तौ उपदेश समझनेका ज्ञान ही

नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनिका उपदेशविषै उपयोग लागै नाहीं। तातै जो जीव विचारशक्तिसहित होय अर जिनकै रागादि मंद होय, तिनकौ उपदेशका निमित्ततै धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तौ ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषै पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेन्द्रियादिक तौ धर्मकार्य करनेकौं समर्थ ही नाही, कैसे पुरुषार्थ करै अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पापहीका करै, धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाही। तातै विचारशक्तिसहित होय अर जिसकै रागादिक मन्द होंय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततै तत्वनिर्णयादिविषै उपयोग लगावै, तौ याका उपयोग तहाँ लागै, तब याका भला होय। बहुरि इसही अवसरविषै भी तत्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादतै काल गमावै। कै तो मन्दरागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषै प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषैं प्रवर्त्तै, तब अवसर तौ जाता रहै, ससारहीविषै भ्रमण होय। बहुरि इस अवसरविषै जो जीव पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयकरनेविषै उपयोग लगावनेका अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषै आपै आप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तौ कर्त्तव्य तत्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीतै दर्शनमोहका उपशम तौ स्वयमेव ही होय। यामैं जीवका कर्त्तव्य किछू नाही। बहुरि ताकौ होते जीवकै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होते श्रद्धान तौ यहु भया—मै आत्मा हूँ, मुझको रागादिक न करने परन्तु चारित्रमोहके उदयतै रागादिक हो है। तहाँ तीव्र उदय होय,

तब तौ विषयादिविषै प्रवर्त्तै है अर मन्द उदय होय, तौ अपने पुरुषार्थतै धर्मकार्यनिविषै वा वैराग्यादिभावनाविषै उपयोगकौं लगावै है। ताके निमित्ततै चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसे होते देशचारित्र वा सकलचारित्र अगीकार करनेका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रको धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषै परणतिकौ बधावै, तहाँ विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातै विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय । ऐसै क्रमतै मोहका नाश होय, तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होय, तिनकरि ज्ञानावर्णादिका नाश करै, तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहाँ पीछै बिना उपाय अघातिया कर्मका नाशकरि शुद्धसिद्धपदकौ पावै । ऐसै उपदेशका तौ निमित्त बनै अर अपना पुरुषार्थ करे, तौ कर्मका नाश होय । बहुरि जब कर्मका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितै भी गिर जाय है। तहाँ तौ जैसा होनहार तैसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहाँ तौ प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसे कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषै पड्या बहै है, तहाँ पानीका जोर होय तब तौ वाका पुरुषार्थ किछू नाही, उपदेश भी कार्यकारी नाही। और पानीका जोर थोरा होय, तब तो पुरुषार्थकरि निकसना चाहे, तौ निकसि आवै। तिसहीकौ निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। और न निकसै तौ होलै २ बहै, पीछै पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसेही यह जीव ससारविषै भ्रमै है। तहाँ कर्मनिका तीव्र उदय होय,तब तौ याका पुरुषार्थ किछू नाही। ताकौ उपदेश भी कार्यकारी नाही । अर कर्मका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थकरि

मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै,तौ मोक्षपावै,तिसहीकौ मोक्षमार्गकाउपदेशदीजिए है। अर मोक्षमार्गविषै न प्रवर्त्तै तौ किंचित् विशुद्धता पाय पीछै तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायकौ पावै । तातै अवसर चूकना योग्य नाही। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातै श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गकौ उपदेशै, तिसविषै भव्य जीवनिकौ प्रवृत्ति करनी।

## मोक्षमार्गका स्वरूप

अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है-जिनके निमित्ततै आत्मा अशुद्ध दशाकौ धारि दुःखी भया,ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होते. केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो है। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए विना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसैं मुनि लिग धारे विना तौ मोक्ष न होय परन्तु मुनिलिग धारे मोक्ष होय भी अर नाही भी होय। बहुरि केई कारण ऐसे है, जो मुख्यपने तौ जाके भए कार्य होय अर काहूके विना भए भी कार्य सिद्ध होय । जैसै अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपने मोक्ष पाइए है परन्तु भरतादिककै बाह्य तप किए विना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसै है, जाके भए कार्य सिद्ध होय ही होय और जाके न भए कार्य सिद्ध सर्वथा न होय। जैसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तौ मोक्ष होय ही होय अर तिनके न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ए कारण कहे, तिनविषै अतिशयकरि नियमतै मोक्षका साधक

जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना । इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषै एक भी न होय, तौ मोक्षमार्ग न होय । सोई तत्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

इस सूत्रकी टीकाविषै कह्या है—जो यहाँ "मोक्षमार्गः" ऐसा एक वचन कह्या है, ताका अर्थ यहु है—जो तीनो मिले एक मोक्षमार्ग है। जुदे जुदे तीन मार्ग नाही है।

यहाँ प्रश्न—जो असंयतसम्यग्दृष्टीकै तौ चारित्र नाही, वाकै मोक्ष भया है कि न भया है।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तौ नियम भया। तातै उपचारतै याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए । परमार्थतै सम्यक्चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है। जैसै कोई पुरुषकै किसी नगर चालने का निश्चय भया तातै वाकौ व्यवहारतै ऐसा भी कहिए "यहु तिस नगरकौ चल्या है", परमार्थतै मार्गविषै गमन किए ही चलना होसी। तसै असयतसम्यग्दृष्टीकै वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातै वाकौ उपचारतै मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थतै वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी। बहुरि "प्रवचनसार" विषै भी तीनोकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है तातै यहु जानना—तत्वश्रद्धान विना तौ रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाही अर रागादि घटाए विना तत्वश्रद्धानज्ञानतै भी मोक्षमार्ग नाही। तीनो मिले साक्षात् मोक्षमार्ग हो है।

## लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश अर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारा निरूपण कीजिए है। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है', ऐसा नाम मात्र कथन सो तौ 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय, जाकरि इनकौ पहिचानिए, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहाँ जाकौ पहिचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ अतिव्याप्तिपनौ जानना। जैसै आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षण है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषै भी पाइए है, अलक्ष्य जो है आकाशादिक तिनविषै भी पाइए है। तातै यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै। बहुरि जो कोई लक्ष्यविषै तो होय अर कोई विषै न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए, तहाँ अव्याप्तिपनौ जानना। जैसै आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवलज्ञान कोई आत्माविषै तौ पाइए, कोईविषै न पाइए, तातै यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै। बहुरि जो लक्ष्यविषै पाइए ही नाही, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ असम्भवपना जानना। जैसै आत्माका लक्षण जडपना कहिए सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है तातै यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा मानै पुद्गलादिक भी आत्मा होय जाय।

अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय, यहु दोष लागै। ऐसे अतिव्याप्त, अव्याप्त असम्भव लक्षण होय, सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषै तो सर्वत्र पाइए अर अलक्ष्यविषै कहीं न पाइए, सो साचा लक्षण है। जैसे आत्माका स्वरूप चैतन्य है। सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषै तो पाइए है, अनात्माविषै कहीं न पाइए। तातै यहु साचा लक्षण है। याकरि आत्मा मानै आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसे लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या।

## सम्यग्दर्शनका लक्षण

अब सम्यग्दर्शनादिकका साचा लक्षण कहिए है—विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान ऐसा ही है, अन्यथा नाहीं, ऐसा प्रतीति भाव सो तत्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है, जातै 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो 'तत्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातै जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्व जानना। जातै '**तस्य भावस्तत्वं**' ऐसा तत्व शब्दका

समास होय है। बहुरि जो जाननेमैं आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय' ताका नाम अर्थ है। बहुरि **'तत्वेन अर्थस्तत्वार्थः'** तत्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो 'तत्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव ( तत्व ) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव का श्रद्धान विना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाहीं। जैसै कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय—यह जानपना है,यह श्वेतवर्ण है,इत्यादि। परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है,सो मैं आत्मा हूँ। बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोतै भिन्न जुदा पदार्थ है। ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान मात्र कार्यकारी नाहीं। बहुरि जैसें 'मै आत्मा हूँ' ऐसे श्रद्धान क्रिया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाही। तातै तत्वकरि अर्थका श्रद्धान हो है, सो ही कार्यकारी है। अथवा जीवादिकक्री तत्व संज्ञा भी है, अर्थ संज्ञा भी है तातैं **'तत्वमेवार्थस्तत्वार्थः'** जो तत्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थकरि कहीं तत्वश्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहैं वा कहीं पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहै, तहाँ विरोध न जानना। ऐसैं 'तत्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

## तत्व और उनकी संख्या का विचार

यहाँ प्रश्न—जो तत्वार्थ तो अनन्ते है। ते सामान्य अपेक्षाकरि

जीव अजीवविषै सर्व गर्भित भए, तातै दोय ही कहने थे। आस्रवादिक तो जीव अजीवहीके विशेष है, इनकों जुदा जुदा कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जो यहाँ पदार्थश्रद्धानका ही प्रयोजन होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसै सर्व पदार्थनिका जानना होय, तैसें ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाही। यहाँ तो मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए विना मोक्ष न होय, तिनहीका यहाँ निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तो बहुत द्रव्यनिकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्व कहे। सो ए दोय जाति जाने जीवके आपापरका श्रद्धान होय। तब परतै भिन्न आपको जानैं, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै अर आपतै भिन्न परकों जानै, तब परद्रव्यतै उदासीन होय रागादिक त्याग मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। तातै ए दोऊ जातिका श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोऊ जाति जाने बिना आपापरका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितै संसारीक प्रयोजन हीका उपाय करै। परद्रव्यविषै रागद्वेषरूप होय प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्गविषै कैसें प्रवर्त्तै। तातै इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसें ए दोय तो सामान्य तत्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पांच कहे, ते जीव पुद्गलकी पर्याय हैं। तातैं ए विशेषरूप तत्व है। सो इन पांच पर्यायनिको जाने मोक्षका उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहाँ मोक्षकों पहिचानै, तो ताकों हित मानि ताका उपाय करै। तातै मोक्षका श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका

उपाय संवर निर्जरा है सो इनको पहिचानै तो जैसैं संवर निर्जरा होय, तैसैं प्रवर्त्तै। तातैं संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिए है; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकों पहचानने चाहिए। जैसैं क्रोधका अभाव भए क्षमा होय सो क्रोधकों पहिचानै तौ ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्तै। तैसे ही आस्रवका अभाव भए सवर होय अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंधकों पहिचानै तौ तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्तै। तातैं आस्रव बंधका श्रद्धान करना। ऐसै इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनको न पहिचानैं तो मोक्षकी पहिचान बिना ताका उपाय काहेकों करै। संवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषे कैसे प्रवर्त्तै। आस्रव बंधकी पहिचान बिना तिनिका नाश कैसे करै? ऐसै इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्वार्थ अनन्ते है, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ मोक्षका प्रयोजन है तातै दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्व अर पांच पर्यायरूप विशेष तत्व मिलाय सात ही तत्व कहे। इनका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाही, ऐसा जानना। बहुरि कही पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे है सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष है, तातै सात तत्वनिविषे गर्भित भए। अथवा पुण्यपापका श्रद्धान भए पुण्यकों मोक्षमार्ग न मानै वा स्वच्छन्द होय पापरूप न प्रवर्त्तै, तातै मोक्षमार्गविषै इनका श्रद्धान भी

उपकारी जानि दोय तत्व विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे वा समयसारादिविषै इनकों नव तत्व भी कहे है।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसे सम्भवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतै धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषै 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातै चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिकै समान होय है, कुछ याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाही। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टीहीकै हो है, याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्वार्थश्रद्धान करनेका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाही है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवकों पहचानि आपको वा परको जैसाका तैसा मानै। बहुरि आस्रवको पहचानि ताकों हेय मानै। बहुरि बंधको पहचानि ताकों अहित मानै। बहुरि संवरकों पहचानि ताको उपादेय मानैं। बहुरि निर्जराको पहचानि ताको हितका कारण मानै। बहुरि

मोक्षकों पहचानि ताकों अपना परमहित मानै। ऐसें तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है। तिसतै उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातै तत्वार्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहाँ कह्या है। अथवा काहूकैं अभ्यास मात्र तत्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्रायविषै विपरीतपनों नाही छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतै अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषैं पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसे द्रव्यलिगी मुनि जिनवचननितै तत्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषै अहंकार वा पुण्यास्रवविषै उपादेयपनों इत्यादि विपरीत अभिप्रायतै मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातै जो तत्वार्थश्रद्धान विपरीता-भिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसें विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोई तत्वार्थसूत्रविषै कह्या है—"**तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥१-२॥**" तत्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्वादिक पद-निका अर्थ प्रगट लिख्या है वा सात ही तत्व कैसें कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारतै यहाँ किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय विषै भी ऐसे ही कह्या है—

**जीवाजीवादीना तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।**
**श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥**

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि

तत्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है । सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषे प्रगट हो है। पीछें सिद्ध अवस्थाविषै भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

## तिर्यंचोंकै सप्ततत्व श्रद्धानका निर्देश

यहाँ प्रश्न उपजै है—जो तिर्यचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्वनिका नाम भी न जानि सकै,तिनिकै भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषै कही है। तातै तत्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषे अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका समाधान— जीव अजीवादिकका नामादिक जानो वा मति जानो वा अन्यथा जानो, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहाँ कोई सामान्यपनै स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै, कोई विशेषपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातै तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी है सो जीवादिकका नाम भी न जाने है, तथापि उनका सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै है। तातै उनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है । जैसें कोई तिर्यच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाही जाने परन्तु आपही विषे आपो मानै है, औरनिकों पर मानै है। तैसै तुच्छज्ञानी जीव,अजीवका नामादिक न जानै परन्तु जो ज्ञानादिकस्वरूप आत्मा है तिसविषे आपो मानै है अर जो शरीरादिक है तिनको पर मानै है—ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसे कोई तिर्यच सुखादिकका नामादिक

न जानै है,तथापि सुख अवस्थाकों पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख का कारणकों पहिचानि ताका त्यागको किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तातैं तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानै, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाकों श्रद्धान करि ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताके त्यागरूप संवरकों किया चाहै है। बहुरि जो संसारदुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसै आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है । या प्रकार वाकै भी सप्ततत्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्याग शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोइ कहिए है—जो जीवकी अजीवकी जाति न जानि आपापरकों न पहिचानै,तो परविषै रागादिक कैसै न करै ? रागादिककों न पहिचानै, तो तिनिका त्याग कैसै किया चाहै । सो रागादिक ही आस्रव हैं। रागादिकका फल बुरा न जानै, तो काहे को रागादिक छोड़्या चाहै । सो रागादिकका फल सोई बंध है। बहुरि रागादिक रहित परिणामकों पहिचानै है, तो तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानिकों पहिचानै है, तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि संसार अवस्था का अभावकों न पहिचानै, तो संवर निर्जरारूप काहेकों प्रवर्त्तै। संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातै सातों तत्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ि शुद्धभाव होनेकी इच्छा उपजै है।

जो इनविषै एक भी तत्वकाश्रद्धान न होय, तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातै वाकै सप्त तत्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होते विशेषपने तत्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतै सामान्यपने तत्वश्रद्धानकी शक्ति प्रगट हो है। ऐसै इस लक्षणविषै अव्याप्ति दूषण नाही है।

## विषय कषायादिके समय सम्यक्त्वीकै तत्वश्रद्धान

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषै सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यविषै प्रवर्त्तै है तिसकालविषै सप्त तत्वनिका विचार ही नाही, तहाँ श्रद्धान कैसे सम्भवै? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातै तिस लक्षणविषै अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहाँ उपयोग लागै, तिसहीका विचार है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातै अन्य ज्ञेयका विचार होते वा सोवना आदि क्रिया होतें तत्वनिका विचार नाही, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातै वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसै कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हूं, तिर्यंचादि नाही हूं। मेरै इस कारणतै रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगको घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसै इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है—मै आत्मा हूँ, पुगद्लादि नाही हूँ, मेरै

आस्रवतें बंध भया है, सो अब संवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बध होनेंके कारणविषै कैसे प्रवर्त्तै है ?

ताका उत्तर—जैसे कोई मनुष्य कोई कारणके वशतै रोग बधनेंके कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। तैसै सोई आत्मा कर्म उदय निमित्तके वशतै बध होनेके कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगे करेंगे। ऐसे सप्ततत्व का विचार न होते भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है तातै तहाँ अव्याप्तिपना नाही है।

## निर्विकल्प अवस्थामैं तत्वश्रद्धान

बहुरि प्रश्न—ऊँची दशाविषै जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहाँ तो सप्त तत्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सा सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसे सम्भवै ? अर तहाँ निषेध सम्भवै है, तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषै सप्ततत्वनिकें विकल्पनिविषै उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ़ कीन्ही अर विषयादिकतै उपयोग छुड़ाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातै जहाँ प्रतीति भी दृढ़ भई अर रागादिक दूर भए

तहाँ उपयोग भ्रमावनेका खेद काहेको करिए । तातै तहाँ तिन विकल्पनिका निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तो प्रतीति ही है। सो प्रतीतिका तो निषेध न किया । जो प्रतीति छुडाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तो है नाही। सातो तत्व-निकी प्रतीति तहाँ भी बनी रहै है। तातैं यहाँ अव्याप्तिपना नाही है।

बहुरि प्रश्न—जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै है, तातै तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम माान्या; परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाही अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातै तहाँ तिस लक्षणका अव्याप्तिपना आया।

ताका समाधान—जैसे छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है, तैसे केवली सिद्धभगवान्कै केवलज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है । जो सप्त तत्वनिका स्वरूप पहले ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहाँ प्रतीतिको परम अवगाढ़पनो भयो। याहीतै परमअवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वै श्रद्धान किया था, ताकों झूठ जान्या होता, तो तहाँ अप्रतीति होती। सो तो जैसा सप्त तत्व-निका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्धभगवान्कै पाइए है। तातै ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होते भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान्कै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या । बहुरि पूर्व अवस्थाविषै यहु माने थे-सवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछे मुक्त अवस्था भए ऐसे मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारै मोक्ष भई । बहुरि पूर्वै ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोडे विशेष

जानै था, पीछें केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानै परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए है तैसा ही केवली कै पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकों भी प्रतीति लिए जानै है तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाही। तातैं सम्यक्त्वगुणविषै सप्त तत्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान् रागादिरूप न परिणमै है। संसार अवस्थाको न चाहै हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शनको तो मोक्षका मार्ग कह्या था, मोक्ष विषै याका सद्भाव कैसैं कहिए है?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसैं काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसकों होतें वह एक शाखा नष्ट न हो है तैसैं काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताकों होतें सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसैं केवली सिद्धभगवानकै भी तत्वार्थश्रद्धान लक्षण हीपाइए है तातें तहाँ अव्याप्तिपनों नाहीं है।

## मिथ्यादृष्टिका तत्वश्रद्धान नाम निक्षेपसे है

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी तत्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषै निरूपण है। प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातैं सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषै अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्वश्रद्धान कह्या है, सो

नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामै तत्वश्रद्धानका गुण नाही अर व्यवहारविषै जाका नाम तत्वश्रद्धान कहिए, सो मिथ्यादृष्टीकै हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेविषै उपयोग नाही लगावै है,ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहाँ भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव-अजीवादिकका जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसे न होय? होय ही होय। ऐसे काई मिथ्यादृष्टीकै साँचा तत्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाईए है, तातै तिस लक्षणविषै अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या,सो असम्भवी भी नाहीं है। जातै सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व ही है, वाका लक्षण इसतै विपरीतता लिए है। ऐसे अव्याप्त अतिव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषै तो पाइए अर कोई मिथ्यादृष्टिविषै न पाइए ऐसा सम्यग्दर्शनका साचा लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है।

## सम्यक्त्वके विभिन्न लक्षणोंका समन्वय

बहुरि प्रश्न उपजै है—जो यहाँ सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हो सो बनै नाही, जातै कही परतै भिन्न आपका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कहै है। समयसारविषै* 'एकत्वे नियतस्य' इत्यादि कलशा

* एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्यदर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्॥

लिखा है, तिसविषै ऐसा कह्या है—जो इस आत्माका परद्रव्यतै भिन्न अवलोकन सो ही नियमतै सम्यग्दर्शन है। तातै नव तत्वनिकी संतति छोड़ि हमारै यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कहीं एक आत्माके निश्चयहीकों सम्यक्त्व कहै है। पुरुषार्थसिद्धयुपायविषै ❀ 'दर्शन-आत्मविनिश्चितिः' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीव हीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातोंका श्रद्धानका नियम होता तो ऐसा काहेको लिखते।

ताका समाधान—परतै भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानकरि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है,तो मोक्षका श्रद्धान बिना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषै उपयोग लगावनेका काहेको उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान बिना पूर्व अवस्थाको काहेकों छांड़ै है। तातै आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपापरका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेव सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्माका श्रद्धान न होय, तातै अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका श्रद्धान होय। बहुरि पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान

---

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्तानवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

❀ दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ॥ २१६ ॥

होय ही होय। तातैं यहाँ भी सातो तत्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान साँचा होता नाही। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसै तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसैं शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहिचाने बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्धअवस्थाकी पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतै हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाही। जातैं श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर ही है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तो आस्रवबंधका अभावकरिसंवर निर्जरारूप उपायतै मोक्षपदको पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है, तो शास्त्रनिविषै आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्वकी सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसैं कह्या ?

ताका समाधान—जाका साचा आपापरका श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान होय, ताकै सातो तत्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै सांचा सात तत्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापर का वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि

आपापरका श्रद्धानको या आत्मश्रद्धान होनेको सम्यक्त्व कह्या। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपने आपापरको जानि वा आत्माको जानि कृतकृत्यपनो मानै, तो वाकै भ्रम है। जातै ऐसा कह्या है— 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्'। याका अर्थ यहु— जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान है। तातै प्रयोजनभूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातो तत्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिको भिन्न भावै है वा अपने आत्माहीको भावै है, ताकै प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातै मुख्यताकरि भेदविज्ञानकों वा आत्मज्ञानको कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाही। जातै प्रयोजन तो रागादिक मेटनेका है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानविना यह प्रयोजन भासै नाही। तब केवल जाननेहीतै मानको बधावै, रागादिक छांडै नाही, तब वाका कार्य कैसे सिद्ध होय। बहुरि नव तत्वसततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वं नवतत्वके विचार करि सम्यग्दर्शन भया, पीछे निर्विकल्पदशा होनेके अर्थि नवतत्वनिका भी विकल्प छोड़नेकी चाह करी। बहुरि जाकै पहिले ही नवतत्वनिका विचार नाही, ताकै तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकै पाइए है, तिनहीका त्याग करो। ऐसे आपापरका श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै वा सप्त तत्व श्रद्धानविषै सप्ततत्वनिका श्रद्धानकी सापेक्षा पाइए है, तातै तत्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न—जो कही शास्त्रनिविषै अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसा-

रहित धर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसे है?

ताका समाधान—अरहत देवादिकका श्रद्धान होनेतै वा कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है। तिस अपेक्षा याकौ सम्यक्त्वी कह्या है। सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाही। जातै द्रव्यलिगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसे अणुव्रत महाव्रत होतै देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए विना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातै इन व्रतनिकौ अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इनकौ चारित्र कह्या। तैसै अरहन्त देवादिकका श्रद्धान होतै तौ सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहन्तादिकका श्रद्धान भए विना तत्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातै अरहन्तादिकके श्रद्धानकौ अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकौ सम्यक्त्व कह्या है। याहीतै याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय। तत्वार्थश्रद्धान विना पक्षकरि अरहन्तादिकका श्रद्धान करै परन्तु, यथावत् स्वरूपकी पहिचानलिए श्रद्धान होय नाही। बहुरि जाकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय, ताकै तत्वार्थ श्रद्धान होय ही होय। जातै अरहन्तादिकका स्वरूप पहिचाने जीव अजीव आस्रवादिककी पहिचान हो है। ऐसें इनकौ परस्पर अविनाभावी जानि, कही अरहन्तादिकके श्रद्धानकौ सम्यक्त्व कह्या है।

यहाँ प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाही अर तिनिके सम्यक्त्व पाइए है, तातैं सम्यक्त्व होतैं अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—सप्त तत्वनिका श्रद्धानविषै अरहंतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातैं तत्वश्रद्धानविषै मोक्षतत्वकौ सर्वोत्कृष्ट मानै है। सो मोक्षतत्व तौ अरहंत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणकौ उत्कृष्ट मानै, सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातैं उनकौ ही सर्वोत्कृष्ट मान्या, औरकौ न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण संवर निर्जरा हैं, तात इनकौ भी उत्कृष्ट मानै है। सो संवर निर्जराके धारक मुख्यपने मुनि है। तातैं मुनिकौ उत्तम मानै, औरकौ न मानै, सोई गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिसा है, ताहीकौ उपादेय मानै है, औरकौ न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसै तत्वार्थश्रद्धानविषैं गर्भित अरहतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततै याकै तत्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततैं अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषै देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो केई जीव अरहतादिकका श्रद्धान करै है, तिनिके गुण पहिचानै है अर उनकै तत्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—तत्वश्रद्धान विना अरहतादिकके छियालीस आदि गुण जानै है, सो पर्यायाश्रित गुण जानै है परन्तु जुदा जुदा जीव

पुद्गलविषै सम्भवै तैसै यथार्थ नाही पहिचानै है। तातै सांचा श्रद्धान भी न होय। जातै जीव अजीवकी जाति पहिचाने विना अरहतादिकके आत्माश्रित गुणनिकौ वा शरीराश्रित गुणनिकौ भिन्न-भिन्न न जानै। जो जानै, तौ अपने आत्माकौ परद्रव्यतै भिन्न कैसै न मानै ? तातै प्रवचनसारविषै ऐसा कह्या है :—

> जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
> सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

याका अर्थ यहु—जो अरहतकौ द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानै है, सो आत्माकौ जानै है। ताका मोह विलयकौ प्राप्त हो है। तातै जाकै जीवादिक तत्वनिका श्रद्धान नाही, ताकै अरहतादिकका भी साचा श्रद्धान नाही। बहुरि मोक्षादिक तत्वका श्रद्धानविना अरहतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानै। लौकिक अतिशयादिककरि अरहतका, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानै, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहतादिकका स्वरूप तत्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातै जाकै सांचा अरहतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सांचा तत्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्म श्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण करनेका प्रयोजन कहा ?

ताका उत्तर—ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषै साची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चारयों लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे है । जहाँ तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तौ यहु प्रयोजन है जो इन तत्वनिकौ पहिचानै तौ यथार्थ वस्तुके स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानकौ मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है । बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोडना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषैं रागादि न करनेका श्रद्धान हो है । ऐसैं तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतैं सिद्ध होता जानि इस लक्षणकौ कहा है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्नश्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपकौ आप जानना। आपकौ आप जाने परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानकौं मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है,तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातै अरहन्तदेवादिकका श्रद्धान साचा तत्वार्थश्रद्धानकौ कारण है अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पित तत्वश्रद्धानकौ कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुडाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानको मुख्यलक्षण कह्या है । ऐसै जुदे२ प्रयोजनकी मुख्यता

करि जुदे जुदे लक्षण कहे है।

इहाँ प्रश्न—जो ए चारि लक्षण कहे, तिनविषै यहु जीव किस लक्षणकौ अगीकार करै ?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतै विपरीताभिनिवेशका अभाव हो है। तहाँ च्यारौ लक्षण युगपत् पाइए है। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्त्वार्थनिकौ विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आतमस्वरूपहीकौ सम्भारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसै ज्ञानविषै तौ नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषै सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनो पाइए है। तत्वविचार करै है तौ भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है। ऐसै ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणो है। तातै सम्यग्दृष्टीके श्रद्धानविषै च्यारौ ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्वका उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ए लक्षण आभास-मात्र होय, सांचे न होय। जिनमतके जीवादिकतत्वनिकौ मानै और को न मानै, तिनके नाम भेदादिककौ सीखै है, ऐसै तत्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी बातै करै अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धिकौ चिंतवन करै, परन्तु जैसै पर्यायविषै अहबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धि है, तैसै आत्माविषै अहंबुद्धि, शरीरादि विषै परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माकौं जिनवचनानुसार चिन्तवै परन्तु प्रतीतिरूप आपकौ आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहन्तदेवादिक बिना और कुदेवादिककौ न मानै है परन्तु तिनके स्वरूपकौ यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै,ऐसैं ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टीकै हो है।

इननिषै कोई होय, कोई न होय । तहाँ इनकै भिन्नपनों भी सम्भवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषै इतना विशेष है जो पहिलें तौ देवादिकका श्रद्धान होय,पीछैं तत्वनिका विचार होय, पीछैं आपापरका चितवन करै, पीछै केवल आत्माकौं चिन्तवै। इस अनुक्रमतें साधन करै तौ परम्परा सांचा मोक्षमार्गकौ पाय कोई जीव सिद्धपदकौं भी पावै । बहुरि इस अनुक्रमका उल्लंघन करि जाकें देवादिक माननेंका किछू ठीक नाही अर बुद्धिकी तीव्रतातै तत्वविचारादिविषै प्रवर्त्तै है तातै आपकौ ज्ञानी जानै है अथवा तत्वविचारविषै भी उपयोग न लगाव है। आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है। अथवा आपापरका भी ठीक न करै है अर आपकौं आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराईकी बातै है। मानादिक कषायके साधन है। किछू भी कार्यकारी नाही। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसकौ यावत् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिकौं भी अनुक्रमहीतै अंगीकार करना। सोई कहिए है :—

पहलें तो आज्ञादिकरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका मानना छोडि अरहतदेवादिकका श्रद्धान करना। जातै इस श्रद्धान भए गृहीत-मिथ्यात्वका तौ अभाव हो है । बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्गका सहाई अरहतदेवादि-कका निमित्त मिलै है । सो पहिले देवादिकका श्रद्धान करना। बहुरि पीछैं जिनमतविषै कहे जीवादिक तत्वनिका विचार करना। नाम लक्षणादि सीखने। जातै इस अभ्यासतै तत्वार्थ श्रद्धानकी प्राप्ति होय। बहुरि पीछैं आपापरका भिन्नपना जैसै भासै तैसै विचार किया

करै। जातै इस अभ्यासतै भेदविज्ञान होय। बहुरि पीछै आपविषै आपो माननेके अर्थि स्वरूपका विचार किया करै। जातै इस अभ्यास तै आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसे अनुक्रमतै इनकौ अंगीकार करि पीछै इनहीविषै कबहू देवादिकका विचारविषै,कबहू तत्वविचार विषै, कबहू आपापरका विचारविषै, कबहू आत्मविचारविषै उपयोग लगावै। ऐसे अभ्यासतै दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् साचे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय, जातै ऐसा नियम तौ है नाही। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमै होय जाय, तौ सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नाही भी होय परन्तु मुख्यपने घने जीवनिकै तौ इस ही अनुक्रमतै कार्यसिद्धि हो है। तातै इनिकौ ऐसै ही अंगीकार करने। जैसे पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिकौ मिलावै, पीछै घने पुरुषनिकै तौ पुत्रकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय, तौ न होय। याकौ तो उपाय करना। तैसै सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिकौ मिलावै, पीछै घने जीवनिकै तौ सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय, तौ नाही भी होय। परन्तु याकौ तो जातै कार्य बनै, सोई उपाय करना। ऐसै सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तौ अनेक प्रकार कहे, तिन विषै तुम तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकौ मुख्य किया, सो कारण कहा?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनकौ अन्य लक्षणविषै प्रयोजन प्रगट भासै नाही वा भ्रम उपजै। अर इस तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाही। तातै इस लक्षणकौ मुख्य किया है। सोई दिखाइए है—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनि-

कौ यहु भासै—अरहतदेवादिककौ मानना, औरकौ न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहाँ जीव अजीवका वा बधमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका श्रद्धान भए विना इस ही श्रद्धानविषै सन्तुष्ट होय आपकौ सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवादिकतै द्वेष तौ राखै, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनकौ यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतैं ही सम्यक्त्व हो है। तहाँ आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए विना इतना ही जाननेंविषै सन्तुष्ट होय आपकौ सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेका उद्यम न करै ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिकौ यहु भासै कि आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतै सम्यक्त्व हो है। तहाँ जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए विना इतना ही विचारतै आपकौ सम्यक्त्वी मानै स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेका उद्यम न करै है। याकै भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जान इन लक्षणनिकौ मुख्य न किए। बहुरि तत्वार्थ-श्रद्धान लक्षणविषै जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहाँ सर्वका स्वरूप नीकै भासै, तब मोक्षमार्ग के प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धानके भए सम्यक्त्व होय परन्तु यहु सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान होनेतै रागादि

छोड मोक्षका उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उपजै है । तातै तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणकौ मुख्य किया है। अथवा तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै तौ देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनको भी भासै । बहुरि अन्य लक्षणनिविषै तत्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनो विशेष बुद्धिमान् होय, तिनहीकौं भासै, तुच्छबुद्धीनिकौ न भासै तातै तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकौ मुख्य किया है अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होय। तहाँ तत्वार्थनिका विचार तौ शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करनेकौ कारण हो है,अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाही होय वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण होय जाय। तातै यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि **विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धान सोही सम्यक्त्वका लक्षण है,** ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देशका निरूपण किया । ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषै पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना ।

## सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाईए है,तहाँ प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाइए है—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्म-परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातै यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकौ कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातै कारणविषै कार्यका उपचार किया है। सो उपचारही का नाम व्यव-

हार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका सांचा श्रद्धान है। तिसही निमित्ततै याकै श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, देव गुरु धर्मादिकका श्रद्धान है सो व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसैं एक ही कालविषै दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देव-गुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है अर याके श्रद्धानविषं विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातै यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तौ है नाहीं अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। जातै याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशके अभावकौं साक्षात् कारण भया नाहीं। कारण भए विना उपचार सम्भवै नाहीं। तातै साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याके न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानकौं परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाही, तथापि मुख्यपनें कारण है। बहुरि कारणविषै कार्यका उपचार सम्भवै है। तातैं मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषै देवगुरुधर्मका श्रद्धानकौ वा तत्वश्रद्धानकौं तौ व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान कौ वा केवल आत्माके श्रद्धानकौ निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसै है ?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषैं अरहंतादिककौ देवादिक मानै, औरकौ न मानै,

सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है अर तत्वश्रद्धानविषै तिनके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषै जीवादितत्वनिकौ विचारै,ताकौ तत्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसें मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वकौं कारण तौ होय, परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टीकै भी सम्भवै है। तातै इनिकौ व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापर का श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश रहितपना कौ मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपने आत्माकौं अनुभवै,ताकै मुख्यपनें विपरीताभिनिवेश न होय। तातै भेदविज्ञानीकौं वा आत्मज्ञानीकौ सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसै मुख्यताकरि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीकै पाइए है। तातै इनिकौ निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है। तारतम्यपनें ए च्यारौ आभासमात्र मिथ्यादृष्टीकै होंय, साचे सम्यग्दृष्टीकै होंय। तहाँ आभासमात्र है सो नियम बिना परम्परा कारण है अर साचे है सो नियम रूप साक्षात् कारण है। तातै इनिकौ व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततै जो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषै लिखै है—आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है। सो कैसे है?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो आत्माहीका स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषैं भिन्नता नाहीं, तातै निश्चयकरि आत्माहीकौ सम्यक्त्व कह्या।

और सर्व सम्यक्त्वकों निमित्तमात्र है वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकै भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व व्यवहार कह्या, ऐसैं जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्वके दोय भेद हो है। अर अन्य निमित्तादिककी अपेक्षा आज्ञा-सम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे है, सो आत्मानुशासनविषैं कहा है:—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यांभवमवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ—जिनआज्ञातैं तत्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहाँ इतना जानना—"मोकौं जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है। आज्ञा मानना तौ कारणभूत है। याहीतैं यहाँ आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातैं पूर्वैं जिनआज्ञा माननेतैं पीछें जो तत्वश्रद्धान भया, सो **आज्ञासम्यक्त्व** है। ऐसैं ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतैं तत्वश्रद्धान भया होय सो **मार्गसम्यक्त्व**❀ है। बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतैं जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषै प्रवीणपुरुषनिकरि उपदेश आदितैं भई जो उपदेशदृष्टि सो **उपदेशसम्यक्त्व** है। मुनिके आचरणका विधानकौ प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि

❀ मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखित प्रति में ३ लाइनका स्थान अन्य सम्यक्त्वोके लक्षण लिखनेके लिये छोडा गया है और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियोके अनुसार दिये गये हैं।

सुनकरि श्रद्धान करना जो होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यहु **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानकौ कारण तिनकरि दर्शनमोहका अनुपम उपशमके बलतैं, दुष्कर है जाननेकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति जाकै,ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया,ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु **बीजसम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिको सक्षेपपनेतैं जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली सक्षेपदृष्टि है। यह **संक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशांगवानीकौ सुन कीन्ही जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्रके वचनविना कोई अर्थका निमित्ततैं भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना। ऐसै आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए है। बहुरि अग अर अगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताकौ अवगाह करि जो निपजी सो अवगाढदृष्टि है। यह **अवगाढसम्यक्त्व** जानना। बहुरि श्रुतकेवलीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताकौ **अवगाढ़सम्यक्त्व** कहिए है। केवलज्ञानीकै जो तत्वश्रद्धान है,ताकौ **परमावगाढ़सम्यक्त्व** कहिए है। ऐसै दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए है। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्वके किए। तहाँ सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्वार्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए है। १ औपशमिक २ क्षायोपशमिक, ३ क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए है। तहाँ उपशमसम्यक्त्वके दोय भेद है। एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व, दूसरा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहाँ मिथ्यात्वगुण-

स्थानविषै करणकरि दर्शनमोहकौ उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताकौ प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहाँ इतना विशेष है—अनादि मिथ्यादृष्टिकै तौ एक मिथ्यात्वप्रकृतिहीका उपशम होय है, जातै याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी सत्ता है नाही। जब जीव उपशमसम्यक्त्वकौ प्राप्त होय, तिस सम्यक्त्वके कालविषै मिथ्यात्वके परमाणूनिकौ मिश्रमोहनीरूप वा सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनिकी सत्ता हो है। तातै अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है। बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है,काहूकै एकही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषै तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाईए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणम गए होंय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातै सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतीका उपशम हो है। उपशम कहा? सो कहिए है। अनिवृत्तिकरणविषै किया अंतरकरणविधानतै जे सम्यक्त्वकाल विषै उदय आवने योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिकै परमाणु अन्यकालविषै उदय आवने योग्य निषेकरूप किए। बहुरि अनिवृत्तिकरणही विषै किया उपशमविधानतै जे तिसकालविषै उदय आवनें योग्य निषेक, ते उदीरणारूप होय इस कालविषै उदय न आय सकै, ऐसे किए। ऐसे जहाँ सत्ता तौ पाइए अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतै भया प्रथमोपशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यन्त पाइए है। बहुरि

उपशमश्रेणीकौं सन्मुख होतें सप्तम गुणस्थानविषै क्षयोपशमसम्यक्त्वतै जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतिनिका उपशम हो है, जातै याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहाँ भी अतरकरणविधानतै वा उपशमविधानतै तिनिके उदयका अभाव करै है सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि ग्यारवाँ गुणस्थानपर्यन्त हो है। पडता कोईकै छठे पाँचवे चौथे गुणस्थान भी रहै, ऐसा जानना। ऐसै उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमानकाल विषै क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाईए है, तातै अन्तर्मुहूर्त कार्यमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछे दर्शनमोहका उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसै उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। बहुरि जहाँ दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिविषै सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय पाइए है,ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है। जातै समलतत्त्वार्थ श्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त है। अन्य दोयका उदय न होय, तहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्वका काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वगुणस्थानतै वा मिश्रगुणस्थानतै भी याकी प्राप्ति हो है। क्षयोपशम कहा ? सो कहिए है—

दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषै मिथ्यात्वका अनुभाग है। ताके अनन्तवे भाग मिश्रमोहनीका है। ताके अनन्तवें भाग सम्यक्त्व-मोहनीका है। सो इनिविषै सम्यक्त्वमोहनी प्रकृति देशघातक है। वाका उदय होते भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलीनता

करै, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाति है। सो जहाँ मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्त्तमानकालविषै उदय आवनेयोग्य निषेक तिनका उदय हुए विना ही निर्जरा होना सो तौ क्षय जानना और इनिहीका आगामीकालविषै उदय आवने योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए है सो ही उपशम है और सम्यक्त्वमोहनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है,तातै समलतत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। यहाँ जो मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जानैं है, उदाहरण दिखावनेके अर्थि चलमलिन अगाढ़पना कह्या है। तहाँ व्यवहार मात्र देवादिककीप्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषैं यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चलपना है। शंकादि मल लागै है सो मलिनपना है। यहु शांतिनाथ शांतिका कर्त्ता है इत्यादि भाव सो अगाढपना है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषै जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जानै है। इतना जानना—याकै तत्वार्थश्रद्धानविषै कोई प्रकार करि समलपनों हो है तातै यहु सम्यक्त्व निर्मल नाही है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका-एक ही प्रकार है। याविषै किछू भेद नाही है। इतना विशेष है—जो क्षायिक सम्यक्त्वकों सन्मुख होतें अन्तर्मुहूर्त्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्व-की प्रकृतिका लोप करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछै मिश्रमोहनीका भी क्षय करै है। तहाँ सम्यक्त्वमोहनीकी ही सत्ता रहै है। पीछै सम्यक्त्वमोहनीकी काडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस

क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहाँ मिथ्यात्वमिश्र-मोहनीकी मुख्यता करि कहिए, तहाँ क्षयोपशमसम्यक्त्व नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनीकी मुख्यताकरि कहिए, तहाँ वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम है, स्वरूपविषै भेद है नाही। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसे क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनो प्रकृतीनिके सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यक्त्व हैं। सो चतुर्थादि चार गुणस्थानविषै कही क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिकै याकी प्राप्ति हो है। कैसे हो है, सो कहिए है—प्रथम तीन करणकरि मिथ्यात्वके परमाणूनिकौ मिश्रमोहनीरूप परिणमावै वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसे मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्र मोहनीआदिके परमाणूनिकौ सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसै मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीके निषेक उदय आय खिरै, वाकी वहुत स्थिति आदि होय तौ ताकौ स्थितिकाडादिकरि घटावै। जहाँ अन्तर्मुहूर्त्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतै इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्मके अभावतै निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रजनाके अभावतैं वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतै उपजै तहाँतै सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसै क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसै तीन भेद सम्यक्त्वके है। बहुरि अनन्तानुबधी कपायकी सम्यक्त्व होते दोय अवस्था हो है। कै तो

अप्रशस्त उपशम हो है, कै विसयोजन हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतै उपशम हो है, ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयका अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधीका प्रशस्त उपशम होय नाही, अन्य मोहकी प्रकृतिनिका हो है। बहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। बहुरि जो तीन करणकरि अनन्तानुबधीनिके परमाणूनिको अन्य चारित्रमोहनीकी प्रकृतिरूप परिणमाय तिनकी सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसयोजन है। जो इनविषै प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषै तौ अनन्तानुबधीका अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलै अनन्तानुबधीका विसयोजन भए ही होय, ऐसा नियम कोई आचार्य लिखै है, कोई नियम नाही लिखै है। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषै कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकै विसयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहलै अनन्तानुबधीका विसयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहाँ यह विशेष है—जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबंधीका विसयोजनतै सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषै आवै तौ अनन्तानुबधीका बध करै, तहाँ बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषै आवै नाही, तातै वाकै अनतानुबधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबधी तौ चारित्रमोहकी प्रकृति है सो सर्व-निमित्त चारित्रहीकौ घातै, याकरि सम्यक्त्वका घात कैसै सम्भवै ?

ताका समाधान—अनन्तानुबधीके उदयतै क्रोधादिकरूप परिणाम हो है, कुछ अतत्व श्रद्धान होता नाही। तातै अनन्तानुबधी चारित्रहीकौ

घातै है, सम्यक्त्वकौ नाही घातै है। सो परमार्थतै है तौ ऐसें ही परन्तु अनन्तानुबधीके उदयतै जैसे क्रोधादिक हो है, तैसे क्रोधादिक सम्यक्त्व होते न होय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाईए है। जैसें त्रसपनाकौ घातक तो स्थावरप्रकृति ही है परन्तु त्रसपना होते एकेन्द्रिय जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, तातै उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकौ भी त्रसपनाकी घातक कहिए तो दोष नाही। तैसैं सम्यक्त्वका घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होते अनन्तानुबधी कषायनिका भी उदय न होय, तातै उपचारकरि अनन्तानुबधीकै भी सम्यक्त्वका घातकपना कहिए तो दोष नाही।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबधी भी चारित्रहीकौ घातै है, तौ याके गए किछू चारित्र भया कहो। असयत गुणस्थानविषै असयम काहेकौ कहो हो ?

ताका समाधान—अनन्तानुबधी आदि भेद है, ते तीव्र मदकषाय की अपेक्षा नाही है। जातै मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होते वा मदकषाय होते अनन्तानुबधी आदि च्यारोका उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारोके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे है। इतना विशेष है—जो अनन्तानुबधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताको गए न होय। ऐसै ही अप्रत्याख्यानकी साथि प्रत्याख्यान सज्वलनका उदय होय, तैसा ताकों गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि सज्वलनका उदय होय, तैसा केवल सज्वलनका उदय न होय। तातै अनन्तानुबधीके गए किछू कषायनिकी मदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातै कषायनिके

असख्यात लोकप्रमाण स्थान है । तिनविषै सर्वत्र पूर्वस्थानतै उत्तरस्थानविषै मंदता पाईए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थाननिविषै तीन मर्यादा करी। आदिके बहुत स्थान तो असंयमरूप कहे,पीछै केतेक देशसयमरूप कहे, पीछै केतेक सकलसंयमरूप कहे । तिनविषै प्रथम गुणस्थानतै लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो है ते सर्व असंयमहीके हो है। तातै कषायनिकी मदता होते भी चारित्र नाम न पावै है । यद्यपि परमार्थतै कषायका घटना चारित्रका अश है,तथापि व्यवहारतै जहाँ ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय,तहाँही चारित्र नाम पावै है । सो असयमविषै ऐसे कषाय घटै नाही, तातै यहाँ असंयम कहा है । कषायनिका अधिक हीनपना होतें भी जैसै प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषै सर्वत्र सकलसयम ही नाम पावै है, तैसै मिथ्यात्वादि असयतपर्यन्त गुणस्थाननिविषै असयम नाम पावै है। सर्वत्र असयमकी समानता न जाननी ।

बहुरि यहाँ प्रश्न— जो अनन्तानुबधी सम्यक्त्वकौ न घातै है,तौ याके उदय होते सम्यक्त्वतै भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानकौ कैसे पावै है ?

ताका समाधान – जैसे कोई मनुष्यकै मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताकौ मनुष्यपर्यायका छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषै न भया। इहाँ मनुष्यहीकी आयु है । तैसै सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्वका नाशका कारण अनन्तानुबधीका उदय प्रगट भया, ताकौ सम्यक्त्वका विरोधक सासादन कह्या । बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तो सासादनविषै न भया। यहाँ उपशमसम्यक्त्वका ही काल है, ऐसा जानना। ऐसै अनन्तानुबधी चतुष्ककी सम्यक्त्व होते अवस्था हो है, तातै सात प्रकृतिनिके उपशमादिकतै भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए है, सो कैसे है ।

ताका समाधान—सम्यक्त्वके तो भेद तीन ही है। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसे सम्यक्त्व मार्गणाकरि जीवका विचार किए छह भेद कहे है। यहाँ कोई कहै कि सम्यक्त्वतै भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषै आया होय, ताकौ मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातै अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसै सयममार्गणाविषै असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषै अभव्य कह्या, तैसै ही सम्यक्त्वमार्गणा विषै मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वकौ सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्वका अभावतै ही मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करनेके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणा-विषै मिथ्यात्व कह्या है। ऐसै ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वका भेद नाही है। सम्यक्त्वके भेद तीन ही है ऐसा जानना। यहाँ कर्मके उप-शमादिकतै उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक याका किया होता नाही। यहु तो तत्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै, तिसके निमित्ततै स्वयमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्वके भेद जानने। ऐसै सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अग कहे है। नि शाकितत्व, नि.काक्षि-तत्व, निर्विचिकित्सित्व, अमूढदृष्टित्व, उपवृहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहाँ भयका अभाव अथवा तत्वनिविषै सशयका अभाव, सो नि.शाकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै रागरूप वाछाका अभाव, सो नि.कांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो निर्विचिकित्सत्व है। बहुरि तत्वनिविषै वा देवादिकविषै अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्म-धर्म वा जिनधर्मका बधावना, ताका नाम उपवृंहण है। इसही अगका

नाम उपगूहन भी कहिए है। तहाँ धर्मात्मा जीवनिका दोष ढाकना, ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपने स्वभावविषै वा जिनधर्मविषै आपकौ वा परकौ स्थापन करना, सो स्थितिकरण अंग है। बहुरि अपनें स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है। बहुरि स्वरूपविषै वा जिनधर्मविषै वा धर्मात्मा जीवनिविषै अतिप्रीति भाव, सो वात्सल्य है। ऐसै ए आठ अग जाननें। जैसै मनुष्यशरीरके हस्तपादादिक अग है, तैसे ए सम्यक्त्वके अंग है।

यहाँ प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए है अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातै निःशांकितादिक अंग सम्यक्त्वके कैसै कहो हो ?

ताका समाधान—जैसै मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अंग कहिए है, तहाॅ कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषै कोई अग न होय। तहाँ वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए है परन्तु तिनि अंगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसै सम्यक्त्वके निःशांकितादि अंग कहिए है, तहाॅ कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै नि.शांकितत्वादिविषै कोई अग न होय। तहाॅ वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अगनिबिना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसे बादरेकै भी हस्तपादादि अग हो है परन्तु जैसे मनुष्यके होय, तैसे न हो है। तैसै मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप निःशांकितादिक अग हो है परन्तु जैसे निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकै होय तैसे न हो है। बहुरि सम्यक्त्वविषे पच्चीस मल कहे है—आठ शकादिक, आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकै न होय। कदाचित् काहूकै मल लागे सम्यक्त्वका नाश न हो है, तहाँ सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु

ॐ

# पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्य पूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषै साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यातम रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखत टोडर-मल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना। यहाँ यथा सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्रीरामसिंघजी भुवानीदासजी को आया था। तिसके समाचार जहानाबादतै और सार्धमियो ने लिखे थे। सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम सारिषे ही लिखै। अवार वर्तमान काल मे अध्यातम के रसिक बहुत थोड़े है। धन्य है जे स्वात्मानुभवकी वार्ता भी करै है, सो ही कहा है—

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं सः भवेद्भव्यो, भाव निर्वाण भाजनम्॥

पद्मनन्दि पच विशतिका। (एकत्व शीति २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, सो निश्चय कर भव्य है। अल्पकालविषै मोक्ष का पात्र है। सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनु-सार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यातम आगम की चर्चा गर्भित पत्र तो शीघ्र शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभव मे रहना, श्रीरस्तु।

अथ स्वानुभव दशाविषै प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धि अनुसार लिखिये है।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखै है।

जीव पदार्थ अनादितै मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ रूप से विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षय तै आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातै आपापरका श्रद्धानविषै शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापर का यथार्थ श्रद्धान नाही है अर जिनमतविषै कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कूं मानै है, अन्य मत विष कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाही मानै है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाही। तातै स्वपर भेद विज्ञान को लिये जो तत्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पंचेन्द्री व छठा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा में कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रुति रूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकूं अयथार्थ भी जानै तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जातै जाननेविषै विपरीत रूप पदार्थनिकौ न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोड़ा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगटै है सो सर्व प्रकाश का अश है।

जो ज्ञान मतिश्रुति रूप प्रवर्त्तै है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। इसलिये सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषै सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्तै। तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तै सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणमते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसे पाइए ?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषै प्रवर्त्तै है, उस कार्य को अपना भी कहे है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिसकार्य विषै प्रवर्त्तते अपनी और साहू की जुदाई कौ नाही विचारै है परन्तु अन्तरग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाही। ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कू चुराय अपना मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए। तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तदरूप परिणमै, तथापि अन्तरग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाही। जो शरीराश्रित व्रत सयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय। सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय है। अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है.—

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरूप भेद विज्ञान करै, नो कर्म, द्रव्यकर्म,भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै,पीछे परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है, तहाँ अनेक प्रकार निज-स्वरूपविषै अहबुद्धि धारै है। मै चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते सते सहज ही आनन्द तरंग उठै है,रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै, तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषै एकाग्र होय प्रवर्त्तै। दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषै व्याप्य व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्तै जहाँ ध्याता ध्यायपनो दूर भयो। सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है। सो बडे नय चक्र ग्रन्थविषै ऐसे ही कहा है—

गाथा—तच्चाणे सण काले समयं बुज्झेदि जुत्ति मग्गेण।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥२६६॥

अर्थ तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषै समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानै। पीछे आराधन समय जो अनुभव काल, तिहि विषै नय प्रमाण नाही है, जातै प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे रत्न की खरीद विषै अनेक विकल्प करै है, प्रत्यक्ष वाको पहरिये तब विकल्प नाही, पहरने का सुख ही है। ऐसे सविकल्प के द्वारे निर्विकल्प अनुभव होय है।

बहुरि जो ज्ञान पच इन्द्री व छठा मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सो सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषै केवल स्वरूप सन्मुख भया। जातै वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषै एक ज्ञेय ही को जानै, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया। तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होंय तौ भी स्वरूप ध्यानी को कछु खबर नाही, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्यातिविषै किया है तथा आत्म अवलोकनादिविषै है। इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवकौ अतेन्द्रिय कहिए है जातै इन्द्रीनका धर्म तौ यह है जो स्पर्श, रस, गध और वर्ण कौ जानै सो यहाँ नाही अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाही। तातै जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषै प्रवर्त्तै है तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिये है। बहुरि इस स्वानुभवकौं मन द्वारे भी भया कहिए जातै इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही है, और कोई ज्ञान नाही।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाही, सो इन्द्री मन का तो अभाव ही है जातै इन्द्रियका विषय मूर्त्तीक पदार्थ ही है। बहुरि

यहाँ मतिज्ञान है जाते मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषै एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै है तातै याकौ मन द्वारै कहिये है।

"**एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्**" ऐसा ध्यान का भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषै सम्भवै है। तथा नाटक के कवित्तविषै कहा है—

**दोहाः—वस्तु विचारत भाव सैं, मन पावै विश्राम।**
**रस स्वादित सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥**

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषै प्रवर्त्ता नाही तातै स्वानुभवकौ मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने मे अरु मन जनित कहने मे कुछ विरोध नाही, विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिखा "जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय" सो भाई जी, मन अमूर्तीक का भी ग्रहण करै है जातै मतिश्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्य कहे है। उक्त च तत्वार्थ सूत्रे—

"**मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्व सर्व पर्यायेषु।**" (१-२६)

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्ष सबधी प्रश्न लिखे" सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्ष के तो भेद हैं नाही। चौथे गुणस्थान मे सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातै सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धान रूप ही है। वह जीव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, तातै तुमने जो लिख्या था कि "निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है" सो ऐसा नाही है। सम्यक्त के तो तीन भेद है तहाॅ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल है, जातै वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित है अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषै प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाही है।

क्षायक सम्यक्तीकै शुभाशुभ रूप प्रवर्त्तता वा स्वानुभवरूप प्रवर्त्तता

सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातै सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद है सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है; तातै मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यथा:—"**आद्ये परोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्**"।(तत्वार्थ सूत्र १-११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषै प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा लक्षण कहा है—

"**स्पष्टप्रतिभासात्मकंप्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं।**"

जो ज्ञान अपने विषयकौ निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय तो घना परन्तु एक ही ज्ञेय कौ सम्पूर्ण न जान सकै तातै परोक्ष है और अवधि मन:पर्यय ज्ञान के विषय थोरे है तथापि अपने विषयकौ स्पष्ट नीके जानै तातै एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयकौ आप स्पष्ट जानै तातै सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद है। एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार प्रत्यक्ष। अवधि मन: पर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही, तातै पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। बहुरि नेत्र आदिकतें वरणादिककौं जानिए है, तातै इनकौ सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातै जो एक वस्तु मे मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय है।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद है—१ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानी को याद करि जानना सो स्मृति कहिए।

दृष्टांत कर वस्तु निश्चय कीजिये सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।

हेतु के विचार ते लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।

हेतुतै साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।

आगम ते जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किये है, सोई स्वानुभव दशा मे जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातै यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाही। बहुरि अवधि मन:पर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थकै है नाही, तातै अनुभवविषै अवधि मन:पर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाही। बहुरि यहाँ आत्माकू स्पष्ट नीके जानै है, ताते पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तौ सम्भवै नाही। बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए है तैसे एक देश निर्मलता लिये भी आत्मा के असख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातै साव्यवहारिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भवै नाही।

यहाँ पर तो आगम-अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है। जैनागमविषै जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकू तैसा जान उस विषै परिणामोको मग्न करै है तातै आगम परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा मै आत्मा ही हू ताते मुझविषै ज्ञान है, जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक है। बहुरि जहाँ आत्मा नाही तहाँ ज्ञान भी नाही जैसे मृतक कलेवरादिक है। ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषै परिणाम मग्न करै है, तात अनुमान परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने मै आया तिसहीको याद रखके उस विषै परिणाम मग्न करै है ताते स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषै परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है। पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषै परिणाम मग्न हो है ताका कछु विशेष जानपना होता नाही।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषै जानने का विशेष नाही तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषै जो ज्ञान अनेक ज्ञेयकौं जानने रूप प्रवर्तै था, वह निर्विकल्प दशाविषै केवल आतमा को ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेपता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषै परिणमै था सो केवल स्वरूप ही सौ तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनो विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषै उसके अंश की भी जात नाही ताते उस आनन्द को अतेन्द्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषै भी आतमा परोक्ष ही है तौ ग्रथनविषै अनुभवकूं प्रत्यक्ष कैसे कहिये? कारण कि ऊपरकी गाथा विषे ही **"पच्चखो अणुहुवो जम्हा"** ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषै आतमा तौ परोक्ष ही है, कछु आतमा के प्रदेश आकार तौ भासते नाही। परन्तु जो स्वरूपविषै परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आप ही अनुभवके रस स्वादकौं वेद है। जैसे कोई आधा पुरुष मिश्री कौं आस्वादै है, तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष है और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाई होय तिसकौ भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसे लोकविषै कहिए है "हमने स्वप्नविषै वा ध्यान विषै फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा" सो प्रत्यक्ष देखा नाही परन्तु प्रत्यक्षकी सी नाईं प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा तातै तिसको प्रत्यक्ष कहिए; तैसे अनुभवविषै आतमा प्रत्यक्ष की नाई यथार्थ प्रतिभासै है, तातै इस न्यायकरि आतमा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाही। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यातम शास्त्रनसौ विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे है?

ताका समाधान—चौथे ही से होय है परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल मे होय है और ऊपर के गुणठाने शीघ्र शीघ्र होय है।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है तहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषै विशेष है। जैसे दोय पुरुष नाम ले है अर दोही का परिणाम नाम विखै है, तहाँ एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषै कोई विकल्प नाही तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ प्रथक्त्व-वितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यजन, योग, सक्रमन रूप ऐसे क्यो कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोय प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमे गुणस्थान ताई मैथुन सज्ञा कही तैसे यहाँ स्वानुभवविषै निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि प्रथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताई कहे है। सो अब आपके जानने मे वा अन्यके जानने मे आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानै अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगादिकविषै स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगादिक विषै सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टात विषै प्रश्न लिखा सो दृष्टात सर्वाङ्ग मिलता नाही। दृष्टात है सो एक प्रयोजनकौ दिखावै है सो यहाँ द्वितीया का विधु ( चन्द्रमा ), जलबिन्दु, अग्निकरण ए तो एक देश है अर पूर्णमाशी का चन्द्र, महासागर तथा अग्निकुण्ड ये सर्व

देश है। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये है तिनकी अर तेरहवे गुणस्थानवर्ती आतमा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय है तिनकी एक जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयकौं प्रत्यक्ष जानै है तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माकौ प्रत्यक्ष जानता होगा?

ताका उत्तर—सो भाईजी, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नाही। सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले कै मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवे गुणस्थान वाले कै केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तौ अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसौ जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तुको सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तौ जैसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयकौ निर्विकलपरूप जानै तैसे ए भी जानै सो तो है नाही, तातै प्रत्यक्ष परोक्ष में विशेष जानना कह्या है।

**श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्व प्रकाशने।**
**भेद साक्षाद साक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत्॥**

अष्टसहस्री दशमः परिच्छेदः १०५।

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय सर्व तत्वो के प्रकाशन हारे है। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्षहै, श्रुतज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनो एक दूसरे से भिन्न नाही है।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त का स्वरूप लिखा है सो सत्य है; परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीकै व्यवहार सम्यक्तविषै निश्चय सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन ( परिणमन ) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है "आत्माकौ प्रत्यक्ष जानै तो कर्मवर्गणाकौ प्रत्यक्ष क्यो न जानै ?"

सो कहिए है—आत्माकौ प्रत्यक्ष तो केवली ही जानै, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यो आत्माके प्रदेश थोरे खुले कहो ?

ताका उत्तर—सो दृष्टात प्रदेशनकी अपेक्षा नाही, यह दृष्टात गुण की अपेक्षा है। जो सम्यक्त्व,स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक सम्बन्धी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है। तुम हू जिनवाणीतै तथा अपनी परणति से मिलाय लेना। विशेष कहाँ ताईं लिखिये, जो बात जानिए सो लिखनेमे आवे नाही। मिले कछु कहिये भी, सो मिलना कर्माधीन, तातै भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममे रहना व अनुभवमे वर्तना। वर्तमानकालविषै अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका सस्कृतविषै है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषै है तथा और भी अन्यग्रन्थविषै है। जो जानी है, सो सर्व लिखनेमें आवै नाही। तातै तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषैं मग्न रहना और तुम कोई विशेष ग्रन्थ जाने हो तो मुझकौ लिख भेजना। साधर्मीकै तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाही परन्तु तुम सारिखे भाइनसौ परस्पर विचार है, सो अब कहाँ तक लिखिये ? जेते मिलना नाही तेतै पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो।

मिती फागुन बदी ५ सं० १८११

—टोडरमल

# मोक्षमार्ग-प्रकाशकमें उद्धृत पद्यानुक्रम

# सस्ती ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

| | | |
|---|---|---|
| १. | रत्नकरण्ड श्रावकाचार | ५) |
| २. | मोक्षमार्ग प्रकाशक | ३) |
| ३. | कल्याण गुटका ( प्रेसमें ) | १॥) |
| ४. | महिला शिक्षा संग्रह | १।) |
| ५. | मानवधर्म | ॥।) |
| ६. | सरल जैनधर्म | ॥=) |
| ७. | वृहत् समाधि-मरण | ।=) |
| ८. | छहढ़ाला सार्थ | ।) |
| ९. | भजन सग्रह | ।) |
| १०. | वैराग्य प्रकाश | ।) |
| ११. | दश धर्म लावनी | ।) |
| १२. | जैन शतक | ≡) |
| १३. | ब्रह्मचर्य रहस्य | ।) |
| १४. | रहस्य पूर्ण चिट्ठी व छहढ़ाला ( मूल ) | =) |
| १५. | मेरी भावना | )॥। |

## श्री धनकुमारचन्द दिगम्बर जैन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

| | | |
|---|---|---|
| १. | प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर प्रथम भाग | [illegible] |
| [illegible] | [illegible]श्नोत्तर ज्ञान सागर द्वितीय भाग | ॥=) |

## सस्ती ग्रन्थमाला

श्री दि० जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली ।

---

मुद्रक—सन्मति प्रेस, गली कुञ्जस, दरीबा कलाँ, देहली ।